

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में
पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)
हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

:: शीर्षक ::

विश्वकर्मप्रकाश
एवं
काश्यप-शिल्प
का तुलनात्मक अध्ययन

शोधकर्ता
नारायणदास जाजू

= शोध-सहनिर्देशक ::
डॉ. डी. पी. पारे

::शोध-निर्देशक::
डॉ. निलिम्प त्रिपाठी
महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
भोपाल

2014

22627



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में

पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

:: शीर्षक ::

विश्वकर्मप्रकाश

एवं

काश्यप-शिल्प

का तुलनात्मक अध्ययन

शोधकर्ता

नारायणदास जाजू

सन्दर्भ-पुस्तक

यह पुस्तक देय नहीं है।

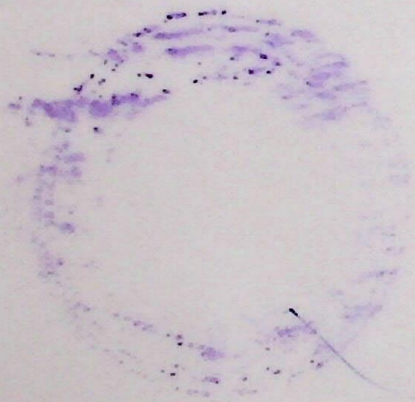
:: शोध-निर्देशक ::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

भोपाल





महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में
पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)
हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

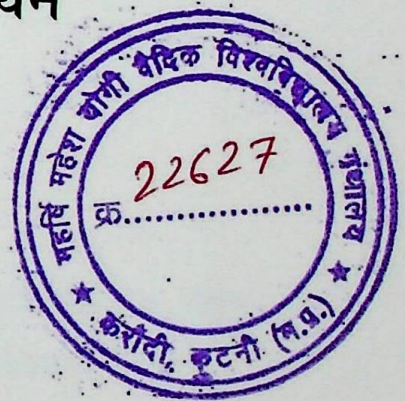
:: शीर्षक ::

विश्वकर्मप्रकाश
एवं
काश्यप-शिल्प
का तुलनात्मक अध्ययन

शोधकर्ता
नारायणदास जाजू

सन्दर्भ पुस्तक

यह पुस्तक देय नहीं है।



:: शोध-सहनिर्देशक ::

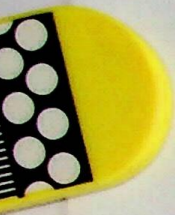
डॉ. डी. पी. पारे

:: शोध-निर्देशक ::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी

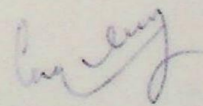
महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
भोपाल

✓ 2014

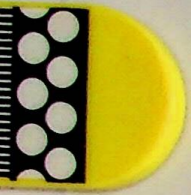


घोषणापत्र

मैं यह शपथ पूर्वक घोषित करता हूँ कि प्रस्तुत शोधप्रबन्ध जिसका शीर्षक “ विश्वकर्म-प्रकाश एवं काश्यप शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन ” है, संदर्भ ग्रन्थ पर आधारित मेरा मौलिक शोध कार्य है। मैं यह भी घोषित करता हूँ कि यह शोधकार्य मैंने किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि आदि की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत नहीं किया है।

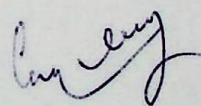


नारायणदास जाजू
शोधकर्ता का नाम



घोषणापत्र

मैं यह शपथ पूर्वक घोषित करता हूँ कि प्रस्तुत शोधप्रबन्ध जिसका शीर्षक “ विश्वकर्म-प्रकाश एवं काश्यप शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन ” है, संदर्भ ग्रन्थ पर आधारित मेरा मौलिक शोध कार्य है। मैं यह भी घोषित करता हूँ कि यह शोधकार्य मैंने किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि आदि की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत नहीं किया है।



नारायणदास जाजू
शोधकर्ता का नाम



प्रमाणपत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध जिसका शीर्षक
 “ विश्वकर्म-प्रकाश एवं काश्यप शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन ”
 है, नारायणदास जाजू द्वारा संदर्भ ग्रन्थों पर आधारित मौलिक शोध कार्य है, जो
 कि मेरे निर्देशन में सम्पन्न किया गया है। मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि यह
 शोध कार्य किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि प्राप्ति हेतु
 प्रस्तुत नहीं किया गया है।

A. P. Pare
 2-5-2014
 :: शोध-सहनिर्देशक ::
 (डॉ. डी. पी. पारे)

महेश
M/13
 16-9-15

5.5.14
 ::शोध-निर्देशक::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी
 महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
 भोपाल



प्रमाणपत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध जिसका शीर्षक
“ विश्वकर्म-प्रकाश एवं काश्यप शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन ”
 है, नारायणदास जाजू द्वारा संदर्भ ग्रन्थों पर आधारित मौलिक शोध कार्य है, जो
 कि मेरे निर्देशन में सम्पन्न किया गया है। मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि यह
 शोध कार्य किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि प्राप्ति हेतु
 प्रस्तुत नहीं किया गया है।

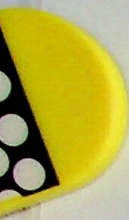
A. P. Parule
 2-5-2014
 :: शोध-सहनिर्देशक ::
 (डॉ. डी. पी. पारे)

(Handwritten signature and date)
 16-9-15

(Handwritten signature and date)
 5.5.14.

::शोध-निर्देशक::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी
 महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
 भोपाल



[Faint, illegible text, likely bleed-through from the reverse side of the page]

[Faint, illegible text and signatures, likely bleed-through from the reverse side of the page]

प्रस्तावना

वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया (विश्वकर्मप्रकाश)। शास्त्रकी मर्यादा के अनुसार चलने से अन्तः कारण शुद्ध होता है और शुद्ध अन्तःकरण में ही कल्याण की इच्छा जाग्रत होती है।

‘वास्तु’ शब्दका अर्थ है— निवास करना (वस निवासे)। जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे ‘वास्तु’ कहा जाता है। कुछ वर्षों से लोगों का ध्यान वास्तुविधा की ओर गया है। प्राचीनकाल में विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर चौंसठ कलाओं (विद्याओं) की शिक्षा प्राप्त करते थे, 64 कलाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

1. गीत
2. वाद्य
3. नृत्य
4. नाट्य
5. आलेख्य
6. विशेषक च्छेदय
7. तन्डुल कुसुम बलिविकार
8. पुष्प प्रास्तारण
9. दशनवसनांना राग
10. माणि भूमिका कर्म
11. शयन रचना
12. उदक वाद्य
13. चित्रयोग
14. माल्यग्रन्थन् विकल्प



[Faint, illegible text, likely bleed-through from the reverse side of the page]

[Faint, illegible text, likely bleed-through from the reverse side of the page]

प्रस्तावना

वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया (विश्वकर्मप्रकाश)। शास्त्रकी मर्यादा के अनुसार चलने से अन्तः कारण शुद्ध होता है और शुद्ध अन्तःकरण में ही कल्याण की इच्छा जाग्रत होती है।

‘वास्तु’ शब्दका अर्थ है— निवास करना (वस निवासे)। जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे ‘वास्तु’ कहा जाता है। कुछ वर्षों से लोगों का ध्यान वास्तुविधा की ओर गया है। प्राचीनकाल में विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर चौंसठ कलाओं (विद्याओं) की शिक्षा प्राप्त करते थे, 64 कलाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

1. गीत
2. वाद्य
3. नृत्य
4. नाट्य
5. आलेख्य
6. विशेषक च्छेदय
7. तन्डुल कुसुम बलिविकार
8. पुष्प प्रास्तारण
9. दशनवसनांना राग
10. माणि भूमिका कर्म
11. शयन रचना
12. उदक वादय
13. चित्रयोग
14. माल्यग्रन्थन् विकल्प



15. शेखर पीठ योजना
16. नेपथ्य प्रयोग
17. कर्ण पत्र भंग
18. गंध युक्ति
19. भूषण योजना
20. इन्द्रजाल
21. कुचुमार योग
22. हस्त लाघव
23. विचित्रशाकरूपभाष्यविकार क्रिया
24. पानक रसरोग आसव योजना
25. सचीवय कर्मन
26. सूत्र कीड़ा
27. वीणा डमरुक वाद्य
28. पहेलिका
29. प्रतिमाला
30. दुर्वाचक योग
31. पुस्तक वाचन
32. नाटक ख्यायिका दर्शन
33. काव्य समास्य पुराण
34. पाटिका वेत्र वान विकल्प
35. तर्कु कर्म
36. तक्षण



॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

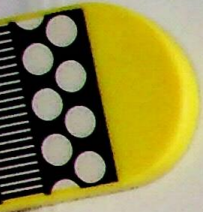
॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

37. वास्तु विद्या
38. स्वर्ण रूप रत्न परीक्षा
39. धातु वाद
40. मषिराग ज्ञान
41. आकार ज्ञान
42. वृक्षायुर्वेद योग
43. मेष कुक्कुट लाघक युद्ध विधि
44. शुक सारिका प्रलापन
45. उत्सादन
46. केश मार्जन कौशल
47. अक्षर मुष्टिका कथन
48. मलेच्छिष्ट विकल्प
49. देश भाषा विज्ञान
50. पुष्प सकटिका निर्माता ज्ञान
51. निमित्त ज्ञान
52. यंत्र मात्रिका
53. धारणमात्रिका
54. समंपाथ्य
55. मानसिक काव्य क्रिया
56. अभिधान कोश
57. छन्द ज्ञान
58. क्रिया विकल्प



प्राचीन काल	१
मौर्य काल	२
गुप्त काल	३
साम्राज्य काल	४
साम्राज्य काल	५
साम्राज्य काल	६
साम्राज्य काल	७
साम्राज्य काल	८
साम्राज्य काल	९
साम्राज्य काल	१०
साम्राज्य काल	११
साम्राज्य काल	१२
साम्राज्य काल	१३
साम्राज्य काल	१४
साम्राज्य काल	१५
साम्राज्य काल	१६
साम्राज्य काल	१७
साम्राज्य काल	१८
साम्राज्य काल	१९
साम्राज्य काल	२०
साम्राज्य काल	२१
साम्राज्य काल	२२
साम्राज्य काल	२३
साम्राज्य काल	२४
साम्राज्य काल	२५
साम्राज्य काल	२६
साम्राज्य काल	२७
साम्राज्य काल	२८
साम्राज्य काल	२९
साम्राज्य काल	३०

59. छलिटका योग

60. वस्त्र गोपन

61. द्युत विशेष

62. अक्ष कीडा

63. बालक कीडानक

64. वैनयीकी ज्ञान

जिसमें वास्तुविद्या भी सम्मिलित थी। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ऐसी न जाने कितनी विद्याएँ छिपी पड़ी हैं, जिनकी तरफ अभी लोगों का ध्यान नहीं गया है।

सनत्कुमारजी के पूछने पर नारदजी ने कहा था— 'भगवन् मुझे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद याद है। वेद चार हैं:— ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। ऋग्वेद में देवता (या प्रकृति की शक्ति) की स्तुति या प्रार्थना के मन्त्र हैं, जिन्हें सूक्त कहते हैं।

सामवेद में, मन्त्रों के गान हैं, गाने की विधि है। यजुर्वेद में देवता की आहुति देने की विधि अर्थात् यज्ञ की विधि है। अथर्ववेद में जीवन से संबंधित ज्ञान का वर्णन है।

वेद	उपवेद
ऋग्वेद	आयुर्वेद (जीवन का ज्ञान)
यजुर्वेद	धनुर्वेद (अस्त्र—शस्त्र का ज्ञान)
सामवेद	गन्धर्ववेद (कला व संगीत का ज्ञान)
अथर्ववेद	स्थापत्यवेद (निर्माण का ज्ञान)

इस प्रकार से हमने देखा कि वेद को सरल कर उपवेद की रचना की गई।

~1 oE uKl q ku kHoUr HhoB d kghoD; gSbl d krRi; ZgSfd l a kj eal Hh
i k khv k euq; le) v k l q khgkl cd kd Y; kkgk ije iWkuh; egfZegsk; kht h
d sv uq kj oHnd oM e; d spBU; LiUhukae40 {k g p suk d sbu LiUhukal sl cd s
'kjhj d k fueZkrFkl p ky u g k kgS bu p ky hl {k kaeagh, d LFkiR; oB *gSt ksf
bu vFloZob d kghmioB gSft l d kip fy r uke oLrq'WL= Hh d gkt kr kgS

वेद विज्ञान के अनुसार स्थापत्यवेद का सीधा अर्थ है 'अव्यक्त को व्यक्त' करके उसमें चेतना स्थापत्य करने की विद्या ही स्थापत्य वेद है।' स्थापत्य वेद को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

1. आन्तरिक सज्जा (व्यक्ति-चेतना)
2. बाह्य सज्जा (समष्टि, विश्व- भवन आदि)

'आन्तरिक सज्जा' से तात्पर्य व्यक्ति की स्वयं की चेतना से है, उसकी चेतना के स्तर से है, उसकी मानसिक अवस्था से है, उसके विचारों से है, उसके मस्तिष्क में उठने वाली तरंगों से है। यह व्यक्ति के मन की स्थिति को दर्शाता है। 'बाह्य सज्जा' (वास्तु शास्त्र) से तात्पर्य व्यक्ति के (शरीर के) बाहर के सारे क्षेत्र से है। यह वास्तु के ग्रन्थ में वर्णित है। यह जगत का क्षेत्र है। व्यक्ति के जीवन पर आसपास के वातावरण, भवन आदि के प्रभाव का अध्ययन बाह्य सज्जा के अन्तर्गत करते हैं।

चेतना की परिभाषा :— सारे विश्व की शक्ति को जो धारण करती है, उसको चेतना कहते हैं। चेतना के सात स्तर होते हैं।

1. जाग्रत चेतना :— चेतना के इस स्तर में हमारा मन व शरीर दोनों क्रियाशील रहते हैं। दैनिक जीवन में जो भी कार्य किया जाता है, वह जाग्रत चेतना के अन्तर्गत आता है।
2. स्वप्न चेतना :— चेतना के इस स्तर में शरीर निष्क्रिय रहता है किन्तु मन आंशिक रूप से सक्रिय रहता है।
3. सुषुप्ति चेतना :— चेतन के इस स्तर में शरीर एवं मन दोनों ही निष्क्रिय होते हैं। अर्थात् मन व शरीर दोनों ही क्रियाशील न होकर विश्राम की अवस्था में रहते हैं।
4. भावातीत चेतना:— चेतना के इस स्तर को 'तुरीय चेतना' भी कहा जाता है। इस अवस्था की विशेषता यह है कि इसमें हम मानसिक रूप से पूर्ण सजग और शारीरिक रूप से गहन विश्राम की अवस्था में रहते हैं इसीलिए इस अवस्था को विश्रामपूर्ण जाग्रत अवस्था की संज्ञा दी गयी है। चेतना की इस अवस्था में सभी प्रकार की भावनाएँ, इच्छाएँ, क्रियाएँ विचार आदि शांत हो जाती हैं। मन के तीनों आयाम ज्ञान, भाव और क्रिया रूपान्तरित होकर पूर्णतया शान्त हो जाती है। जिस प्रकार सागर में उठती हुई लहरें शान्त होकर सागर में मिल जाती हैं ठीक उसी प्रकार मन के दोनों आयाम शान्त होकर आत्मा बन जाती है।

5. **तुरीयातीत चेतना** :— जब भावातीत चेतना में जो शांति क्षण मात्र के लिए मिलती है इस शांति में और प्रगाढ़ता आने लगती है, जब मन क्रिया में भी शांत रहने लगता है। यह स्तर उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं।

6. **भगवत् चेतना** :— चेतना के इस स्तर में चेतना विस्तृत होकर 'विश्व' से (प्रकृति की चेतना जिससे सारा विश्वब्रह्माण्ड संचालित हो रही है) मिल जाती है। चेतना के इस स्तर में प्रकृति पूरे तरह से अपने नियंत्रण में आ जाती है।

7. **ब्राह्मी चेतना** :— चेतना की इस अवस्था में सारा भेद मिट जाता है तथा अहं का भी नाश हो जाता है एवं सब कुछ निर्गुण निराकार हो जाता है।

सारांश :— 1) चेतना के स्तर से गिरावट के बाद ही वास्तु दोषों का लगना प्रारंभ होता है अतः चेतना का स्तर ऊँचा होना उत्तम होता है। चेतना का स्तर ऊँचा उठाने के लिए शास्त्र के अनुसार आचरण करना, ध्यान करना, चित्त व मन को निर्मल करना व रखना चाहिये।

इस विषय को विश्वकर्म प्रकाश में इस प्रकार बताया गया है

पुरा त्रेतायुगे हासीन्महाभूतं व्यवस्थितम् ।

स्वाप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः ॥

पहले त्रेतायुग में एक महाभूत व्यवस्थित हुआ। उसने, अपने शरीर से सभी भुवन को ढक लिया। (वह सारे भुवन में व्याप्त हो गया, आच्छादित हो गया। अर्थात् वास्तु का क्षेत्र सारा भुवन है।)

व्याख्या— युग चार बताए गए हैं:— सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग व कलयुग।

उसमें सतयुग के बाद त्रेतायुग में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति बताई गई है, अर्थात् उससे पहले सतयुग में वास्तुपुरुष नहीं था। उस युग में लोगों की चेतना सत्व गुण प्रधान थी।

गुण तीन होते हैं— सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। यह गुण व्यक्ति की मानसिक अवस्था को दर्शाते हैं।

सत्वगुण—पवित्रता

रजोगुण—लोभ व सांसारिक चेष्टा का बढ़ना, मन में चंचलता, विषय भोग की लालस

तमोगुण— लापरवाही, प्रसाद आदि

त्रेतायुग में जब रजोगुणी चेतना प्रधान रूप से प्रकट होने लगी तब वास्तुपुरुष की उत्पत्ति हुई। लोगों की चेतना के स्तर में जब गिरावट हुई, तब वास्तुपुरुष का जन्म हुआ तथा वास्तु के विपरीत या गलत निर्माण होने पर दोषों का लगना शुरू हुआ।

समरांगण सूत्रधार के भवन जन्म कथा नामक अध्याय में इसी प्रकार, चेतना के स्तर में गिरावट से वास्तु के दोषों का लगना प्रारम्भ हुआ, का वर्णन मिलता है:—

समरांगण सूत्रधार, धार के राजा भोज द्वारा, ग्यारहवीं सदी में लिखा गया, वास्तुशास्त्र का, अत्यंत की महत्वपूर्ण तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्याय छह में सहदेवाधिकार यानी भवन जन्म कथा का वर्णन किया गया है। जिसमें हमें वर्णन मिलता है कि, कैसे पहले देव व मनुष्य साथ-साथ रहते थे, वे क्षुत, पिपासा (भूख, प्यास) एवं दुखों से रहित, स्थिर यौवन वाले थे। फिर देवताओं की अवज्ञा से उनकी अर्थात् मनुष्यों की वृत्ति, चेतना में गिरावट होने लगी। उन्हें क्रमशः भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा व शरीर की अन्य आवश्यकता सताने लगी तब उन्हें भवन की आवश्यकता महसूस हुई तथा वे घर बनाकर रहने लगे।

इसमें हमें, यह पता चलता है कि जब तक मनुष्य की चित्त वृत्ति में हास नहीं हुआ, वे देवता के साथ रहते थे, भूख, प्यास व शरीर की अन्य आवश्यकताओं से मुक्त थे। चित्त की वृत्ति के हास, चेतना के स्तर में गिरावट के बाद, उन्हें शारीरिक आवश्यकताएँ सताने लगी एवं शीत, गर्मी, वर्षा आदि से बचने के लिए भवन की आवश्यकता महसूस हुई और वे भवन बना कर रहने लगे।

2) चेतना के सात स्तर में से पहले तीन स्तर का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति, अपने जीवन में करता है। वास्तु शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र के नियम, इस तीन अवस्था में रहने वाले जीने वाले, व्यक्ति के जीवन पर ही लागू होते हैं, वास्तु इन्हे प्रभावित करती है।

3) उपरोक्त तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त अन्य अवस्था (तुरीय, तुरीयातीत आदि) में रहने वाले व्यक्ति पर, वास्तु के दुष्प्रभाव का असर नहीं होता है एक सफल वास्तु शास्त्री के लिए चेतना के पांचवे स्तर तक जाना अत्यंत आवश्यक होता है। स्थपति या वास्तु शास्त्री प्रज्ञावान होना चाहिये उसकी चेतना का स्तर ऊपर उठा होना चाहिये। वास्तु शास्त्र तथा चेतना विज्ञान को जोड़ने से दोनों को मिलाकर स्थापत्य वेद कहलाते हैं।



...
...
...

...
...

...
...
...
...
...
...
...
...
...
...

...
...
...
...
...
...
...

...
...
...

...
...
...
...
...
...
...
...
...

एक कुशल वास्तु शास्त्री (स्थपति) में चार गुणों का होना आवश्यक समझा जाता है। एक कुशल वास्तु शास्त्री (स्थपति) होने के लिए शास्त्र, कर्म, प्रज्ञा तथा शील (आचरण) होना अत्यंत आवश्यक है। इसका उल्लेख दिया जा रहा है:—

शास्त्र :— वास्तु शास्त्री को शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है जिससे वह विभिन्न प्रकार के निर्माण के समय 'वास्तु' का ध्यान रख निर्माण में सफल होगा। स्थापत्य वेद के साथ गणित, ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र आदि अन्य वास्तु से सम्बंधित विषयों का ज्ञान आवश्यक रहता है। इसके साथ ही ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान भी वास्तु शास्त्री के लिए परम आवश्यक होता है। अतः स्पष्ट है शास्त्रों का ज्ञान के बिना वास्तु शास्त्री सफल नहीं हो सकते हैं।

कर्म:— किसी भी वास्तु शास्त्री (स्थपति) को शास्त्रों में उल्लेखित विशिष्ट कर्मों का ज्ञान अति आवश्यक है उदाहरण के तौर पर एक चिकित्सक को चिकित्सा पद्धति का सैद्धांतिक व प्रायोगिक ज्ञान, एक इंजिनियर के यांत्रिकी पद्धति व प्रायोगिक ज्ञान आवश्यक है अन्यथा चिकित्सक आपरेशन में इंजिनियर निर्माण या यांत्रिकी कार्य में सफल नहीं होंगे। उसी प्रकार एक वास्तु शास्त्री को कर्म के क्षेत्र में ज्ञान व उसका प्रयोग करना आना आवश्यक समझा जाता है।

प्रज्ञा:— प्रज्ञा का स्पष्ट रूप या अर्थ बुद्धि है एक वास्तु शास्त्री का शास्त्र ज्ञान, शास्त्र कर्म के ज्ञान को किसी स्थान विशेष, प्रयोजन विशेष तथा व्यक्ति विशेष के लिए किस प्रकार से प्रयोग करना है व उसकी प्रज्ञा (बुद्धि) पर निर्भर है। वास्तु शास्त्री की प्रज्ञा का कार्य ही उसे विषय में सिद्धी प्राप्ति या विषय की पकड़ कहलाती है। अतः वास्तु कर्म के पहले प्रज्ञा गुण आवश्यक है।

शील (आचरण):— एक वास्तु शास्त्री में शील अर्थात् आचरण का महत्व भी शास्त्रों में उल्लेखित है। शील से तात्पर्य है व्यवहार कुशलता इसके साथ नैतिकता व ईमानदारी, एक वास्तुशास्त्री ज्ञानवान, कर्मवान तथा प्रज्ञावान है इसके साथ ही ईमानदारी व व्यावहारिकता आवश्यक है।

अतः स्पष्ट है कि उपरोक्त वर्णित चारों गुणों से वह एक श्रेष्ठ वास्तु शास्त्री कहलाता है। एक वास्तु शास्त्री के इन गुणों से पूर्ण होने पर जब वह किसी कार्य को करेगा तो देश, समाज, व्यक्ति सबके लिए उपकारी सिद्ध होगा।

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

परमपूजनीय महर्षि महेश योगीजी द्वारा स्थापित महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय म. प्र. में 'ध्यान' पर विशेष बल दिया गया है सभी वास्तुशास्त्र एवं अन्य अध्ययन के पूर्व 'भावातीत ध्यान' विशेष रूप से बताया गया है।

मालवा के प्रसिद्ध शासक भोज परमार ने ग्यारहवीं शताब्दी में स्वरचित ग्रन्थ 'समरांगण सूत्रधार' के पहले अध्याय के पांचवें श्लोक में कहा है—

वास्तु शास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चयः ।

तस्माल्लोकस्या कृपया शास्त्रमते दुर्दीयते ।।

अर्थात् वास्तु के सिद्धान्तों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रकार नहीं है जिससे यह निश्चित किया जा सके कि भवन, प्रासाद, तालाब, धर्मशाला, कारखाना, शॉपिंग सेंटर, उद्योग, नगर, कॉलोनी का निर्माण वास्तु अनुरूप है या नहीं। आयुर्वेद (चिकित्सा) आदि, ज्योतिष आदि वेदों तथा उपवेदों एवम् वेदान्तों के समान ही स्थापत्य वेद भी अति प्राचीन है इसकी प्राचीनता का सर्वाधिक सुदृढ प्रमाण मत्स्य-पुराण के निम्न प्रवचन में है —

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।

नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ।।

ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको भर्ग एव च ।

वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक बृहस्पतिः ।।

अष्टादशैते विख्याताः शिल्पशास्त्रोपदेशकाः ।

जिन अष्टादश वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्यों का संकेत है उनमें प्रायः वैदिक

कालीन ऋषि अथवा प्रख्यात देव पुरुष हैं इसके अतिरिक्त भारतीय स्थापत्य — परम्परा में दो बड़े प्रख्यातनामा स्थपति मिलते हैं 'विश्वकर्मा' तथा 'मय'। मय को असुर कहा जाता है कि महाभारत में मयदानव नामक एक महास्थपति के वास्तु कौशल की बड़ी प्रशंसा है, जिन्होंने पांडव के सभा भवन का निर्माण किया था। मय ने असुरों के आचार्य शुक से दीक्षा ली थी तथा शुक के संबंध में ऊपर निर्देश कर चुके हैं कि वह मत्स्य पुराणिक अष्टादश वास्तु शास्त्र के उपदेशकों में परिगणित हैं।

आसुरी वास्तुकला अत्यंत प्राचीन है। इसी प्रकार विश्वकर्मा की वंश परम्परा पर यदि दृष्टिपात करें तो और भी बड़ी पुष्टि सामग्री प्राप्त हो जाती है। भृगु और भार्गव की पौराणिक आख्यानों और कथाओं से हम परिचित ही हैं आज की भारतीय विज्ञान परम्परा में भृगु शब्द एक प्रकार से प्राचीन कारीगरों के लिए बताया गया है, जिसको हम आजकल स्वर्णकार, लोहकार, रथकार के रूप में परिकल्पित कर सकते हैं। हमारे देश में भवन निर्माण कला जिसे स्थापत्य अथवा वास्तुशास्त्र कहे या शिल्पशास्त्र कहे अत्यन्त प्राचीन है।

विश्व की प्राचीन वास्तुकला के क्षेत्र में भारत का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। सम्पूर्ण भारत असंख्य स्मारकों का एक विशाल संग्रहालय है, प्राचीनकाल से ललित कलाओं की तरह वास्तुकला का महत्वपूर्ण स्थान है।



अध्याय — 1.

विषय चयन का उद्देश्य



अध्याय — 1.

विषय चयन का उद्देश्य



अध्याय १

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
1.1	वास्तु शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ	14
1.2	वास्तु शास्त्र के अन्य ग्रन्थ	15
1.3	वास्तुशास्त्र के मुख्य ग्रन्थों का सारांश	16
1.4	वास्तु शास्त्रों के अध्ययन अनुभव	19
1.5	प्रमुख ग्रन्थों में से विषय चयन	20
1.6	पंचतत्त्वों का अध्ययन व वास्तु प्रभाव	21
1.7	तुलनात्मक अध्ययन का महत्व	23

1. प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

प्रस्तावना

अध्याय १

विषय चयन का उद्देश्य

प्राचीन काल में ऋषि, मुनियों, राजाओं ने अथक परिश्रम की सहायता से मानव कल्याण के लिए वास्तु विज्ञान की रचना की थी तथा प्रकृति के नियम व सृष्टि उर्जा का मानवजीवन तथा उसकी वास्तु पर कैसे प्रभाव पड़ता है उन्होंने अपने अनुभव सिद्ध ग्रन्थों में लिखा है। श्री प्रसन्न कुमार आचार्य ने मानसार ग्रन्थ पर कार्य करते समय सन् 1926 में लगभग 300 से अधिक वास्तु शास्त्र के ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

1.1 वास्तु शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ

क्र	नाम	लेखक
1	अग्नि पुराण	द्वैपायन व्यास
2	मत्स्य पुराण	द्वैपायन मुनी
3	मानसार	मानसार ऋषि
4	मयमत	मयमुनी
5	समरांगण सूत्रधार	महाराज भोज
6	विश्वकर्म वास्तु शास्त्र	विश्वकर्माजी
7	विश्वकर्म प्रकाश	विश्वकर्माजी
8	मनुष्यालय चन्द्रिका	तिरु मंगल नीलकण्ठ मूसतजी
9	राजवल्लभ	सूत्रधार मंडन
10	काश्यप शिल्प	काश्यप ऋषि
11	कामिका गम	
12	अपराजित पृच्छा:	भुवन देव आचार्य

बृहत-संहिता	कारणागम	प्रासाद-लक्षण
भविष्य-पुराण	रूपमण्डन	लिंग-पुराण
वायु-पुराण	वास्तु-मंजरी	वास्तु-मण्डन
वास्तु-विद्या	शिल्प प्रकाश	शिल्प रत्नाकर
वास्तु-सार	वास्तु-सारणी	विश्वकार्मिय शिल्प शास्त्र
शुक्र-नीति	शुल्ब सूत्र	प्रासाद तिलक

१०-१२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

१०१-१२०

१२१-१३०

१३१-१४०

१४१-१५०

१५१-१६०

१६१-१७०

१७१-१८०

१८१-१९०

१९१-२००

२०१-२१०

२११-२२०

२२१-२३०

२३१-२४०

२४१-२५०

२५१-२६०

२६१-२७०

२७१-२८०

२८१-२९०

1.3 वास्तुशास्त्र के मुख्य ग्रन्थों का सारांश

1. अग्नि पुराण :—अग्नि पुराण के 383 अध्याय में अनेक विषयों (ज्योतिष, वास्तु, तन्त्र, व्याकरण आदि) का समावेश है। अग्नि पुराण वास्तु शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसमें भूमि चयन, परीक्षण, भवन निर्माण, मूर्त, वास्तुशान्ति, दुर्ग निर्माण, प्रतिमा निर्माण, प्रतिमा की प्रतिष्ठा, अभिषेक विधि आदि विषयों का वर्णन भी मिलता है।
2. मत्स्य पुराण:— अग्नि पुराण के समान मत्स्य पुराण में अनेक विषयों का समावेश 289 अध्याय में है एवम् वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ रूप में मान्यता प्राप्त है इसमें गृहारम्भ, मुहूर्त, विधि द्वार स्थापना, लिंग व पीठ मान स्थापना आदि विषयों से वर्णित है।
3. मानसार:—मानसार ऋषि द्वारा रचित ग्रन्थ मानसार है। इस ग्रन्थ में 70 अध्यायों में 5275 श्लोक है। वास्तु शास्त्र के सभी पक्षों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। यह पूरा ग्रन्थ वास्तु शास्त्र को समर्पित है। इसमें भूमि चयन, परीक्षण एवम् अधिग्रहण भूमि पर देवताओं की स्थापना, हवन, नगर रचना, बहुमंजिला भवन, देवताओं के मंदिर, गृह की रचना गृह प्रवेश, प्रतिमा निर्माण एवम् स्थापना विधि का वर्णन है।
4. मयमत:—मयमुनि द्वारा रचित मयमय वास्तुशास्त्र का अत्यन्त ही प्रचलित व प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल 36 अध्याय में लगभग 3334 श्लोक है इस ग्रन्थ में सबसे पहले वास्तु का सामान्य परिचय के पश्चात्, भूमि के प्रकार, भवन यान व शयन, भूमि के रंग, गन्ध स्वाद आवाज, के आधार पर भूमि चयन, भूमि अधिग्रहण स्थपति की चार महत्ता, दिशा की जानकारी, नगर की प्लानिंग, भवन के आकार व मान, भवन के अंग 1 से 12 मंजिला भवन, भवन का परिसर, गृह प्रवेश घर की प्लानिंग मंदिर वास्तु पर प्रकाश डाला गया है।
5. समरांगण सूत्रधार:— धार के राजा भोज द्वारा 10 वी शताब्दी में इस ग्रन्थ की रचना की गयी। यह वास्तु शास्त्र का अत्यंत ही लोकप्रिय ग्रन्थ हैं। इसमें कुल 84 अध्याय तथा 8000 से अधिक श्लोक हैं। विद्वान टी. गणपति शास्त्रीजी ने इसका सम्पादन किया, गायकनाइ ओरियन्टल लाइब्रेरी, बडौदा ने इसका प्रकाशन किया। सन् 1956-60 के मध्य विद्वान डॉ. द्विजनाथ शुक्ल ने इसका अनुवाद किया, यह लखनऊ देहली से प्रकाशित है। इस ग्रन्थ में भवन, राजमहल, मंदिर, नगर आदि के निर्माण का वर्णन मिलता है। प्रतिमा बनाने की विधि, रंग बनाने, लेप बनाना व लगाना आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है।

संस्कृत भाषा के व्याकरण २।

संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
३। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
४। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
५। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।

६। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
७। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
८। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
९। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१०। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
११। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१२। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१३। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१४। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१५। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।

१६। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१७। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१८। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
१९। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२०। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२१। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२२। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२३। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२४। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२५। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।

२६। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२७। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२८। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
२९। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
३०। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
३१। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
३२। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
३३। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
३४। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।
३५। संस्कृत भाषा के व्याकरण २।

इस ग्रन्थ के यंत्र अध्याय में विमान मिलता वर्णन है।

6. विश्वकर्म वास्तु शास्त्र :- इस ग्रन्थ में 84 अध्यायों में 3000 से अधिक श्लोक हैं। वास्तु शास्त्र के सभी पक्षों को विस्तार से बताया गया है। विभिन्न प्रकार के नगर नियोजन तथा विभिन्न कक्षों के नियोजन को विशेष रूप से कहा गया है

7. विश्वकर्म प्रकाश:- विश्वकर्माजी द्वारा रचित इस वास्तुशास्त्र में 13 अध्याय हैं। 1374 श्लोको में वर्णित है। इसमें वास्तुशास्त्र, वास्तु पुरुष, स्वप्न विधि विचार, भूमि चयन, परीक्षण, गृहारंभ के शुभ-अशुभ विचार, मुहूर्त, गृह पदार्थ, पदविन्याय, शिलान्यास, प्रासाद निर्माण विचार, गृह द्वार, जलाशय विचार, दुर्ग निर्माण के अतिरिक्त शल्य ज्ञान, शल्य दोष, वृक्ष छेदन एवम् काष्ठ विचार तथा गृह वेध निर्माण विचार का विस्तृत वर्णन है।

8. मनुष्यालय चंद्रिका:-यह ग्रन्थ नाम में ही स्पष्ट है मनुष्यों के बारे में घरों का विवरण है। इसमें 7 अध्याय में लगभग 240 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में भूपरीक्षा व परिग्रह, वास्तु विन्यास निधि, आयादि, शाला विधान, भवन के अंग शिखर के अवयव, भवन के द्वार व अन्य अंग आदि पर प्रकाश डाला गया है। इसमें गृहों के निर्माण की विधि को विस्तार से बताया है।

9. राज वल्लभ :- यह ग्रन्थ 14 अध्याय के साथ 460 श्लोक जिसमें वास्तु के मूल भूत सिद्धान्तों को प्रायोगिक रूप से प्रस्तुत किया है। इसमें मुहूर्त आदि से लेकर विभिन्न नगर नियोजन विभिन्न कार्यों के लिए जैसे अध्यय, शयन, भोजन, वाहन आदि के स्थान गृह दरवाजे, कमरे, पलंग आदि के उपयुक्त अनुपातों, जल स्थान अपनी राशि के अनुसार अनुकूल स्थान, शल्यज्ञान, विभिन्न प्रकार के वास्तु पुरुष व घरों का वर्णन किया है इस प्रकार स्पष्ट है इस ग्रन्थ में वास्तु के सभी अंगों का विस्तार से वर्णन है।

10. काश्यपशिल्प:- काश्यपशिल्प एक प्राचीन ग्रन्थ है इसमें चौरासी अध्याय हैं इसमें मंगलाचरण, प्रासादवास्तु, वास्तुहोम, प्रथम ईट स्तम्भ लक्षण, फलकलक्षण, वैदिक लक्षण, जालक विधान तोरण लक्षण, वृत्तस्फटित लक्षण, द्वारविन्यास, कम्प द्वार, प्रस्तर लक्षण, गल भूषण, शिखर लक्षण, द्वितल विमान लक्षण, त्रितल विमान लक्षण, चतुर्थ भूमि लक्षण, कुट आदि लक्षण, पंच भूमि लक्षण षष्ठ भूमि विधान, सप्त मूर्ति विधान, वसतल भूमि विधान, नव भूमि, त्रयोदस भूमि, षोडस भूमि, मुद्घेष्टका विधानम्, प्राकार, मंडप, गोपुर, परिवार, विनायक लक्षण, षण्मुख लक्षण, लिंग लक्षण, प्रतिमा लक्षण, मध्यदस ताल लक्षण, दस ताल विधानम्, उत्तम नवताल विधानम्, मध्यमनताल विधानम्, अघम नवताल विधानम्, अष्टताल विधानम्, सप्तताल विधानम्, पिंडिका लक्षण, पीठ लक्षणों द्वार, सकल स्थापना विधी सुखासन मूर्ति

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

सोमस्कन्धेश्वर, चन्द्रशेखर मूर्ति लक्षण, वृष वाहन मूर्ति, कल्याण मूर्ति, अर्धनारीश्वर, गजहा मूर्ति, पाशुपत मूर्ति कंकाल मूर्ति, हर्यर्धलक्षण, भिक्षाटन मूर्ति चण्डेश अनुग्रह, दक्षिण मूर्ति, काल्हामूर्ति, लिंगादसन लक्षण वृक्ष संग्रहण, शूल लक्षण, शूल पाणिलक्षण, रज्जू बंधन लक्षण मृत संस्कार लक्षण, कल्क संस्कार लक्षण, वर्ण संस्कार लक्षण ग्राम आदि लक्षण ।

11. कामिकागम :—यह ग्रन्थ वास्तु शास्त्र के गहन अध्ययन के रूप में पूर्व भाग में 75 अध्याय व उत्तर भाग में 98 अध्याय के साथ लगभग 10000 श्लोको में शास्त्र का विस्तृत वर्णन के साथ है । इस ग्रन्थ के पूर्व भाग में मंत्राणाम् उद्धार से प्रारम्भ होकर भूमि परीक्षा, पद विन्यास ग्राम आदि, आयादि लक्षण विधि, उपपीठ विधि, प्रसाद भूषण विधि, शिखर लक्षण विधि, गर्भ विन्यास विधि, ग्राम-गृह विन्यास विधि शाला लक्षण विधि देवता स्थापना विधि पटलः, प्रतिमा स्थापना विधि पटल, परिवार स्थापना विधि, गोपुर स्थापन विधि, इस प्रकार इस ग्रन्थ के उत्तर भाग में विविध प्रकार की पूजन विधि, स्थापन विधि प्रतिष्ठा विधि का गहन अध्ययन मिलता है ।

12. अपराजित पृच्छा:— इस ग्रन्थ में 128 अध्याय के साथ लगभग 8000 श्लोको के साथ इसके स्थल, प्रणाली, लौकिक, वास्तुकला, देवालय वास्तुकला इत्यादि के साथ शिल्प रचना चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि से सम्बंधित अंश भी है । विश्वकर्मा की चार मानसिक पुत्रियां थी उसमें से अपराजित भी एक थी, अपराजित के साथ विश्वकर्मा के हुए प्रश्नोत्तर इस ग्रंथ में संकलित है ।

1.4 वास्तु शास्त्रों के अध्ययन अनुभव

वास्तु शास्त्र के लगभग 300 से अधिक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है में से मुख्य ग्रन्थों का अध्ययन किया है तथा सम्पूर्ण प्राचीन परम्परा का अध्ययन होने के कारण एक सिविल इंजिनियर की डिग्री प्राप्त होने के साथ म. प्र. की अर्धशासकीय संस्था के उच्च पद महाप्रबंधक (संपत्ति/निर्माण) पर पदस्थ होते हुए वर्ष 1973 से 2009-10 तक लगातार 35 वर्षों से निर्माण क्षेत्र में 100 करोड़ से अधिक निर्माण कार्य मेरे अधीनस्थ पूर्ण हो चुके हैं परन्तु विभिन्न स्थानों पर विभिन्न भवनों में रहने वालों की आमदनी/भौतिक/ सुख/कलह/अचानक मृत्यु/ शिक्षण/ स्वास्थ्य सम्बन्धी/ व्यापार-व्यवसाय सम्बन्धी परेशानियों से घिरे परिवार, उद्यमियों, व्यापारियों इत्यादि को परेशानियों का सामना करते पाया। अतः परमपूजनीय महर्षि महेश योगीजी द्वारा स्थापित महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय म. प्र. में एक सिविल इंजिनियर के साथ महर्षि स्थापत्य वेद के विशेष अध्ययन की रुचि जागृत हुई तथा इस फील्ड में आवश्यक तथा महत्वपूर्ण समझी गयी तथा स्थापत्य वेद प्रमाण पत्र में प्रथम 'भूमि के आकार-प्रकार' पर लघु शोध के पश्चात् स्थापत्य वेद आचार्य प्रथम में 'इन्दौर राजभवन राजबाड़ा एवम् कृष्णपुरा छत्रियों का अध्ययन एवं विश्लेषण' के पश्चात् आचार्य द्वितीय वर्ष में 'शिव मंदिर भोजपुर' पर लघु शोध प्रस्तुत के साथ महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय में अनुभवी वेदविज्ञान, संस्कृत, स्थापत्य वेद आचार्य के सानिध्य में पूर्ण कर प्रथम श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्ति के पश्चात् विश्वविद्यालय परिसर प्रोत्साहन के साथ मेरी स्वयं की जिज्ञासा वास्तु शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ पर विद्या-वारिधि की हुई।

1.5 प्रमुख ग्रन्थों में से विषय चयन

वास्तु शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों व अन्य ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् मेरी स्वयं की जिज्ञासा के कारण मैं अपनी 'विद्या-वारिधि' वास्तुशास्त्र 'स्थापत्य वेद' के प्रमुख ग्रन्थों 'विश्वकर्म प्रकाश' एवम् 'काश्यप शिल्प' को महत्वपूर्ण समझकर इस विषय पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की जिज्ञासा हुई, चूंकि दोनों ही ग्रन्थ वास्तु शास्त्र की दृष्टि से अपने-अपने स्थान का महत्व रखते हैं।

“विश्वकर्मप्रकाश” एक अत्यंत प्राचीन ग्रन्थ है, इसी प्रकार “काश्यपशिल्प” भी प्राचीन ग्रन्थ है दोनों ही ग्रन्थ की रचना क्रमशः विश्वकर्माजी एवम् काश्यप ऋषि द्वारा की गयी है। विश्वकर्म प्रकाश के 13 अध्याय में 1400 श्लोकों में वास्तु शास्त्र के सभी पक्षों को समेट कर लिखा है इसी प्रकार काश्यप शिल्प के 86 अध्याय में भी वास्तु शास्त्र के सभी पक्षों को स्पर्श किया है अतः दोनों प्राचीन ग्रन्थों की व्यापकता के साथ दोनों के विद्वान रचयिता है अतः दोनों ही विद्वान रचयिता के ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की प्राप्त अनुमति के अनुसार मैं स्वयं को महर्षि महेश योगी विश्वविद्यालय के अधीनस्थ विषय को पूर्ण कर गौरवान्वित समझूंगा।

1.6 पंचतत्त्वों का अध्ययन व वास्तु प्रभाव

पृथ्वी पर जीवन को ये पाँच तत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

अ) आकाश: पृथ्वी के वातावरण से परे जहाँ सभी दूसरे ग्रह व तारे विद्यमान हैं, जगत के इस असीमित भाग को आकाश के रूप में जाना जाता है यह अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा पृथ्वी के जीवन को प्रभावित करता है जैसे गुरुत्वाकर्षण शक्ति, प्रकाश, उष्मा (ताप) चुम्बकीय क्षेत्र, तरंगे इत्यादि। खगोल विद्या व ज्योतिषशास्त्र, सूर्य, चन्द्रमा ग्रहों के राशि चक्र में गति से संबंधित है और हमें बताते हैं कि ये सभी हमारे जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

ब) वायु : हम वायु को देख नहीं सकते लेकिन महसूस कर सकते हैं वायु में मुख्य रूप से अक्सीजन 21 प्रतिशत, नाइट्रोजन 78 प्रतिशत तथा अन्य गैसें हीलियम एवम् कार्बनडाई आक्साईड है, वायु के बिना जीवन संभव नहीं है। आधुनिक युग में मशीनों को चलाने के लिए व घरों पर रोशनी करने के लिए वायु ऊर्जा (wind-Energy) का प्रयोग किया जाता है।

स). अग्नि : अग्नि सभी प्रकार की ऊर्जा जैसे सौर ऊर्जा, आणविक शक्ति, तापीय शक्ति, जीव व मानवीय ऊर्जा सभी का आधार है प्रकाश व उष्मा के बिना जीवन नष्ट हो जाएगा।

द). जल : वर्षा, नदी, समुद्र, महासागर सभी पानी के द्योतक हैं सभी पौधों व जानवरों में जल का भाग पाया जाता है पानी व लहरों का प्रयोग जल विद्युत संयंत्र और ज्वार विद्युत संयंत्रों से आजकल विद्युत पैदा करने में प्रयोग किया जाता है। दुनिया की सभी सभ्यताएँ विशाल नदियों के किनारों पर पुष्पित हुई हैं।

इस प्रकार हम कर सकते हैं कि आधार भूत एवम् आवश्यक पाँच तत्व, पृथ्वी, आकाश, अग्नि, वायु तथा जल न केवल मानव के अपितु पृथ्वी पर रहने वाले जीव के रहन-सहन को प्रभावित कर निर्देशित व परिवर्तित करते हैं। इससे बढ़कर वे हमारे कार्यों, भाग्य, आजीविका व व्यवहार और दूसरी मूलभूत चीजों को आकृति प्रदान करते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार ऊर्जा का संचित करने वाला यंत्र है और हम पांच तत्वों द्वारा ग्रहण कर सकते हैं।

इ) आकाश : तारों व आकाश की ओर देखकर ।

ई) वायु : पौधों द्वारा उत्सर्जित वायु ग्रहण कर ।

उ) अग्नि: प्रातः के सूर्य को सीधा स्वयं पर ग्रहण कर ।

ऊ) जल : अत्यधिक शुद्ध पानी पीकर ।

ए) पृथ्वी : नंगे पैर जमीन पर चलने से पुनः जीवन प्राप्त होता है ।

वास्तु शास्त्र से वास्तव में अन्य प्रबुद्ध वातावरण में स्वास्थ्य, धन-दौलत, समृद्धि और खुशी की वृद्धि हेतु प्रकृति के पांच तत्वों अर्थात् पंच भूतों द्वारा प्रदत्त लाभों से अत्यंत वैज्ञानिक तरीके से निवास या कार्य हेतु स्थान या स्थिति निर्मित करना है वास्तु तुल्य है, तथा जिसका वास्तु पर सीधा प्रभाव दिखाई देता है ।



सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं

सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं

सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं

सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं

सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं

सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं
सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं
सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं
सर्वज्ञानं सर्वभूतानां सर्वकारणं सर्वव्यापकं सर्वभूतहितं सर्वमोक्षदं सर्वमार्गं सर्वमोक्षदं सर्वमोक्षदं

1.7 तुलनात्मक अध्ययन का महत्व

वास्तु शास्त्र के विभिन्न प्रमुख व अन्य ग्रन्थ लगभग 300 से अधिक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। जिससे स्वतः ही स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ विभिन्न स्थानों पर विभिन्न समय पर, विभिन्न शैलियों में विद्वानों द्वारा लिखे गये थे। प्रबुद्ध भारतीय ऋषियों, सन्तों और सिद्ध पुरुषों के द्वारा अविष्कृत वास्तु शास्त्र के नियमों व सिद्धान्तों पर आधारित भवन, मंदिर राजप्रसाद, शहर और कस्बों का वर्णन विभिन्न स्थान पर उत्तर भारत में या दक्षिण भारत में वहाँ की जलवायु, धूप से बचाव, निर्माण की शैलियों का वर्णन मिलता है।

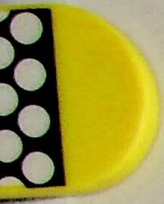
वास्तु शास्त्र के ग्रन्थ विश्वकर्मा प्रकाश के साथ काश्यप शिल्प दोनों ही प्राचीन ग्रन्थ होकर अलग-अलग स्थान पर देशकाल एवम् परिस्थितियों के अनुसार लिखे गये हैं, यह ग्रन्थ उत्तर भारत व मध्य भारत के ग्रन्थ है तथा जिसमें ऋषियों की समय शैलियों के समय उस समय की स्थितियों, उस स्थान की जलवायु, उस स्थान पर धूप तथ पानी से बचाव के अनुसार लिखे गये हैं दोनों ही ग्रन्थ में गृह निर्माण, नगर नियोजन तथा मंदिर-प्रासाद की शैलियों का वर्णन विस्तृत रूप से मिलता है। वास्तु विद्या बहुत प्राचीन विद्या है। इस विद्या के अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं जो मिलते हैं उनमें परस्पर मत भेद है। वास्तु विद्या के गृह-वास्तु, प्रासाद-वास्तु, नगर-वास्तु, पुरवास्तु, दुर्ग वास्तु सभी का उल्लेख विश्वकर्मा प्रकाश के साथ ही काश्यप शिल्प में सूक्ष्मता से मिलता है, परन्तु दोनों ही ग्रन्थों की तुलना महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। भारतीय स्थापत्य एक प्रकार से परिनिष्ठिय कला है, जिसमें एक वर्गीय कलाकारों से काम नहीं बनता है। दोनों ही ग्रन्थों में दो विद्वानों ने वास्तु शास्त्र सिद्धान्तों का पथ प्रदर्शन किया है, स्थापत्य के किसी भी ग्रन्थ का आदर्श अध्ययन तो तभी सम्पन्न, जब वह शास्त्र एवम् कला दोनों की समन्वय-भित्ति पर आधारित हो विषय बड़ा कठिन है प्रयास करने में असफलता रहेगी तो अनुसंधान आगे बढ़ेगा ही नहीं। अतः दोनों ही ग्रन्थों वास्तु की परम्परा, जन्म और विकास परम्परा एवम् प्रवर्तक उत्तरी - दक्षिणी परम्परा, वास्तु वाडमय, के साथ दक्षिणी परम्परा, उत्तरीय परम्परा, के वास्तु ग्रन्थ, मध्यकालीन परम्परा के वास्तु सिद्धान्तों के अनुसार नगर वास्तु, भवन (एक शाल, द्विशाल आदि) भवन निवेश-रचना, द्वार प्रमाण, प्रासाद एवम् विमान, प्रासाद वास्तु प्रासाद शैलिया (नागर, द्राविड, वेसर आदि) शैलियों के अनुरूप प्रासाद वर्ग, प्रासाद निवेश मण्डप, प्राकार, गोपुर, एवम् जगती है, प्रासाद कला कृतियों, दक्षिणात्य वास्तु कला, उत्तरापथीय वास्तुकला प्रतिया विज्ञान, सिद्धान्त, विभिन्न प्रतिमा के लक्षण, पुरातत्व के साक्ष्य पर चित्र कला का इतिहास बौद्धकला, हिन्दू कला, जैन पाण्डुलिपी चित्रण, हिन्दुपाण्डुलिपी चित्रण, राजपूतकला,

मुगलकला, आधुनिक कला, जिस पर भी ग्रन्थों में विवरण मिलता है के तुलनात्मक अध्ययन का महत्व वास्तु शास्त्र की वर्तमान कलाओं से विपरीत न होकर समकक्ष मिलेगा तथा यह सिद्ध होगा कि दोनों ही ग्रन्थ तत्कालीन समय की शैलियों, स्थितियों जलवायु एवम् उपलब्ध साधनों तथा तथ्यों के अनुसार वास्तुशास्त्र की अनेक परम्परा को सिद्ध कर अपने-अपने स्थान पर प्रमुख ग्रन्थों में विश्वकर्म प्रकाश व काश्यप शिल्प सूक्ष्मता से महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
अथ श्रीमद्भगवद्गीतायां
अध्यायः प्रथमः ॥
अर्जुनसंवादे ॥
अथ श्रीकृष्ण उवाच ॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता
अभ्युत्थानां मामका पандаवो
वियुक्ताः ॥ १ ॥

अध्याय - 2.

“ गृह, राजप्रासाद एवं मंदिर ”



[Faint, illegible text visible through the paper, likely bleed-through from the reverse side.]

अध्याय २

२. राजप्रासाद एवं मंदिर

क्रमसं.	विषय	पृष्ठ संख्या
२.१	गृह	१
२.१.१	गृहनिर्माण विधि का अर्थ	१
२.१.२	गृहनिर्माण अर्थ अर्थ के अर्थ का अर्थ	१
२.१.३	गृह का ही अर्थ	१
२.१.४	गृह निर्माण का अर्थ	१
२.१.५	गृह अर्थ	१
२.१.६	गृह अर्थ	१
२.१.७	गृह अर्थ	१
२.१.८	गृह अर्थ	१
२.१.९	गृह अर्थ	१
२.१.१०	गृह अर्थ	१
२.१.११	गृह अर्थ	१
२.१.१२	गृह अर्थ	१
२.१.१३	गृह अर्थ	१
२.१.१४	गृह अर्थ	१
२.१.१५	गृह अर्थ	१
२.१.१६	गृह अर्थ	१
२.१.१७	गृह अर्थ	१
२.१.१८	गृह अर्थ	१
२.१.१९	गृह अर्थ	१
२.१.२०	गृह अर्थ	१
२.१.२१	गृह अर्थ	१
२.१.२२	गृह अर्थ	१
२.१.२३	गृह अर्थ	१
२.१.२४	गृह अर्थ	१
२.१.२५	गृह अर्थ	१
२.१.२६	गृह अर्थ	१
२.१.२७	गृह अर्थ	१
२.१.२८	गृह अर्थ	१
२.१.२९	गृह अर्थ	१
२.१.३०	गृह अर्थ	१
२.१.३१	गृह अर्थ	१
२.१.३२	गृह अर्थ	१
२.१.३३	गृह अर्थ	१
२.१.३४	गृह अर्थ	१
२.१.३५	गृह अर्थ	१
२.१.३६	गृह अर्थ	१
२.१.३७	गृह अर्थ	१
२.१.३८	गृह अर्थ	१
२.१.३९	गृह अर्थ	१
२.१.४०	गृह अर्थ	१
२.१.४१	गृह अर्थ	१
२.१.४२	गृह अर्थ	१
२.१.४३	गृह अर्थ	१
२.१.४४	गृह अर्थ	१
२.१.४५	गृह अर्थ	१
२.१.४६	गृह अर्थ	१
२.१.४७	गृह अर्थ	१
२.१.४८	गृह अर्थ	१
२.१.४९	गृह अर्थ	१
२.१.५०	गृह अर्थ	१
२.१.५१	गृह अर्थ	१
२.१.५२	गृह अर्थ	१
२.१.५३	गृह अर्थ	१
२.१.५४	गृह अर्थ	१
२.१.५५	गृह अर्थ	१
२.१.५६	गृह अर्थ	१
२.१.५७	गृह अर्थ	१
२.१.५८	गृह अर्थ	१
२.१.५९	गृह अर्थ	१
२.१.६०	गृह अर्थ	१
२.१.६१	गृह अर्थ	१
२.१.६२	गृह अर्थ	१
२.१.६३	गृह अर्थ	१
२.१.६४	गृह अर्थ	१
२.१.६५	गृह अर्थ	१
२.१.६६	गृह अर्थ	१
२.१.६७	गृह अर्थ	१
२.१.६८	गृह अर्थ	१
२.१.६९	गृह अर्थ	१
२.१.७०	गृह अर्थ	१
२.१.७१	गृह अर्थ	१
२.१.७२	गृह अर्थ	१
२.१.७३	गृह अर्थ	१
२.१.७४	गृह अर्थ	१
२.१.७५	गृह अर्थ	१
२.१.७६	गृह अर्थ	१
२.१.७७	गृह अर्थ	१
२.१.७८	गृह अर्थ	१
२.१.७९	गृह अर्थ	१
२.१.८०	गृह अर्थ	१
२.१.८१	गृह अर्थ	१
२.१.८२	गृह अर्थ	१
२.१.८३	गृह अर्थ	१
२.१.८४	गृह अर्थ	१
२.१.८५	गृह अर्थ	१
२.१.८६	गृह अर्थ	१
२.१.८७	गृह अर्थ	१
२.१.८८	गृह अर्थ	१
२.१.८९	गृह अर्थ	१
२.१.९०	गृह अर्थ	१
२.१.९१	गृह अर्थ	१
२.१.९२	गृह अर्थ	१
२.१.९३	गृह अर्थ	१
२.१.९४	गृह अर्थ	१
२.१.९५	गृह अर्थ	१
२.१.९६	गृह अर्थ	१
२.१.९७	गृह अर्थ	१
२.१.९८	गृह अर्थ	१
२.१.९९	गृह अर्थ	१
२.१.१००	गृह अर्थ	१

अध्याय — २.

“ गृह, राजप्रासाद एवं मंदिर ”



अध्याय 2

गृह, राजप्रासाद एवं मंदिर

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
२.१	गृह वास्तु	७
२.१.१	गृहनिर्माण विधि का क्रम	८
२.१.२	स्थपति आदि चार के गुण व लक्षण	८
२.१.३	शुभ घर की महत्ता	९
२.१.४	भवन निर्माण का क्रम	१०
२.१.५	भूमि चयन	१०
२.१.६	भूमि परीक्षण	१३
२.१.७	भूमि-ग्रहण	१४
२.१.८	मुख्य दिशाओं का निर्धारण	१५
२.१.९	दिशानुसार सूत्रवेध का परिणाम	१८
२.१.१०	८१ पद का वास्तु	१९
२.१.११	वास्तुपुरुष की उत्पत्ति	२१
२.१.१२	भवन के अंग	२२
२.१.१३	द्वार का स्थान व विवरण	२४
२.१.१४	शाला के उपयोग	२५
२.२.१	राजप्रासाद व नगर नियोजन	२८
२.२.२	पदविन्यास	२८
२.२.३	प्लव	२८
२.२.४	राज महल	२८
२.२.५	राजप्रासाद मान	२८
२.२.५	परकोटा	२९
२.२.६	द्वार	२९
२.२.७	पानी निकलने के लिए नाली	२९
२.२.८	नियोजन	२९



Table with 3 columns: [Illegible], [Illegible], [Illegible]. The table contains approximately 25 rows of text, which is mostly illegible due to fading. The text appears to be a list or index of items, possibly related to a collection or inventory.

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
२.३	देवप्रासाद	३४
२.३.१	मंदिर के प्रकार	३४
२.३.२	मुहूर्त	३४
२.३.३	वास्तुमंडल लिखने के पदार्थ	३४
२.३.४	आठ दिक्पाल	३५
२.३.५	कार्य के आरम्भ के समय पूजनीय देवता	३५
२.३.६	शिलान्यास के लिए अशुभ समय	३५
२.३.७	वत्स का मुख	३५
२.३.८	आयादि विचार	३५
२.३.९	देवालय के लिए विचारणीय विषय	३६
२.३.१०	दिक्साधन	३६
२.३.११	खुदाई की विधि	३६
२.३.१२	कछुए का मान	३६
२.३.१३	कछुए का ज्येष्ठ, कनिष्ठ मान	३७
२.३.१४	शिला तथा कछुए की स्थापना का क्रम	३७
२.३.१५	सूत्रारंभ के नक्षत्र	३७
२.३.१६	शिला स्थापन हेतु शुभ नक्षत्र	३७
२.३.१७	देवालय निर्माण स्थान	३७
२.३.१८	मंदिर निर्माण पदार्थ	३८
२.३.१९	देवस्थापनफल	३८
२.३.२०	देवालयनिर्माणफल	३८
२.३.२१	वास्तुपूजा के सात अवसर	३८
२.३.२२	शान्तिपूजा चौदह अवसर	३८
२.३.२३	मंदिर-प्रमाण	३८

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
२.३.२४	जगती	३८
२.३.२५	जगती-आकार	३९
२.३.२६	जगती-मान	३९
२.३.२७	मण्डप की जगती	३९
२.३.२८	भ्रमणी (परिक्रमा)	३९
२.३.२८	जगती की ऊँचाई का मान	३९
२.३.२९	दिक्पाल	४०
२.३.३०	जगती के आभूषण	४०
२.३.३१	देव-वाहन-स्थान	४०
२.३.३२	देवस्य-वाहन की ऊँचाई	४०
२.३.३३	देवता के वाहन का दृष्टिस्थान	४१
२.३.३४	रथ व मठ का स्थान	४१
२.३.३५	अन्यमंदिर	४१



क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
१	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१	
२	संस्कृत-संस्कृत १०.१.२	
३	संस्कृत-संस्कृत १०.१.३	
४	संस्कृत-संस्कृत १०.१.४	
५	संस्कृत-संस्कृत १०.१.५	
६	संस्कृत-संस्कृत १०.१.६	
७	संस्कृत-संस्कृत १०.१.७	
८	संस्कृत-संस्कृत १०.१.८	
९	संस्कृत-संस्कृत १०.१.९	
१०	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१०	
११	संस्कृत-संस्कृत १०.१.११	
१२	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१२	
१३	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१३	
१४	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१४	
१५	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१५	
१६	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१६	
१७	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१७	
१८	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१८	
१९	संस्कृत-संस्कृत १०.१.१९	
२०	संस्कृत-संस्कृत १०.१.२०	

अध्याय — 2.

“ गृह, राजप्रासाद एवं मंदिर ”

मनुष्य प्रारम्भिक काल में शीत, गर्मी, बरसात तथा हिंसक पशुओं से बचाव हेतु पर्वत में बनी प्राकृतिक गुफा में निवास करता था, जैसै-जैसे विकास किया वह बांस लकड़ी पत्ते व उसके बाद मिट्टी के गृह में रहने लगा। सभ्यता विकास के साथ उसके घरों का आकार तथा कमरों की संख्या, घरों को बनाई जाने वाली सामग्री में परिवर्तन होने लगा।

वास्तु कला में चर्मोत्कर्ष के समय भवनों में स्वर्ण धातु का भी प्रयोग किया जाने लगा, आवश्यकतानुसार बैठक कक्ष, रसोईघर, विद्याभ्यास कक्ष, विभिन्न सामानों हेतु कक्ष गीत, संगीत, मल्ल अभ्यास तथा शयन के लिए अलग-अलग कक्ष बनाये जाने लगे और तो और रोदन गृह (कोप भवन) तथा रतिगृह व कोषगृह आदि विशेष अवसरों पर उपयोग में आने वाले कक्षों का निर्माण भी पृथक से किया जाने लगा, जिसका वर्णन दोनों ही ग्रन्थों में दिया है।

जब मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताएं भोजन इत्यादि पूर्ण होने लगी उसकी चेतना में विकास हुआ वह सभ्य हुआ तो उसमें प्रकृति की शक्तियों जिनसे यह सारी प्रकृति संचालित होती है, को जानने का समझने का प्रयास शुरू किया। उसने परम सत्य को मानने के लिए ईश्वर से जुड़ने के लिए विभिन्न कलाओं का, मार्गों का, रास्तों का आश्रय लिया फिर चाहे व ललितकला, चित्रकला, संगीत या वास्तुकला हो उसके हर कार्य में उसके मनोभाव प्रकट होने लगे।

इसी के फलस्वरूप प्राकृतिक शक्तियों की आराधना में पहले यज्ञकुटीर, पर्णशाला विकसित हुए तो अपने सर्वश्रेष्ठकाल में विभिन्न शैलियों के गगनचुम्बी मंदिर बनाये गये।

राजप्रासाद को जब हम जानने का प्रयास करते हैं तो हम पाते हैं कि सभ्यता विकास के साथ मनुष्य समूहों में रहने लगा तथा अलग-अलग समूह बने, कभी-कभी यह समूह एक दूसरे से रक्षा हेतु या कभी प्राकृतिक आपदाओं से सामना करने हेतु संगठित होने लगे। यही संगठन बाद में छोटे-छोटे पल्ली, खेट, खर्वट, ग्राम, नगर से होता हुआ राजधानी का रूप धारण करने लगा। इन व्यवस्थाओं के संचालन हेतु समूह नेता या शक्तिवान पुरुष की आज्ञा

का पालन होने लगा अपने उत्कर्ष के समय में राज्य करने वाला व्यक्ति राजा कहलाया तथा शान्ति के समय वास्तुकला पर अधिक ध्यान दिया गया। नवग्रहों की संरचना से लेकर विभिन्न प्रकार के मार्ग, मंदिर सार्वजनिक स्थान तथा राजाओं के रहने के महल जिन्हें राजप्रासाद कहा जाता है, किया जाने लगा।

राजा की आवश्यकतानुसार अलग-अलग कक्ष का निर्माण किया जाने लगा तथा उनकी आन्तरिक सज्जा पर ध्यान दिया जाने लगा इन राजप्रासादों में अश्व, हाथी, अन्य पशु, दास, दासी, नृत्यागनाओं, सैनिक आदि का भी स्थान निश्चित किया गया। राजा किस स्थान पर बैठ कर नकली लड़ाइयों का निरीक्षण करेगा, दाढ़ी बनवायेगा इत्यादि स्थान भी निर्धारित किये गये तथा आनन्द व मनोरंजन के लिए बाग, बगीचे, सरोवर, नृत्य, गीत, संगीत आदि सबके लिए कक्ष का निर्धारण किया गया।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि सभ्यता-विकास के साथ मनुष्यों के घर, मंदिर तथा महलों या राजप्रासादों के स्वरूप आदि का उत्तरोत्तर विकास होता गया तथा स्वर्णकाल में वह अपनी चरम सीमा पर था। विश्वकर्म प्रकाश तथा काश्यप शिल्प दोनों ही ग्रन्थों में उपरोक्त प्राचीन वास्तु कला की विवेचना है।

प्रस्तुत अध्याय में हम वास्तु का अध्ययन निम्न बिन्दुओं के आधार पर करेंगे:-

- गृह वास्तु
- राज प्रासाद व नगर नियोजन
- मंदिर वास्तु

२.१ गृह वास्तु

मंगलाचरण

किसी भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ, मूल ग्रन्थ या किसी भी कार्य को प्रारंभ करते समय, सबसे पहले मंगलाचरण की परम्परा रही है।

यह मंगलाचरण विभिन्न देवी-देवता, गुरु आदि की स्तुति करने के सम्बन्ध में तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के सम्बन्ध में होता है। किसी भी कार्य के प्रारम्भ करने के उपरान्त, उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण को अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने अनेकानेक ग्रन्थों की, उपनिषदों की, पुराणों आदि की रचना की, परन्तु अधिकांश ग्रन्थों में रचनाकारों ने अपना नाम नहीं दिया, नहीं बताया, लेखक का पता भी नहीं चलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने आप को इतना गौण या नगण्य बना दिया कि वे तो केवल एक यन्त्र की भाँति कार्य करते रहे, यह सारा कार्य तो ईश्वर की, इष्ट देव की, गुरु की ही कृपा के प्रताप से चलता रहा, होता रहा।

ज्ञानेश्वरी (सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा की गई श्रीमद्भगवत गीता की टीका (व्याख्या)) ग्रन्थ को भी जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में एक बड़ी लम्बी गुरुवन्दना की गई है।

इस ग्रन्थ में भी ग्रन्थकार ने पहले परम तेज की, जो कि अनन्त एवं शाश्वत है, की आराधना की है, स्तुति की है, वन्दना की है तथा प्रार्थना की है कि वही अनन्त, शुद्ध व शाश्वत तेज विषय को प्रकाशित करने के लिए ग्रन्थकार के चित्त में प्रवेश करे।

उसके उपरान्त कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए गणेश जी की स्तुति और वन्दना की गई है। उसके पश्चात ग्रन्थकार मुनियों की वन्दना एवं ब्रह्मा जी को प्रणाम कर, ग्रन्थ का प्रारम्भ करता (करते) हैं।

वन्दना करने के क्रम में, मुनिश्वरों की वन्दना की गई है। इसके साथ ही एक परम सत्य को उद्घाटित किया गया है कि उन्हीं के संकल्प शक्ति के अनुसार वह जो परमेश्वर है, परम ईश्वर है, वह शरीर धारण करता है। अब यहाँ संकल्प शक्ति की महत्ता बताई गई है। इसी को कहा गया है- **जो इच्छा करिहों मनमाहीं प्रभु परताप कुछ दुर्लभ नाहीं।** जो इच्छा, मन की अन्तर्तम गहराइयों से की जाती है, उसे प्रकृति की शक्तियाँ पूरा करती है। यहाँ कुछ भेद भी छिपा है कि इच्छा किसकी पूरी हो, संकल्प किनके पूरे हों,

प्रकृति की शक्तियाँ किसके अनुसार चले। तब कहा गया है मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।^{१९/१०}
भगवत गीता^१

जो वीतरागी है, उनकी संकल्प शक्ति क्रियान्वित होती है।

२.१.१ गृहनिर्माण विधि का क्रम

जब ब्राह्मण आदि वर्ण का कोई व्यक्ति, मकान (घर) बनाने के लिए उत्सुक हो तो वह सबसे पहले एक आचार्य को ले, (चयन करें)। वह आचार्य, उस देश (क्षेत्र) से सम्बन्धित हो, जुड़ा हो तथा वह सभी गुणों से युक्त हो।

उसके पश्चात आचार्य, व्यक्ति के वर्ण के अनुसार भूमि का चयन कर, शास्त्र के कहे अनुसार, विधि विधान से वास्तुपूजन आदि करें तथा वास्तुशास्त्र में बताई गई विधि से, निपुण कारीगरों के द्वारा गृह निर्माण करवाएँ।

वेद तथा आगम आदि में बताए अनुसार आचार्य, देवता एवं मनुष्य के लिए घर का निर्माण कराएँ। कारीगरों का कार्य, आचार्य के कहे अनुसार मिट्टी, पत्थर इत्यादि को जोड़ने का है।

एक बात और यहाँ पर स्पष्ट होती है कि आचार्य के द्वारा, स्थपति का चयन करने के पश्चात, भवन निर्माण का सारा कार्य, स्थपति द्वारा करवा कर, उससे भवन, स्वयं (आचार्य) अधिगृहीत करता है। इससे स्पष्ट है कि कार्य योजनानुसार हुआ है या नहीं, कार्य में कहीं कोई दोष या त्रुटि तो नहीं है, यदि है तो उसका पूरा सुधार करने के बाद ही, उसे उपयोग में लाया जाता है।

आचार्य, गृह को स्थपति से अधिगृहीत करने के बाद, यजमान के साथ वास्तुपूजन कर, उसे सौंप देता है।

२.१.२ स्थपति आदि चार के गुण व लक्षण

स्थपति, सूत्रग्राही, तक्षक एवं वर्धकी - ये चारों अपने-अपने कार्यों में दक्ष या निपुण होते हैं। इनका विधि पूर्वक चयन करना चाहिए।

स्थपति वह है, जो सभी शास्त्रों में कही गई तकनीकों के क्रियान्वयन में निपुण हो। जिसका मन पवित्र एवं शान्त हो, जो धार्मिक हो, जो मत्सर आदि दोषों से रहित हो एवं जो केवल सत्य वचन ही कहता हो, ऐसा व्यक्ति स्थपति कहलाता है।

^१भगवत गीता अध्याय ९ श्लोक १०

स्थपति, स्थापना के कार्य का ज्ञाता होता है। सूत्रग्राही या तो स्थपति का पुत्र होता है, जो की स्थपति के समान ही सभी गुण रखता है या स्थपति का शिष्य होता है, जो की स्थपति के मन की बात जानकर, उसके अनुसार कार्य करता है। तक्षक, तक्षण अर्थात् पदार्थों (लकड़ी, पत्थर इत्यादि) को उचित आकार देना, इत्यादि कार्यों में लगा रहता है। वह हमेशा प्रसन्न चित्त होना चाहिए। वर्धकि, अपने कार्य में कुशल एवं लकड़ी इत्यादि को सावधानी पूर्वक जोड़ने में निपुण होता है।

यह स्थपति, वास्तुविद्या से सम्बन्धित सभी शास्त्रों का ज्ञान रखने वाला तथा उससे सम्बन्धित क्रियाओं में निपुण होता है। वह मन से पवित्र, सदा सच बोलने वाला तथा मत्सर आदि सात दोषों से रहित होता है।

(टिप्पणी- सप्त व्यसन- मृगया, द्यूत, दिवा-स्वप्न, परिवाद, स्त्रीयाह, मद)

(मत्सर आदि ७ दोष-ईर्ष्यालु, लालची, दरिद्र, दुष्ट, घमंडी, शत्रुता रखने वाला, क्रोधी)

सूत्रग्राही, सूत्र के कार्य में निपुण होता है तथा स्थपति का सहायक होता है। वह भी शास्त्र का ज्ञाता होता है तथा तक्षक व वर्धकि का गुरु होता है।

वर्धकि, तक्षक का गुरु होता है। वह लकड़ी, पत्थर इत्यादि जोड़ने के कार्य में निपुण होता है। वह निर्णय लेने में कुशल होता है। वेद का ज्ञाता तथा चित्र कर्म में कुशल होता है।

तक्षक लकड़ी तथा पत्थर काटने, उन्हें उचित आकार देने में निपुण होता है तथा सहयोगशील, मित्रवत, दयावान तथा वेद का जानकार होता है।

किसी भी घर का निर्माण सफलतापूर्वक एवं दक्षता के साथ पूर्ण कराने के लिए, इन चारों का होना आवश्यक है। इन सभी के सन्तुष्ट तथा प्रसन्नचित्त होकर कार्य करने पर ही गृहनिर्माण उचित प्रकार से संभव है।

२.१.३ शुभ घर की महत्ता

जो लक्षणों से हीन घर में निवास करता है, उसका निश्चित रूप से अशुभ होता है। अतः शुरू से आखिरी कर, सारे कार्य विधि-विधान से करें।

नींव से लेकर घर के शीर्ष तक के सारे मान, वास्तुविद्या के अनुसार होना चाहिए। घर के सारे अंग खिड़की, दरवाजे, कमरे, स्तम्भ आदि, शास्त्र के कहे अनुसार बनवाना चाहिए अर्थात् पूरा कार्य सुनियोजित होना चाहिए, ऐसा न होने पर अशुभ होता है।

अतः क्रम से, विभिन्न विधियों द्वारा भूमि परीक्षण, दिशा-ज्ञान (दिशा-निर्धारण), शुभ वीथि का चयन तथा परिग्रहण, घर का प्रमाण, आँगन, कुट्टिम आदि अन्य अंगों का निर्धारण विधि पूर्वक करें। इसी प्रकार गृह निर्माण के बाहर का निर्माण भी विधि के अनुसार व सावधानी से करना चाहिए।

२.१.४ भवन निर्माण का क्रम

यहाँ हमें गृहनिर्माण हेतु एक क्रम बताया गया है, जिसमें हमें सबसे पहले यह बताया गया है कि भूमि का चयन किस प्रकार करना चाहिए।

भूमि का परीक्षा, दिशाओं का निर्धारण, शुभ वीथि में निर्माण करना, भवन का आकार आदि का निर्धारण करना, आँगन तथा भवन के अन्य अंगों का विधि के अनुसार, मान ज्ञात करना। इस क्रम में सभी कार्य करके एक के बाद एक करना चाहिए तथा ये सभी कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, इनमें थोड़ी सी भी असावधानी होने पर अत्यन्त अशुभ होता है।

२.१.५ भूमि चयन

जिस भूमि पर गो व मनुष्य हों। जिस पर फूल व फल से युक्त वृक्ष हो, दूध वाले वृक्ष से जो भूमि आच्छादित हो, समतल हो, पूर्व दिशा की ओर झुकी हो, स्निग्ध (चिकनी) हो, (चलने इत्यादि से) अच्छी आवाज उत्पन्न करती हो, जिसमें प्रदक्षिण क्रम से पानी बहता हो, जो बीजों को जल्दी उपजाती हो, ठोस हो, जिस पर हमेशा जल का स्रोत उपलब्ध रहता है तथा जिसका जलवायु शीतोष्ण हो, (जिस पर बहुत अधिक ठण्ड या गर्मी न पड़ती हो), ऐसी भूमि श्रेष्ठ है। इससे विपरीत होने पर भूमि अधम होती है तथा मिश्रित होने पर मध्यम होती है।

जिस भूमि पर भवन निर्माण करना हो, वहाँ का वातावरण न तो बहुत गर्म हो, न ही अत्यधिक ठंडा। वहाँ पर्याप्त मात्रा में पानी उपलब्ध रहता हो। उस भूमि पर प्राकृतिक प्रकाश (सूर्य की रोशनी आदि) एवं हवा मिलती हो। भूमि उपजाऊ हो, ठोस हो आदि अनेकानेक बातों का वर्णन इस श्लोक में मिलता है। भूमि चयन की दृष्टि से देखे तो समरांगण-सूत्रधार में सोलह प्रकार की भूमि बताई गई है।

सामान्य रूप से, जब हम किसी प्लॉट का चयन करने जाएँ तो यदि, वहाँ जाकर मन रम जाए अर्थात् यदि वह भूमि मनोरम हो तो शुभ होती है।

अशुभ भूमि

वृत्ताकार, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोणाकार, पंचकोणाकार, षटकोणाकार, शूल तथा शूर्प के समान आकार वाली, मछली, हाथी, कछुए का पीठ के समान आकार वाली, गाय के मुख के समान आकार वाली, जिसमें राख हो, कोयला, घास, हड्डी, बाल, श्मशान, दीमक आदि से युक्त हो, मध्य में झुकी हुई, छिद्र वाली, दुर्गन्ध युक्त तथा जो भूमि मुख्य दिशाओं में स्थित न हो, उसे त्याग देना चाहिए अर्थात् ऐसी भूमि पर निर्माण नहीं करना चाहिए।

प्लव (भूमि का झुकाव) व परिणाम

पूर्व दिशा में नीची तथा पश्चिम दिशा में ऊँची भूमि को गोवीथि, आग्नेय दिशा में नीची तथा वायव्य दिशा में ऊँची भूमि को अग्निवीथि, दक्षिण दिशा में नीची तथा उत्तर दिशा में ऊँची भूमि को यम वीथि, नैऋत्य दिशा में नीची तथा ईशान दिशा में ऊँची भूमि भूतवीथि, पश्चिम दिशा में नीची तथा पूर्व दिशा में ऊँची भूमि जल वीथि, वायव्य दिशा में नीची तथा आग्नेय दिशा में ऊँची भूमि को नाग वीथि, उत्तर दिशा में नीची तथा दक्षिण दिशा में ऊँची भूमि को गज वीथि, ईशान दिशा में नीची तथा नैऋत्य दिशा में ऊँची भूमि धान्य वीथि कहते हैं।

इस प्रकार की वीथिनिम्न प्रभाव देती है-

गोवीथिसमृद्धि देती है। अग्नि वीथि धनहानि कराती है। यम वीथि जीवन की हानि करती है। भूत वीथि दरिद्रता लाती है। जल वीथि दरिद्रता लाती है। नाग वीथि पुत्रहानि करती है। गज वीथि धनलाभ कराती है। धान्य वीथि शुभदाता होती है।

मध्य में झुकी हुई भूमि प्रवास कराती है। जबकि मध्य में ऊँची भूमि धन तथा सुख आदि की हानि करती है। अग्नि से वायव्य कोण तक झुकी हुई भूमि दरिद्रता देती है।

यदि ऐसी भूमि पर मकान बनाया जाए जो मध्य में या पूर्व में ऊँची हो तो वह भूमि दस वर्ष तक वृद्धि देती है। यदि ऐसी भूमि पर मकान बनाया जाए तो आग्नेय या दक्षिण दिशा में ऊँचा हो तो वह सौ वर्ष तक वृद्धि देती है। नैऋत्य कोण में ऊँची भूमि हजार वर्ष तक पश्चिम दिशा में ऊँची भूमि ५०० वर्ष तक वृद्धि देती है। अन्य दिशाओं में ऊँची भूमि बारह, आठ या (? , तक)

छह वर्ष तक वृद्धि देती है इसके पश्चात पूर्व कहे अनुसार अपना फल देती है। (श्लोक १९-२० के अनुसार)

दिशानुसार शुभ वृक्ष

पूर्व दिशा में बकुल व वट, दक्षिण दिशा में उदुम्बर तथा इमली समृद्धि देती है। पश्चिम दिशा में पीपल व सप्तछन्द, उत्तर दिशा में नाग व प्लक्ष शुभ कहे गए हैं। पूर्व (आदि दिशा) में पनस, पुग, नारियल तथा आम के वृक्ष क्रम से शुभ हैं।

परिवेश विचार

विष्णु के मन्दिर के पीछे तथा बाईं ओर, काली, नृसिंह, शिव तथा अन्य उग्र मूर्ति के सामने और दाहिनी ओर यदि घर हो तो अनर्थदायक होता है।

घर से, श्रेष्ठ लोगों का घर या देव स्थान नीचा हो तो शुभ नहीं होता है। साथ ही देवस्थान के सामने तथा दाईं ओर भी घर शुभ नहीं है। अतः घर (मंदिर से) ऊँचा ना हो।

जो (जिनकी आजीविका) मंदिर पर ही निर्भर हो उनका घर देवालय के पास हो सकता है किन्तु अन्य के लिए अन्यत्र स्थान पर होना चाहिए।

निवास स्थान अर्थात् घर, मन्दिर के निकट न हो। साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि सौम्य देवता के पीछे तथा बाईं ओर तथा उग्र देवता के सामने तथा दाहिनी ओर घर नहीं होना चाहिए, इसका एक प्रमुख कारण इस देवता से सम्बन्धित ऊर्जा या ऊर्जा का क्षेत्र इत्यादि हो सकता है।

लगभग सभी मन्दिरों के समीप गृह निर्माण का निषेध किया गया है, विशेष अवसरों पर होने वाली बड़ी पूजा या नियमित अवसरों पर लोगों का आना-जाना, वाहन की अधिकता आदि के कारण घर के निवासियों को असुविधा होती है।

धान्य क्षेत्र, पर्वत, मंदिर, समुद्र, नदी, तपस्वी का स्थान, पशु स्थान आदि के पास की भूमि कई प्रकार से अशुभ होती है। जिस घर की ऊँचाई, मंदिर की ऊँचाई के बराबर या कम होती है, वह बहुत शुभ होता है। मंदिर से ऊँचा अथवा दो मंजिला घर, मंदिर के समीप वांछनीय (शुभ) नहीं है।

... (faint text) ...

... (faint title) ...

... (faint text) ...

... (faint title) ...

... (faint text) ...

... (faint title) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

वर्णानुसार भूमि विचार

जिस भूमि पर कुश, दर्भ, दूर्वा, आकाश हो, जिसकी लम्बाई चौड़ाई के बराबर हो या उससे $1/4$, $1/6$ या $1/8$ भाग अधिक हो, जो भूमि सफेद, लाल, पीले या काले रंग की हो, जिसमें घी, रक्त, भात, शराब के समान गन्ध हो जिसका स्वाद मीठा, कषाय, तिक्त व कड़वा हो वह क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के लिए शुभ है।

ब्राह्मण के लिए दक्षिण दिशा में ऊँची तथा उत्तर दिशा में नीची एवं उदुम्बर (गूलर) वृक्ष में युक्त भूमि शुभ है।

क्षत्रिय के लिए पूर्व में नीची तथा पश्चिम में ऊँची भूमि एवं पीपल के वृक्ष से युक्त भूमि शुभ है। वैश्य के लिए पूर्व में ऊँची तथा पश्चिम में नीची एवं वट वृक्ष से युक्त भूमि शुभ है। शूद्र के लिए दक्षिण दिशा में नीची एवं प्लक्ष (पाकड़, पाखर, पकड़िया) वृक्ष से युक्त भूमि शुभ है, अन्यथा होने पर छोड़ देना चाहिए।

यदि रंग, गन्ध एवं स्वाद संकीर्ण (मिश्र, मिक्स) हो तो उस भूमि को छोड़ देना चाहिए। अज्ञात लक्षणों (जिसका लक्षण स्पष्ट न हो सके) से युक्त भूमि के लिए, निमित्त (शकुन-अपशकुन) से परीक्षण करना चाहिए।

एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यहाँ उद्घाटित होता है कि भूमि के आकार, रंग व गन्ध तथा स्वाद के माध्यम से हमें आकार व रंग व गन्ध एवं स्वाद के गुण बताए गए हैं।

जैसे मीठा भोजन या स्वाद व्यक्ति में ब्राह्मणोचित गुणों को विकसित करता है, बढ़ाता है या सफेद रंग ब्राह्मणोचित गुणों को विकसित करता है, बढ़ाता है। इसी प्रकार अन्य रंग, गन्ध व स्वाद को जानें।

जिस भूमि के लक्षण जानने में कठिनाई हो, उसकी परीक्षा शकुन व अपशकुन को देखकर, करना चाहिए। यह शकुन शास्त्र वास्तु विद्या का एक महत्वपूर्ण अंग है।

२.१.६ भूमि परीक्षण

एक हस्त लम्बा, एक हस्त चौड़ा तथा एक हस्त गहरा गड्ढा खोदकर उसमें कच्ची मिट्टी का घट (घड़ा), धान्य से भरकर तथा उसे अन्य कच्ची मिट्टी के दिए से ढक दें।

उस दिये में घी डालने के पश्चात एवं पुण्याहवाचन कर सफेद, लाल, पीले एवं काले रंग की बत्ती बनाकर, पूर्वादि दिशा के क्रम से, प्रदक्षिण क्रम से जलाएं।

जिस दिशा की बत्ती (अधिक समय तक) जलती रहे, वह उस ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए शुभ होती है। यदि सभी बत्ती जल जाए तो वह सभी के लिए शुभ होती है।

गड्ढे को पानी से भरकर विधि के अनुसार द्रोण आदि पुष्प डाले। यदि फूल प्रदक्षिण क्रम से (दाहिनी ओर से) घूमे तो शुभ तथा विपरीत क्रम, एन्टीक्लाकवाइस घूमे तो निदिंत होता है।

यदि फूल मुख्य दिशा (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर) में रुक जाए तो शुभ तथा विदिशा (आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान) में रुके तो अशुभ होता है। विद्वान, शुभ एवं अशुभ शकुन को जानने (देखने के) के बाद भूमि को समतल करें।

भूमि परीक्षण वर्णानुसार भूमि चयन करने के उपरान्त उस भूमि की परीक्षा करना चाहिए। यहाँ जिस परीक्षण विधि का वर्णन मिलता है, उससे हमें उस भूमि पर पड़ने वाले स्वाभाविक विकिरण (रेडिएशन) का पता चलता है तथा वह भूमि किस वर्ण के लिए, सर्वाधिक उपयुक्त है यह ज्ञात होता है।

भूमि को समतल करना

तन्त्र (वास्तुशास्त्र) में निपुण व्यक्ति भूमि को समतल करें या तो अवनत (एक उपकरण) से या पानी के स्तर से। इसके पश्चात मजबूत लकड़ी का आधा हस्त लम्बा शंकु बनवाए, वह मूल में दो अंगुल तथा उसका अग्र एक अंगुल होना चाहिए तथा क्रमशः क्षय हो। वह वृत्ताकार हो, उसका ऊपरी हिस्सा कमल की कली के समान हो।

२.१.७ भूमि-ग्रहण

भूमि का चयन करने के बाद, उसको ग्रहण करने की विधि इस प्रकार है:-पूर्व बताए गए आकार, रंग, शब्द नाद के अनुसार भूमि चयन करके, बलि विधान यथाविधि कर कुशल शिल्पि, शुभ मुहूर्त में पुण्याहवाचन (पवित्र शब्द) करवाए।

इस जगह पर रहने वाले सभी जीव, राक्षस तथा देवता भी अन्यत्र चले जाएँ और वहाँ (अन्यत्र) अपना निवास बनाए। इस मंत्र का जप, धीमी आवाज़ में करें। कुंभ का परिग्रह (लेकर) कर, उचित प्रकार से रखकर, मिट्टी से भरकर उसमें सर्व बीज डालें, गोबर की खाद डालें तथा उसका अंकुरण देखें।

वहाँ गाय, बैल तथा नया बछड़ा भी लाए। इस प्रकार गोवंश से पदाक्रान्त (पैर से दबी, कुचली हुई) तथा गंध से, बैलों की आवाज़ से संघुष्ट, धवल भूमि, यव से भरी हुई, गोबर से आच्छादित होती है। पूले

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

... (faint title) ...

... (faint text) ...

... (faint title) ...

... (faint text) ...

... (faint text) ...

की जुगाली से सुशोभित तथा गौ पद से सुशोभित स्वच्छ पानी से समाक्रांत एवं गौ गंध से मनोहर भूमि में शुभ दिन एवं नक्षत्रानुसार शुभ मुहूर्त, शुभ करण, जिसमें विद्वान् ब्राह्मण सर्व मंगल के लिए पुण्याहवाचन करें।

शास्त्रानुसार रूपवती अंबिका का पूजन करें। सर्वाभूषण, सर्व रत्न जल, गंध, पुष्प, अक्षत (चावल) से पूजन करने के पश्चात्, प्रभात में सुधी (विद्वान्) चावल की खीर का (भोग लगाए) समर्पण करें। वापी के समीप, पवित्र होकर, मन को समाहित कर, पूर्व दिशा की ओर मुख करके, कुश-आसन पर बैठ कर, श्रद्धा के साथ प्रार्थना करें:

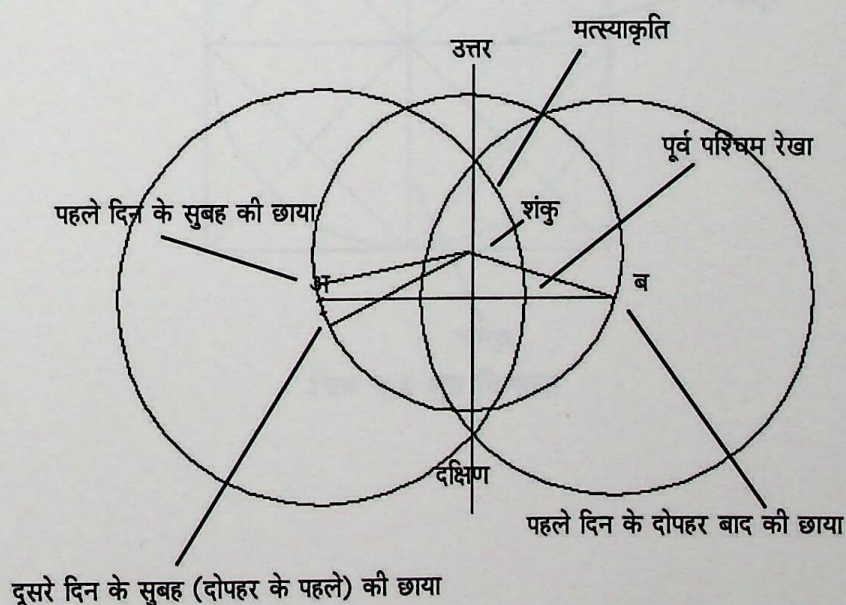
महान पृथ्वी, धान्य व साधन को वृद्धि दें। वह उत्तम व शुष्क (सूखी) रहकर हमारे लिए मंगलमय हो, मैं उसे नमन करता हूँ।

इस प्रकार मंत्र का जपकर क्रम से उपवास करें। इस प्रकार वैदिक पद्धति से भूमि को शोधित (शुद्ध) किया जाता है। भूमि को शुद्ध करने के बाद, प्लॉट के मध्य में शंकु की स्थापना (दिशा ज्ञान करने के लिए) से पहले भूमि को समतल (लेवल) किया जाता है।

२.१.८ मुख्य दिशाओं का निर्धारण

शंकुस्थापना

शंकु की लम्बाई की दुगुनी त्रिज्या का वृत्त (उस भूमि के मध्य में) खींचें, उसके (वृत्त के) ठीक केन्द्र में शंकु की स्थापना करें।



चित्र २.१ दिशा-ज्ञान

सावधान चित्त से पूर्वाह्न (दोपहर के पहले) शंकु के अग्र भाग की छाया वृत्त को जहाँ स्पर्श करती है, पश्चिम दिशा में उस पर चिह्न लगाए तथा अपराह्न (दोपहर के बाद) पूर्व दिशा में जहाँ स्पर्श करें उस बिन्दु पर चिह्न लगाएं। अगली सुबह पश्चिम दिशा में पुनः चिह्न लगाएं। पश्चिम दिशा के दोनों बिन्दु को तीन भागों में विभाजित करें, पहले दिन के बिन्दु के पास एक तिहाई का चिह्न ठीक पश्चिम दिशा का होता है।

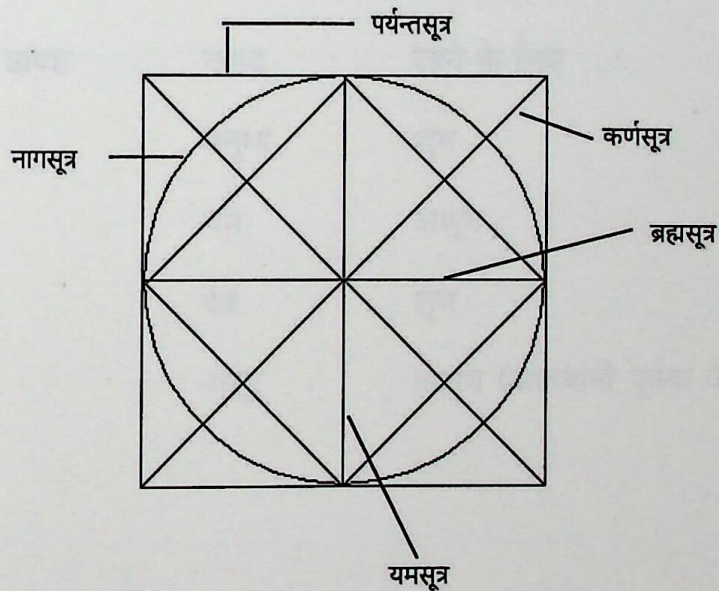
पूर्व-पश्चिम दिशा का निर्धारण

इसे पूर्व दिन के बिन्दु से मिलाने पर, सही पूर्व-पश्चिम दिशा का ज्ञान होता है।

सूत्र का निर्धारण

क्षेत्र के मध्य की रेखा (पूर्व-पश्चिम सूत्र) को ब्रह्म सूत्र कहते हैं। उसके मध्य में दो वृत्त, एक-दूसरे को काटते हुए बनाएं। इस मत्स्याकार से प्राप्त, मध्य सरल रेखा, जो कि वृत्तों के काटने से प्राप्त होती है, उसे मिलाने से हमें दक्षिण-उत्तर दिशा प्राप्त होती है। इस रेखा को यम सूत्र कहते हैं।

जिस बिन्दु पर ब्रह्मसूत्र तथा यमसूत्र एक दूसरे को काटते हैं, वह ब्रह्मनाभि होता है। प्लेट की जो सीमा रेखा होती है वह पर्यन्त सूत्र कहलाती है। कर्ण रेखा (diagonals) कर्णसूत्र कहलाते हैं। इस वर्गाकार क्षेत्र में जो वृत्त बनता है, वह नागसूत्र कहलाता है।



चित्र २.३ सूत्र विन्यास

खण्ड का निर्धारण

दो सूत्र, जिसका अग्र पूर्व व उत्तर दिशा में हो, के द्वारा, भूमि को चार खण्ड में विभाजित करते हैं।
ब्राह्मण व अन्य, ईश या नैऋत्य खण्ड में बसे (घर बनवाएं)

यदि क्षेत्र बड़ा हो तो प्रत्येक खण्ड को, पुनः चार चार उप खण्डों में विभाजित करें, नैऋत्य खण्ड का उपखण्ड ईश तथा ईश खण्ड का उपखण्ड नैऋत्य, शुभ है।

खण्ड निर्धारण एवं उपयोग

जब भूमि को चार खण्डों में विभाजित करते हैं तो ईश खण्ड को मनुष्य खण्ड कहते हैं, यह वृद्धि (समृद्धि) देता है। नैऋत्य को देव खण्ड कहते हैं यह इष्ट फल देता है। ये दोनों खण्ड मनुष्यों के लिए शुभ है।

आग्नेय खण्ड को यम खण्ड कहते हैं, यह मृत्यु देता है। इसे वर्ज (त्याग) दें। वायव्य खण्ड को असुर खण्ड कहते हैं यह निन्दित है। इसे सावधानीपूर्वक वैश्य के लिए, प्रयोग में ले सकते हैं।

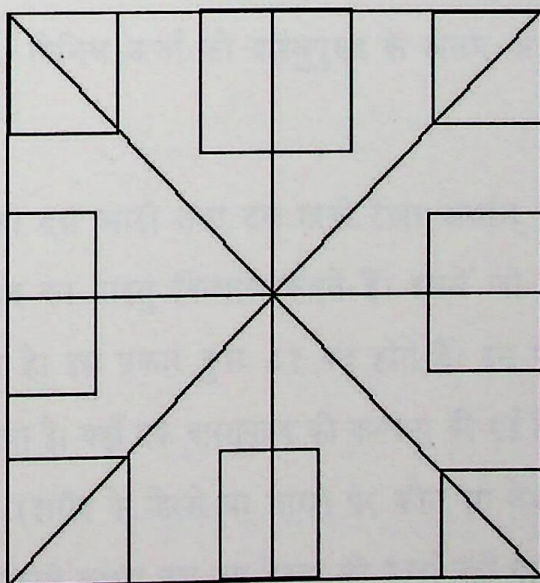
दिशा का खण्ड	खण्ड	रहने के लिए
ईशान	मनुष्य	शुभ
आग्नेय	यम	अशुभ
नैऋत्य	देव	शुभ
वायव्य	असुर	अशुभ (सावधानी पूर्वक वैश्य के लिए)

२.१.९ दिशानुसार सूत्रवेध का परिणाम

यदि सूत्र या रज्जु का वेध होता है तो यह वेध दोषकारक कहा है तथा इसके परिणाम इस प्रकार बताए गए हैं-

सूत्र वेध	परिणाम
पूर्व	पति वियोग
आग्नेय	कुष्ठ रोग
दक्षिण	शत्रु से पीड़ा
नैऋत्य	सन्तान हानि
पश्चिम	धन हानि
वायव्य	वायु रोग (rheumatism)
उत्तर	कुल नाश
ईशान	धान्य हानि

यहाँ जो प्लॉट का सूत्र (उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम रेखा) बताई गई है तथा रज्जु (दोनों कर्ण या डायगोनल) बताए गए हैं, उनका वेध नहीं होना चाहिए अर्थात् निर्माण करते समय या घर बनाते समय, घर का मध्य तथा प्लॉट का मध्य (सेन्टर पाइंट) एक नहीं होना चाहिए। यदि एक हो तो वेध का दोष लगता है।



चित्र २.६ सूत्र वेध

२.१.१० ८१ पद का वास्तु

एकाशीति (८१) पद के मध्य के नौ पद, उसके बाहर की दिशाओं में ६ पद, विदिशाओं में दो पद, उससे भी बाहर एक-एक पद इस प्रकार ब्रह्मादि ४५ देवता तथा बाहर के आठ मिलाकर कुल तिरेपन देवता होते हैं।

ईश से शुरू होकर बाहर स्थित पद में ईशान, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, रवि, सत्यक, भृश, अन्तरिक्ष, अग्नि, पूषाण, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृंग, मृग, पितृ, द्वारपाल, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरूण, असुर, शोष, रोग, वायु, नाग, मुख्य, भल्लाट, इन्दु, अर्गल, अदिति, दिति-ये बाहर से आवृत हैं। मध्य में ईशान आदि दिशा से आप, आपवत्स, आर्यक, सवित्र, सावित्र, विवस्वान, इन्द्र, इन्द्रजित, मित्रक, शिव, शिवजित, भूभृता तथा मध्य में ब्रह्मा।

मण्डल के बाहर, पूर्व के क्रम से सर्व, स्कन्द, आर्यमा, जृम्भक, पिलिपिच्छक तथा विदिशाओं में ईश से चरकी, विदारी, पूतनिका, व पापराक्षसी, ये आठ, पद के बाहर होते हैं। उससे बाहर देवग्रह होते हैं।

अब इक्यासी पद के वास्तु का वर्णन इस श्लोक में किया गया है।

इस श्लोक में वास्तुपदविन्यास की चर्चा की गई है। घर या मंदिर या किसी भी निर्माण कार्य शुरू करते समय उसकी प्लानिंग किस प्रकार करना चाहिए, किस दिशा में, कहाँ क्या बनवाना चाहिए, इसका विचार वास्तुपद विन्यास से करते हैं।

किसी भी भूमि के हिस्से या भूखण्ड या प्लॉट पर, सूर्य, चन्द्रमा, अन्य ग्रह व नक्षत्र के कारण, ऊर्जा के विभिन्न क्षेत्र पैदा होते हैं। उसकी कल्पना एक वास्तुपुरुष के रूप में की गई है तथा उस प्लॉट पर पैदा हुई, विभिन्न ऊर्जा को वास्तुपुरुष के अलग-अलग देवता के नाम से कहा गया है।

जब किसी प्लॉट को दस आड़ी तथा दस खड़ी रेखा अर्थात् ८१ भागों में बांटते हैं तो उसे परमशायिक या ८१ पद का वास्तु विन्यास कहते हैं। इसमें जो ८१ खाने बनते हैं उसका प्रत्येक खाना, पद कहलाता है। इस प्रकार कुल ८१ पद होते हैं। इन पदों में अलग-अलग देवता का निवास (स्थान) बताया गया है। यहाँ एक वास्तुपुरुष की कल्पना की गई है तथा यह बताया गया है कि उस वास्तुपुरुष के किस अंग (शरीर के हिस्से या भाग) पर कौन सा देवता होता है या किस प्रकार की ऊर्जा होती है। अब यदि किसी कारण वश उस देवता की ऊर्जा वहाँ याने उस स्थान पर उत्पन्न नहीं हो या वह स्थान या जगह दूषित (खराब) हो वास्तुपुरुष का वह अंग (शरीर का भाग) पीड़ित या दुखी

होगा तो घर के मालिक के उसी अंग में पीड़ा या दुख होगा, रोग होगा, उस अंग में खराबी आएगी।

घर में वास्तु दोष की उत्पत्ति होने का अर्थ ही यही है कि घर के उस भाग की ऊर्जा बराबर नहीं मिल पा रही, चूँकि घर के उस भाग में ऊर्जा खराब है तो घर के मालिक या उसमें रहने वाले व्यक्तियों को वह ऊर्जा प्राप्त नहीं हो रही है अतः घर के व्यक्तियों शरीर के उस अंग में रोग है।

महामर्म (म)

३ पदवाला सूत्र			६ पदवाला सूत्र			९ पद वाला सूत्र		
वायु	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	मृग	अश्वि	उदिति	इंश
रोग	रुद्र	रुद्रजय		म	भूधर	आप	आपवत्स	पर्जन्य
शोष								जयन्त
असुर		म			म			महेन्द्र
वरुण	मित्र	म		ब्रह्मा		आर्य	म	आदित्य
पुष्पदन्त			म		म			सत्यक
सुग्रीव	इन्द्रराज	इन्द्र		विवस्वान	म	सविन्द्र	सावित्र	भृश
दौवारिक								अन्तरिक्ष
पितृ	मृष	भृङ्गा	गन्धर्व	यम	राक्षस	वितथ	पूषा	अग्नि

चित्र २.८ मर्म स्थान

इसे, ऐसे भी देख सकते हैं कि माना कि जो खाना हम खाते हैं उसमें विटामिन ए की कमी हो तो शरीर में विटामिन ए की कमी जो रोग होते हैं वो उस व्यक्ति के शरीर में होंगे। विटामिन सी की कमी है भोजन में, तो विटामिन सी की कमी से होने वाले रोग होंगे। अब यहाँ

हम इस वास्तुपुरुष के द्वारा यह पता लगा सकते हैं कि आपवत्स या अपवत्स भाग, यदि वास्तुपुरुष का दोष कारक है कि मुख से सम्बन्धित रोग या बीमारी होने की पूर्ण आशंका होती है या होगी। हृदय या दिल की बीमारी होने पर घर का ब्रह्मा देवता वाला भाग दोष कारक होने पर ऐसा होगा। इसी प्रकार अन्य देवता के दूषित होने पर शरीर के रोग के हिस्से का पता लगाया जा सकता है। ये प्रत्येक देवता जिस पद में रहते हैं, उस पद की ऊर्जा को प्रदर्शित करते हैं, जैसे ईशान कोण में स्थित १ पद का देवता ईश, उस पद की ऊर्जा को प्रदर्शित करता है।

२.१.११ वास्तुपुरुष की उत्पत्ति

एक दैत्य ने अपने भुजाओं के बल, वीर्य आदि से विश्व को आक्रान्त कर दिया तथा देवताओं का शत्रु बन गया। वह युद्ध में पराजित हो भूमि पर गिरा। वह सर्वत्र व्याप्त हो गया, उसके बाद बहुत बार घूमा, पृथ्वी का विमथन किया तो मृत्यु लोकवासी बहुत दुखी हुए और मुनि व देवता भी दुखी हुए।

वास्तु का क्षेत्र

उत्तान (चित लेटा हुआ, पसरा हुआ, फैला हुआ) वह इस प्रकार फैला कि उसके पैर नैऋत में तथा शीर्ष ईशान में हैं। वह सभी ओर व्याप्त हो गया, जिस प्रकार आकाश छोटे व बड़े घट आदि में व्याप्त होता है वह उसी प्रकार विशेष रूप से नगर, पुर, क्षेत्र, खण्ड, आँगन आदि में व्याप्त हो गया। तब क्षण भर में देवता उसके शरीर में स्थित हो गए।

वास्तुपुरुष के शरीर में देवताओं की स्थिति

मूर्ध्नी में ईश, आँख में पर्जन्य व दिति है। आप, आपवत्स, जयन्त, अदिति व इन्द्र मुख, गला, दाहिना कान, बाँया कान तथा बाएँ कन्धे पर, अर्गला दाहिने कन्धे पर स्थित हैं।

आर्यक बाईं भुजा पर व चन्द्र आदि दाहिनी भुजा पर हैं। सवित्र व सावित्र बाएँ प्रकोष्ठ (forearm) पर, शिव व शिवजित दाहिने प्रकोष्ठ (forearm) पर, महीधर व आर्य स्तन पर, विवस्वान व मित्र कुक्षि में, ब्रह्म नाभि पर, इन्द्र लिंग में, इन्द्रजित अण्डकोष में तथा अन्य देवता दोनों पैर में प्रविष्ट हो गए।

देवता सन्तुष्ट न होने पर दोष

ये देवता जो शरीर में प्रविष्ट हैं उनको यदि पूजा के द्वारा सन्तुष्ट कर दिया जाए तो इष्ट फल देते हैं, न करने पर विपरीत फल देते हैं, अतः वास्तुपूजा करें।

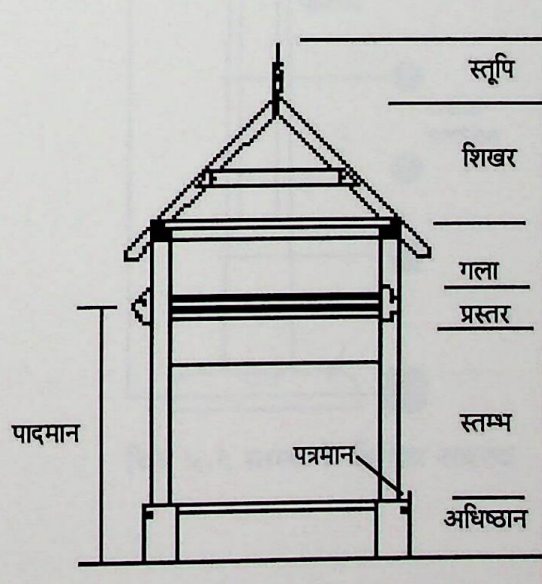
२.१.१२ भवन के अंग

उपपीठ

रक्षा, शोभा तथा ऊँचाई के लिए सभी गृहों में मासूर (मसूरक, अधिष्ठान-base) के नीचे, एक अतिरिक्त उपपीठ (pedestal, socle), एक से दो हस्त चौड़ाई की, आठ-आठ अंगुल बढ़ाते हुए बनवाना चाहिए।

भीतरी भाग में गर्त आँगन (depressed yard) में वृष या ध्वज योनि में होना चाहिए। जल प्रवाहित होने का मार्ग ईशान, उत्तर या पूर्व दिशा (मुख) में होना चाहिए।

मासूर (मसूरक, अधिष्ठान-base)



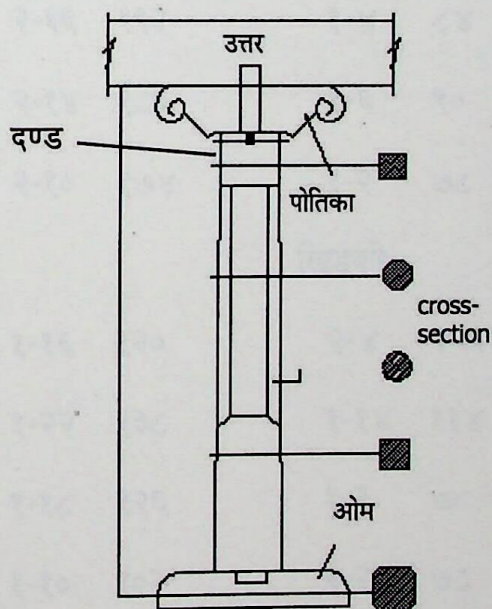
चित्र ५.२ भवन के अंग

मनुष्यों के गृहों की उपपीठ की ऊँचाई, गृह के अधिष्ठान (base) के बराबर या उसके छह भाग किए जाए तो पाँच भाग, सात भाग किए जाए तो छह भाग, आठ किए जाए तो सात भाग, नौ किए जाए तो आठ भाग या दस भाग किए जाए तो नौ भाग होना चाहिए। पादुक (footing) आदि इसके अनुपात में होते हैं।

स्तम्भ

इस प्रकार अधिष्ठान (base) को दृढ़ बनाने के बाद, जो पादमान शेष रहता है उसे स्तम्भ की ऊँचाई कहते हैं। यहाँ छह, सात, आठ, नौ, दस या ग्यारह से विभाजित कर, एक भाग जोड़कर या घटाकर भी, स्तम्भ की ऊँचाई लेते हैं।

स्तम्भ को जिस पाद-पीठ पर स्थापित करते हैं उसे ओमा कहते हैं। स्तम्भ के ऊपर रखी जानी वाली पोतिका की मोटाई ओमा से कम होना चाहिए।



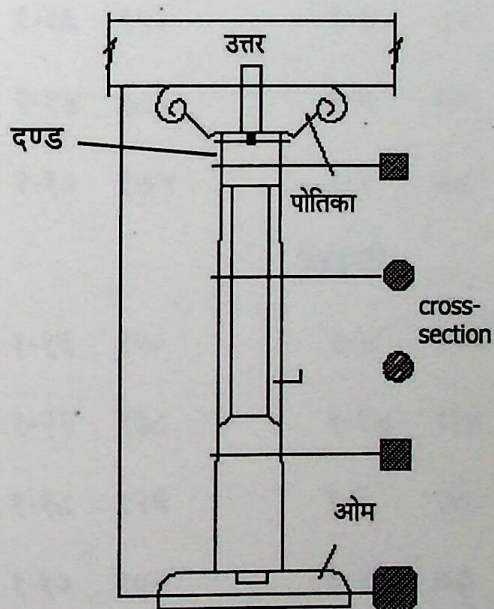
चित्र ५.६ स्तम्भ के विभिन्न अवयव

मनुष्यों के गृहों की उपपीठ की ऊँचाई, गृह के अधिष्ठान (base) के बराबर या उसके छह भाग किए जाए तो पाँच भाग, सात भाग किए जाए तो छह भाग, आठ किए जाए तो सात भाग, नौ किए जाए तो आठ भाग या दस भाग किए जाए तो नौ भाग होना चाहिए। पादुक (footing) आदि इसके अनुपात में होते हैं।

स्तम्भ

इस प्रकार अधिष्ठान (base) को दृढ़ बनाने के बाद, जो पादमान शेष रहता है उसे स्तम्भ की ऊँचाई कहते हैं। यहाँ छह, सात, आठ, नौ, दस या ग्यारह से विभाजित कर, एक भाग जोड़कर या घटाकर भी, स्तम्भ की ऊँचाई लेते हैं।

स्तम्भ को जिस पाद-पीठ पर स्थापित करते हैं उसे ओमा कहते हैं। स्तम्भ के ऊपर रखी जानी वाली पोतिका की मोटाई ओमा से कम होना चाहिए।



चित्र ५.६ स्तम्भ के विभिन्न अवयव

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में पाँच प्रकार के स्तम्भ का वर्णन मिलता है:-

रुचक	चार कोण वाला (वर्गाकार)
वज्र	आठकोणवाला
द्विवज्र	१६ कोणवाला
प्रलीनक	३२ कोण वाला
वृत्त	गोल

२.१.१३ द्वार का स्थान व विवरण

द्वार पूर्वादि दिशा में नीचे इस प्रकार हो कि द्वार का मध्य, आँगन की मध्य रेखा तथा घर की मध्य रेखा के बीच हो। द्वार के आय, व्यय, तथा योनि की गणना, अंगुल में करें।

दोनों door post की वाजन सहित चौड़ाई, उत्तर की चौड़ाई के बराबर हो तथा उसकी मोटाई sill तथा head के सहित, उसकी चौड़ाई के बराबर या पौन या दो तिहाई या आधी हो।

द्वार	ऊँचाई		चौड़ाई	
हस्त-अंगुल	से.मी.	हस्त-अंगुल	से.मी.	
मुख्य	२-१६ १९२	१-४	८४	
मुख्य	२-१४ १८६	१-६	९०	
उपद्वार	२-१० १७४	१-२	७८	
		खिड़की		
बड़ी	१-१६ १२०	२-४	१५६	
	१-२२ १३८	१-१४	११४	
छोटी	१-१८ १२६	१-२	७८	
	१-१० १०२	१-२	७८	
रोशनदान	०-१४ ४२	१-६	९०	
	०-१२ ३६	१-०	७२	

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्

मुख्य द्वार

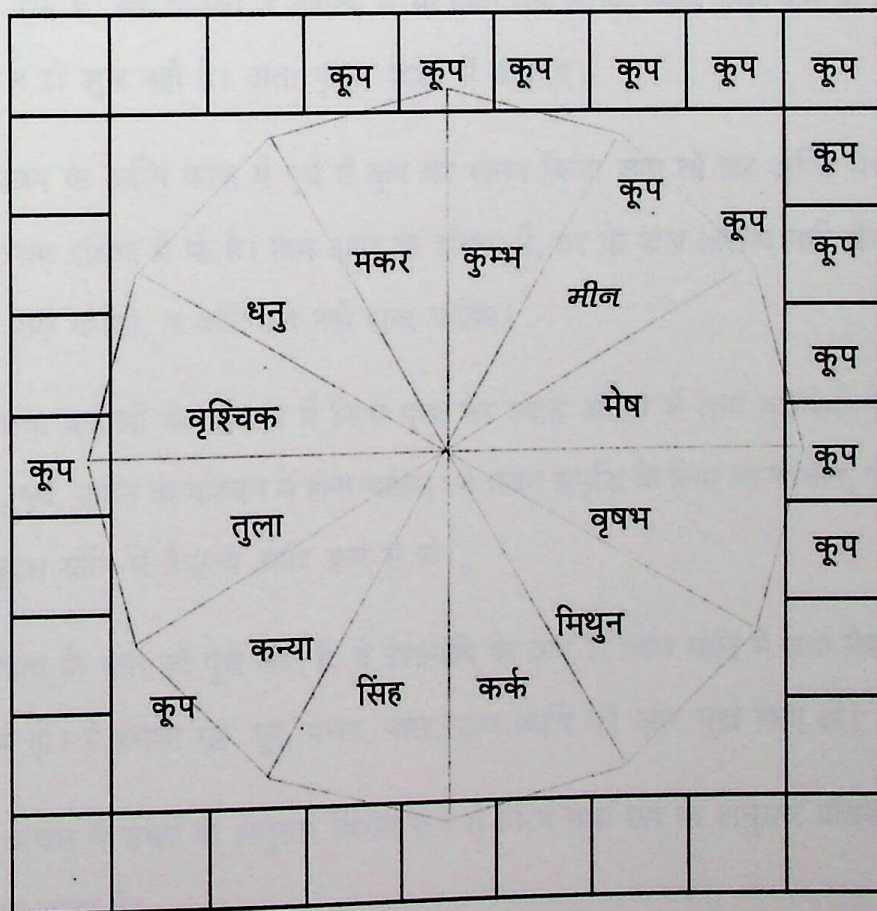
पुष्पदन्त, भल्लाट, इन्दू, तथा गृहक्षत के पद में द्वार बनावाना चाहिए। यह प्रांगण के मध्य से चार, पाँच, छह, सात आदि दण्ड का गमन लिए हो। मध्यद्वार तथा आठ उपद्वार भी उन्नत भूखंड दो मंजिले, वक्त्र (मुख, gable) आदि से युक्त हो सकते हैं।

भृश, पूषा, भृंगराज, द्वारपाल, शोष, नाग, अदिति इन पदों में मनुष्यों के रहने के घरों में उपद्वार बनवाए।

२.१.१४ शाला के उपयोग

होम तथा अर्चना आदि पूर्व में बनवाना चाहिए। कुटुम्बादि के कक्ष उत्तर दिशा में होना चाहिए। या दोनों आपस में बदल सकते हैं।

अतिथि का स्वागत दक्षिण दिशा में, धन रखने के लिए पश्चिम दिशा में कक्ष होना चाहिए। इन दोनों को आपस में बदल सकते हैं। इन दोनों का (पश्चिम व दक्षिण का) शेष भाग शयन तथा विद्याभ्यास के लिए उपयोग कर सकते हैं।



खलसद्म (खलिहान) दक्षिण में हो, धान्य भवन दक्षिण में या नैऋत्य में हो। धनालय (धन रखने का स्थान) उत्तर, पूर्व, पश्चिम या सिंह, वृश्चिक, तुला या कुलीर या धान्यालय के लिए कहे गए स्थान पर हो। यदि आवश्यक हो तो धान्यालय को धनालय के लिए कहे गए जगह पर बनवा सकते हैं।

गोशाला इन्द्र, वरुण, वितथ, पर्जन्य, जयन्त, पूषा या पुष्पदन्त, द्वारपाल, भृंग या शोष के पद में बनवाए। भैंस का स्थान यम के पद में हो, बैल को भैंस के या गोशाला के स्थान पर रखे।

सभी दिशाओं में पशुओं का कोण में जाने हेतु कर्ण को लांघना शुभ नहीं है। वृष शुभ है पर सिंह शुभ नहीं है। करण में सिंह, व्याघ्र, विष्टि, गर्दभ, तथा स्थिर करण शुभ नहीं हैं।

रसोई पर्जन्य, शिखि, या वायु या मेष या वृष राशि में बनवाए। वहीं भोजनालय बनवाए या मकर या वरुण के पद में बनवाए। सौख्यगृह (आरामघर) कुम्भ या मकर या वायु के पद में बनवाए या आवश्यक हो तो वृष या मेष राशि में बनवाए तथा उलूखलम् (pounding house वायु के पद में बनवाए।

मीन राशि में कूप अत्यन्त शुभ है। यह सभी अर्थ व पुष्टि को देता है। मेष व कुम्भ भी शुभ है। मकर व वृषभ में भी अर्थ व सम्पत्ति देता है। आप, आपवत्स के पद में शुभ है। इन्द्रजित के पद में शुभ है। वरुण के पद में शुभ है यदि वायव्य में हो तो नारी का क्षय करता है।

कूप अन्तरिक्ष के पद में शुभ है। इसी प्रकार तालाब महेन्द्र, महीधर, वरुण, सोम, ईशान, तथा वृषभ राशि में शुभ है। यह वायव्य व नैऋत्य में भी देखा गया है कि स्नान तथा पीने के लिए, जब तक नदी का जल न हो शुभ नहीं है। अतः पृथक दिशा में बनवाए।

यदि भवन के अग्नि कोण में पूर्व में कूप का खनन किया जाए तो वह अग्नि भय देता है। इसी प्रकार का परिणाम दक्षिण में भी है। ग्राम आदि के दक्षिण में, घर के पास तालाब नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार घर के पास बगीचे, व काँटेवाले नहीं होना चाहिए।

राजा तथा ब्राह्मणों के आवास में नित्य पूजा का स्थान आँगन में तथा कुलदेवी देवता आदि की प्रतिष्ठा ईशान, पूर्व, अग्नि या पश्चिम में होना चाहिए। ये भवन समृद्धि के लिए ध्वज योनि, ईश, पूर्व, अग्नि, दक्षिण तथा वृषभ योनि में नैऋत्य आदि क्रम से हो।,,

कुलदेवता के धात जो पूजे जाते हैं, वे ईशानादि के क्रम से ध्वज योनि में तथा नैऋत्य आदि क्रम में वृष योनि में हों। ये हमेशा गृह, पुर, पत्तन, नगर, ग्राम आदि की ओर मुख किए हो।

चल, अचल व उभय के अनुसार विशेष रूप से निरंग तथा संग के अनुसार प्रतिमा को विभिन्न में प्रतिष्ठित किया जाता है।

राजा के सुख के लिए कमरा मित्र के पद में, विहार के लिए वायु के पद में, व्यायाम के लिए अर्गल के पद में तथा नैऋत्य में, स्नानादि पर्जन्य के पद में, dinning hall इन्द्र व वरुण के पद में, नृत्य को गन्धर्व के पद में, शस्त्र आदि नैऋत्य में, तथा शय्या गृह गृहक्षत या पूर्व में बनवाए।

इस प्रकार घर बनवाने के पश्चात आचार्य पहले चुने हुए शिल्पियों कुशल कारीगरों को इच्छानुसार मणि आदि से जड़ित चूड़ियाँ व कुण्डल भेंट कर सन्तुष्ट करें। उसके बाद स्वयं घर को ग्रहण करें तथा शुभ मुहूर्त में यजमान के साथ शुभ विधि से वास्तुपूजन आदि को करें।

२.२.१ राजप्रासाद व नगर नियोजन

नगर नियोजन में राजप्रासाद का अत्यधिक महत्व होता है। राज प्रासाद उचित स्थान पर होने पर राजा कुशलतापूर्वक नगर पर शासन करता है, नगरवासी सुख-शान्ति का अनुभव करते हुए, उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

२.२.२ पदविन्यास

पुर में चौंसठ पद का वास्तु विन्यास करना चाहिए।

उसके आश्रय में परिखा (प्रतिकूप, खाई, नगर या किले के चारों और बनी नाली या खात), परकोटा (प्राचीर, चहारदीवारी), नगर का प्रवेश द्वार तथा अट्टालक (watch towers, अटारी, छत के ऊपर बना कमरा) बनवाना चाहिए।

उचित प्रकार से विभाग (विभाजित करके) करके रास्ते, चौराहे बनवाना चाहिए। क्रम से अन्दर व बाहर देवता के मन्दिर बनवाकर स्थापना करना चाहिए।

२.२.३ प्लव

उत्तर-पूर्व या पूर्व या (उत्तर) दिशा में झुकी हुई भूमि हो। मित्र पद में स्थित होने पर यश, श्री, विजय देने वाली होती है।

ईशान कोण में झुकी हुई भूमि में वर्ण के क्रम के अनुसार चौकोर भूमि शुभ होती है।

२.२.४ राज महल

नगर के मध्य से पश्चिम की ओर राजा का महल होना चाहिए।

दुर्ग (गढ़, किला, कोट) में भूमि के अनुसार (उपलब्धता के अनुसार) राजा का महल पश्चिम दिशा, विवस्वत, भूधर, अर्यमा के पद में भी निवेश कर सकते हैं।

२.२.५ राजप्रासाद मान

दो सौ तैंतालीस धनुष (चौड़ाई वाला) ज्येष्ठ प्रासाद (बड़ा महल, royal house), एक सौ बासठ धनुष का मध्यम तथा एक सौ आठ धनुष (की चौड़ाई वाला) प्रासाद छोटा कहलाता है।

बड़े नगर में बड़ा महल, मध्यम में मध्यम तथा छोटे नगर में छोटा राजमहल बनवाना चाहिए।

२.२.५ परकोटा

यह राजमहल परकोटे परिखाओं (किल्ले के चारों ओर बनी नाली) व गुप्त खाई से युक्त होना चाहिए तथा इसकी कान्ति सुन्दर होना चाहिए (यह सुन्दर दिखना चाहिए)। वह तमङ्ग, भ्रम (फव्वारा, नाली), निर्यूह (कंगूरा, मीनार, बुर्ज या कलश जो स्तम्भ या दरवाजों पर बनाया जाता हैं।) व मजबूत अट्टालक से युक्त होना चाहिए।

राजा के महल को इक्यासी भाग में विभाजित करें (परमशायिक पद विन्यास करें)। यह भवन राजमार्ग (royal road or main road) पर हो तथा वास्तु का द्वार (residential gate) उत्तर दिशा की ओर हो।

२.२.६ द्वार

इसी प्रकार से अन्य दिशा में निर्माण करना चाहिए।

भल्लाट के पद में गोपुर (गढ़ या नगर का फाटक, गेट) बनवाना चाहिए।

महीधर के पद में निर्माण होने पर महेन्द्र द्वार शुभ होता है।

विवस्वत के पद में निर्माण होने पर पुष्पदन्त तथा आर्यमा के पद में निर्माण होने पर गृहक्षत के पद में द्वार शुभ होता है। अन्य दिशा के द्वार को भी प्रदक्षिण क्रम से बनवाना चाहिए। सभी में, गोपुर में भी सामने का द्वार शुभ कहा है।

उस नगर के द्वार से बीस अंश कम मान का पक्षद्वार (side doors) (पक्ष- किसी भी वस्तु का पार्श्व, बगल) सुग्रीव, जयन्त व मुख्य के पद में कहा गया है।

२.२.७ पानी निकलने के लिए नाली

वितथ के पद में प्रदक्षिण (clockwise, दाईं ओर रखा हुआ, या खड़ा हुआ दाईं ओर घूमने वाला) क्रम से पानी निकलने के लिए नाली बनवाना चाहिए। नगर के समान वास्तु पद विन्यास करें तथा उसमें देवताओं की स्थापना करें।

२.२.८ नियोजन

मित्र के पद में राजा का महल बनवाएँ। महल का मुख पूर्व दिशा की ओर हो। पृथ्वी जय के समान कार्य करें।

राजा की इच्छानुसार शुभलक्षणों से युक्त श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, मुक्तकोण राजमहल का निर्माण करवाएँ।

(राजगृह) शाला व कर्मचारियों से युक्त होना चाहिए। इनके भवन पूर्व दिशा में सूर्य के पद में होना चाहिए।

सत्य के पद में धर्माधिकरण (विधि का प्रशासन, न्यायालय) का निवास होता है। व्यवहार निरीक्षण के लिए भी वही स्थान होता है। भृश में कोष्ठागार (भण्डार-गृह) तथा अन्तरिक्ष के पद में मृग व पक्षियों का निवास कहा है।

रसोई अग्नि (south-east) दिशा में वायु के पद में बनवाना चाहिए। पूषण के पद में सभाजन (सम्मानित करना, पूजा करना, स्वागत करना) का आश्रय तथा भोजन का स्थान बनवाना चाहिए।

सावित्र के पद में वाद्यशाला (वाद्य-बाजा अर्थात् संगीत के लिए कमरा) तथा सवित्र के पद में वन्दि (वन्दना करने वालों) के स्थान बनवाना चाहिए। वितथ के पद में चर्म (चमड़े) तथा उसके योग्य अन्य आयुध का स्थान कहा है।

गृहक्षत के पद में सोना, चाँदी आदि का कार्य करने वालों का स्थान कहा है। दक्षिण दिशा में यम के पद में गुप्ति व कोष्ठागार (a prison or a confinement) बनवाना चाहिए। गुप्ति-जेल, कोष्ठागार का यहाँ अर्थ-आयुध (magazine) के स्थान से लिया है।

गन्धर्व के पद में प्रेक्षा-गृह (theatrical and music chamber or halls) (प्रेक्षा-देखना) तथा संगीत व निवास (bed chamber) (वास-शयनकक्ष) बनवाना चाहिए। विवस्वत के पद में रथ (गाड़ी, वाहन के लिए कक्ष) व हाथियों के लिए स्थान बनवाना चाहिए। वायव्य दिशा में वापी (जल के स्थान यानि तालाब, कुआँ, पानी की टंकी आदि) का निर्माण करना चाहिए।

अन्तःपुर सुग्रीवपद के वायु दिशा और गन्धर्व पद के बाहर बनवाना चाहिए। यह अन्तःपुर प्राकार (परकोटे) से घिरा होना चाहिए। इसका द्वार जय (इन्द्रजय) के पद में उत्तर की ओर मुख वाला होना चाहिए। स्थपति को प्रासाद का निर्माण पराङ्मुख (विमुख, उलट) (reverse situation) नहीं करवाना चाहिए। भृङ्गराज के पद में खेलने का स्थान, झूला व कुमारी का भवन बनवाना चाहिए।

मृग में अन्तःपुर तथा पितृ में शौचालय का निर्माण करवाना चाहिए। विद्वान राजा की स्त्री का उपस्थान इन्द्र के पद में बनवाएँ।

सुग्रीव के पद में अरिष्टार (प्रसव-गृह, सूतिका गृह-वह स्त्री जिसका हाल ही में बच्चा हुआ हो उसके रहने के लिए कक्ष) शुभ होता है। उसके बाद के भाग में भी शुभ होता है। (पितृ के पद में भी शुभ कहा है।)।

अशोक वाटिका, स्नानधारागृह (bathing fountains) (नहाने के लिए फव्वारे) तथा लता-मण्डप (creeper arcade) से युक्त लतागृह (creeper arbours) भी वहीं होना चाहिए।

लकड़ी के पहाड़, वापी (पानी का स्थान) तथा फूलों की वीथी को अच्छी तरह कल्पना करके बनवाना चाहिए। पुष्पदन्त के पद में यन्त्र से युक्त फूलों का घर (floral garden) बनवाना चाहिए।

वरुण के पद में वापी व पान गृह (पीने का स्थान) बनवाना चाहिए। असुर के पद में कोष्ठागार (धान्य-गृह) तथा शोष के पद में आयुध-गृह (अस्त्र-शस्त्र गृह) बनवाना चाहिए।

स्थपति के लिए यह श्रेयस्कर होता है कि वह रुद्र के पद में भाण्डागार (store house a treasury offices or even magazine) का निर्माण करवाए। पापयक्ष्मा के पद में ओखली व चक्की का भवन बनवाना चाहिए।

राजयक्ष्मा के पद में लकड़ी का कार्य करना श्रेयस्कर होता है। औषधियों का स्थान वायु दिशा में रोग के पद में बनवाना चाहिए।

विद्वानों ने नाग के पद में हाथी का स्थान शुभ कहा है। मुख्य के पद में व्यायाम-गृह (योग, एक्सरसाईज रूम), नाटक-कक्ष तथा चित्र-गृह (चित्रकारी, पेंटिंग का कमरा) बनवाना चाहिए।

भल्लाट के पद में गाय व दूध का स्थान शुभ कहा है। उत्तर दिशा में सोम के पद में पुरोहित का स्थान कहा गया है। यहीं पर राजा का अभिषेक (राजतिलक, राजप्रतिष्ठा), दान, अध्ययन व शान्ति का स्थान कहा है।

भूधर के पद में चामर व छत्र का स्थान चामर (चंवर डुलाने वाले राजा के सेवक, पंखे की भांति) तथा छत्र (छत्र अर्थात् छाता पकड़ कर चलने वाला) तथा मन्त्रणा (विचार-विमर्श) के लिए स्थान कहा गया है। यहीं पर बैठकर राजा को अपने अधिकारियों के कार्य का निरीक्षण (देखना, अवलोकन करना) करना चाहिए। इसके उत्तर भाग में आश्रित घुड़शाल बनवाना चाहिए।

महीधर के पद में सभी ओर राजागृह के अनुसार यथावद् दक्षिण मुख वाली घुड़शाल बनवाना चाहिए। (प्रवेश करते समय) दाहिनी ओर घुड़शाल तथा बाईं ओर गजशाला होना चाहिए।

चरक के पद में राज-पुत्रों के घर बनवाना चाहिए। यहीं पर (राजपुत्रों के लिए) विद्यालय का निर्माण करवाना चाहिए।

राजमाता का घर अदिति के पद में बनवाना चाहिए। विद्वान वहीँ पर अलग से पालकी व शय्यासनगृह बनवाएँ।

आप के पद में राजा के हाथियों की शाला बनवाएँ। यहीं पर हाथियों के अभिषेचन (नहाने, अभिषेक करने) का स्थान कहा है।

आपवत्स के पद में हंस, क्रौञ्च व सारस पक्षियों के कूजन (कूजना, कूकू की ध्वनि करना) हो, वहाँ पर खिले हुए कमल हों तथा स्वच्छ जल (श्रृंगारप्रिय, क्रीड़ाशील) वाला जलाशय हो।

दिति के पद में काका, मामा आदि के गृह बनवाना चाहिए। राजा के सामन्त आदि के घर भी यहीं पर होना चाहिए।

ईशान दिशा में अग्नि के पद में ऊँचे स्तम्भ व वेदिका से युक्त मन्दिर का निर्माण करें, जिसका अधिष्ठान सुन्दर मणियों से युक्त हो।

पर्जन्य के पद में ज्योतिषी के घर बनवाना चाहिए।

औषधि	हाथी	व्यायाम नाट्य चित्रशाला	क्षीर	पुरोहित, दान	राजपुत्र	राजपुत्र, विद्या	राजमाता चाचा मामा	देवकुल
ओखली	भण्डागार	लकड़ी कर्म	चामर, छत्र, मन्त्रि, राजा द्वारा अधिकारियों का निरीक्षण			हंस क्रौंच सारस	हाथी जल	ज्योतिषी
आयुध								सेनापति
कोष्ठागार								
वापी पान								राजगृह
पुष्प								धर्म
अरिष्ट	स्त्री		रथशाला, गजशाला			वन्दिनः	वाद्यशाला	कोष्ठ
	उपस्थान							मृग पक्षी
अवस्कर	अन्तःपुर	कुमारी भवन	संगीत	गुप्त कोष्ठ	सोना, चाँदी	चर्म	सभा, भोजन	रसोई

जय (जयन्त) के पद में सेनापति का घर होना चाहिए, यह विजय देने वाला होता है। प्राकार (परकोटे) के साथ द्वार अर्यमा के पद में शुभ कहा है।

आग्नेय कोण पर आश्रित शस्त्रकार्यशाला व शस्त्र का स्थान कहा है। ब्रह्मस्थान को इन्द्रध्वज के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

इस स्थान (ब्रह्मस्थान) पर घर बनवाना अशुभ होता है। गवाक्ष (झरोखा, रोशनदान), स्तम्भ बनवाना भी सुख देने वाला नहीं होता है।

राजप्रासाद की रक्षा (गोपनीयता) के लिए उचित दिशा में सभा (court hall or council chamber) का निर्माण करवाना चाहिए। सभी भवन राजा के भवन की ओर मुख किए होना चाहिए।



२.३ देवप्रासाद

२.३.१ मंदिर के प्रकार

घर बनाने तथा उसमें प्रवेश करने की जो विधि वास्तुशास्त्र में विद्वानों ने बताई है, उसी विधि के अनुसार देवालय में भी कार्य करें।

देव तथा दैत्य की पूजा के लिए मंदिर के आकार के अनुसार क्रम से चौदह प्रकार की मंदिर की जातियाँ होती हैं।

चौदह जाति के प्रासादों में (१) नागर, (२) द्राविड, (३) भूमिज, (४) लतिन, (५) साबंधार (सांधार), (६) विमान नागर, (७) विमान पुष्पक, और (८) शृङ्ग और तिलक वाला मिश्र, ये आठ जाति के प्रासाद (मंदिर) उत्तम हैं। इसलिए सब देवों के लिए यही बनाने चाहिए, उनमें भी विशेषकर महादेव जी के लिए बनाना श्रेयस्कर है।

सब मंदिरों के भेद देश के अनुसार होते हैं। इनके मुख्य चौदह भेद हैं, वे लोक के अनुसार जानना चाहिए।

मंदिर के चौदह प्रकार:- देवताओं के लिए नागर आदि, दानव के लिए द्राविड आदि, गन्धर्व के लिए लतिन आदि, यक्ष के लिए विमान आदि, विद्याधर के लिए मिश्रक आदि, वसुओं के लिए वराटक आदि, नागों के लिए सांधार आदि, राजाओं के लिए भूमि आदि, सूर्य लोक के लिए विमाननागरछन्द आदि, चन्द्रलोक के लिए छन्दविमानपुष्पक आदि, पार्वती के लिए वलभी आदि, हरसिद्धि आदि के लिए सिंहावलोकन आदि, पिशाच आदि के लिए फांसना आदि तथा नपुंसक ये सब विराज आदि से उत्पन्न हैं।

मंदिर और गृह आदि बनाने के लिए सब प्रकार का शिल्पज्ञान, गुरु के बताए मार्ग के अनुसार, उसके लक्ष्य और लक्षण के अभ्यास से प्राप्त करना चाहिए।

इसके पश्चात् मंदिर का शुभ मुहूर्त में आरम्भ करना चाहिए।

२.३.२ मुहूर्त

शुभ लग्न और नक्षत्र में, पाँच ग्रह (सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, और शुक्र) के बलवान् होने पर तथा मास-संक्रान्ति और वत्स आदि के निषेध समय को छोड़कर मंदिर बनाना आरंभ करें।

२.३.३ वास्तुमंडल लिखने के पदार्थ

मणि, सोना, चाँदी, मूंगा और फलों से चौसठ पद का अथवा एक सौ पद का वास्तुमंडल पूजा जाता है। यह शुद्ध आटा अथवा शुद्ध चावलों से बनाना चाहिए, पश्चात् उसे पूर्वाचार्यों द्वारा बताई गई विधि के अनुसार बलि और पुष्प आदि से पूजना चाहिए।

२.३.४ आठ दिक्पाल

इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईश, ये क्रम से पूर्व आदि दिशा के अधिपति होते हैं।

२.३.५ कार्य के आरम्भ के समय पूजनीय देवता

दिक्पाल, क्षेत्रपाल, गणेश और चण्डिका देवी आदि देव देवियों की विधि पूर्वक पूजा करके कार्य आरंभ करें।

२.३.६ शिलान्यास के लिए अशुभ समय

धनु और मीन संक्रांति का सूर्य हो। गुरु, शुक्र अस्त हो, वैधृति और व्यतिपात के योग हो तथा दग्धा तिथि हो, तब कभी भी नवीन कार्य का आरंभ नहीं करना चाहिए।

गुरु व शुक्र ग्रह या कोई अन्य ग्रह जब सूर्य के अत्यन्त निकट होता है, तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त है, क्योंकि सभी ग्रह सूर्य के प्रकाश को ही परावर्तित करते हैं, ग्रह का स्वयं का कोई प्रकाश नहीं होता है। अतः जब वे सूर्य के पास, साथ या नजदीक होते हैं तब वे सूर्य के प्रकाश को परावर्तित नहीं कर पाते हैं तो कहते हैं कि ग्रह अस्त है।

२.३.७ वत्स का मुख

कन्या आदि तीन तीन राशि पर सूर्य हो, तब अनुक्रम से पूर्व आदि दिशाओं में द्वार आदि का कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन दिशाओं में सृष्टिक्रम से अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में वत्सका मुख रहता है। यह कार्य कराने वाले स्वामी को हानिकारक है।

सूर्य राशि	वत्स का मुख दिशा
कन्या, तुला और वृश्चिक	पूर्व
धन, मकर और कुंभ	दक्षिण
मीन, मेष और वृष	पश्चिम
मिथुन, कर्क और सिंह	उत्तर

२.३.८ आयादि विचार

आय, व्यय, नक्षत्र और अंश आदि गणना देवालय में दीवार के बाहर के भाग से होती है। देवालय में ध्वज आय, देव नक्षत्र, प्रथम व्यय और प्रथम अंश ये शुभ हैं।

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

११

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

११

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

संस्कृत भाषा १.१.१

देवालयों में वृष, सिंह और गज आय भी श्रेष्ठ हैं। आय से व्यय कम हो तो श्रेष्ठ हैं, सम व्यय हो तो पिशाच और अधिक व्यय हो तो राक्षस नाम का व्यय माना जाता है।

२.३.९ देवालय के लिए विचारणीय विषय

देवालय में आय, व्यय, अंश और नक्षत्र इन चार अंगों का तथा स्थापक (देव स्थापन करने वाले) और देव इन दोनों के परस्पर नाडीवेध, योनि, गण, राशि, वर्ण, वश्य, तारा, वर्ग और राशिपति, इन ९ अङ्गों का विचार करना चाहिए।

आय आदि का विचार, भूमि का लक्षण, वास्तु मण्डल, मास और लग्न आदि का विचार ये सब पूर्व शास्त्रों से जानना चाहिए।

यहाँ यह बताया है कि भूमि चयन, परीक्षण, आयादि, वास्तु पद विन्यास, निर्माण के लिए शुभ मास, लग्न आदि का विचार ग्रन्थ के अनुसार करना चाहिए।

२.३.१० दिक्साधन

रात्रि में दिशा का साधन दीपक, सूत और ध्रुव से किया जाता है। दिन में दिशा का साधन समतल भूमि के ऊपर शंकु रखकर किया जाता है।

२.३.११ खुदाई की विधि

प्रथम शेषनाग चक्र का विचार करके विद्वान शिल्पी खात विधि (खुदाई) करें। नींव को खोदने से भूमि में पाषाण (जब पत्थर आ जाए) अथवा पानी निकल जाय तो (वहाँ तक की गहराई तक खुदाई करना तथा) उसके ऊपर (सोने, चाँदी अथवा ताम्बे से बने) कछुआ की स्थापना करें।

२.३.१२ कछुए का मान

एक हस्त के विस्तार (चौड़ाई) वाले मंदिर में आधे अंगुल के नाप का कूर्म (कछुआ) नींव में स्थापित करें। दो से पंद्रह हस्त तक के मंदिर में प्रत्येक हस्त आधा-आधा अंगुल बढ़ा करके, (दो हस्त के मंदिर में एक अंगुल, तीन हस्त के मंदिर में डेढ़ अंगुल, चार हस्त के मंदिर में दो अंगुल, इस प्रकार आधा २ अंगुल बढ़ाने से पन्द्रह हस्त के मंदिर में साढ़े सात अंगुल के मान का कर्म होता है।) सोलह से इकतीस हस्त के विस्तार वाले मंदिर में प्रत्येक हस्त एक चौथाई अंगुल बढ़ा करके और बत्तीस से पचास हस्त तक के मंदिर में प्रत्येक हस्त एक-एक सूत बढ़ा करके नींव में स्थापित करें। इस प्रकार पचास हस्त के विस्तार वाले मंदिर में एक सूत कम चौदह अंगुल के मान का कूर्म होता है।

मंदिर चौड़ाई (हस्त) प्रत्येक हस्त के लिए वृद्धि

२ से १५ आधा अंगुल

१६-३१ एक-चौथाई अंगुल

३१-५० आठवें भाग अंगुल (१ सूत)

२.३.१३ कछुए का ज्येष्ठ, कनिष्ठ मान

कूर्म (कछुआ) का जो मान आया हो, वह मध्यम मान है, उसमें इस मान का एक चौथाई बढ़ाने पर ज्येष्ठ मान आता है। मध्यम मान में एक चौथाई कम करने पर कछुए का कनिष्ठ मान होता है। यह कूर्म (कछुआ) सुवर्ण (सोने) अथवा चाँदी का बनवाना चाहिए। उसको पञ्चामृत से स्नान कराके तथा तिल और यवों का पूर्ण आहुति पूर्वक होम करके स्थापित करें।

२.३.१४ शिला तथा कछुए की स्थापना का क्रम

पहले ईशान या अग्नि कोने में नन्दा शिला की स्थापना करें, प्रदक्षिण क्रम से अन्य शिलाओं को स्थापित करें।

मध्य में कूर्म (कछुआ) शिला को स्थापित करें। शिला स्थापन करते समय मांगलिक गीत और वाद्य यंत्रों का नाद कराएँ। वास्तु के देवों को बलि बाकुले, नैवेद्य अनेक प्रकार के धान्य के घृत (घी) से पूर्ण मालपूवे आदि चढ़ाएँ।

२.३.१५ सूत्रारंभ के नक्षत्र

मंदिर और गृह आदि का सूत्रारंभ तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद) हस्त, चित्रा, स्वाती, रोहिणी, पुष्य, मृगशीर्ष, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा और शतभिषा इन नक्षत्रों में करना चाहिए।

२.३.१६ शिला स्थापन हेतु शुभ नक्षत्र

रोहिणी, श्रवण, हस्त, पुष्य, मृगशिरा, रेवती और तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में शिला की स्थापना करना शुभ है।

२.३.१७ देवालय निर्माण स्थान

नदी के तट, सिद्ध पुरुषों के निर्वाण स्थान, तीर्थभूमि, शहर, गाँव, पर्वत की गुफाओं में, बावड़ी, वाटिका (उपवन) और तालाब आदि पवित्र स्थानों में देवालय बनाना चाहिए।



२.३.१८ मंदिर निर्माण पदार्थ

अपनी शक्ति के अनुसार काष्ठ (लकड़ी), मिट्टी, ईंट, पाषाण (पत्थर), सुवर्ण आदि धातुओं और रत्न, इन पदार्थों का देवालय बनाना चाहिए। देवालय बनाने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

२.३.१९ देवस्थापनफल

देवों की स्थापना, पूजा और दर्शन करने से मनुष्यों के सब पापों का नाश होता है तथा धर्म की वृद्धि एवं अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

२.३.२० देवालयनिर्माणफल

देवालय घास का बनाने से कोटिगुणा (करोड़ गुना), मिट्टी का बनाने से दस कोटिगुणा, ईंटों का बनाने से सौ कोटिगुणा और पाषाण का बनाने से अनन्त गुणा फल होता है।

२.३.२१ वास्तुपूजा के सात अवसर

कूर्म की स्थापना, द्वार स्थापन, पद्मशिला की स्थापना, मंदिर पुरुष की स्थापना, कलश और ध्वजा चढ़ाना और देव प्रतिष्ठा, ये सात कार्य करते समय वास्तु पूजन अवश्य करना चाहिए। यह पुण्याहसप्तक कहा जाता है।

२.३.२२ शान्तिपूजा चौदह अवसर

भूमि का आरंभ, कूर्म न्यास, शिलान्यास और सूत्रपात (तलनिर्माण), खुर शिला स्थापन, द्वार और स्तम्भ स्थापन, पाट चढ़ाते समय, पद्मशिला, शुकनास और मंदिर पुरुष के रखते समय, आमलसार, कलश चढ़ाना, तथा ध्वजा चढ़ाना, ये चौदह कार्य करते समय शान्तिपूजा अवश्य करना चाहिए।

२.३.२३ मंदिर-प्रमाण

एक हस्त से पचास तक के विस्तार वाले मंदिर का प्रमाण दीवार के बाहर कुंभा के मूलनासिका (कोणा) तक गिना जाता है।

२.३.२४ जगती

मंदिर के अधिष्ठान (base) को जगती कहते हैं। जिस प्रकार राजा (के बैठने के लिए) सिंहासन होता है, उसी प्रकार यह मंदिर का अधिष्ठान होता है।

२.३.२५ जगती-आकार

मंदिर के अनुसार, जगती का आकार पाँच प्रकार का होता है- वर्गाकार, आयताकार, आठ कोने वाली, गोल और वृत्तायत।

२.३.२६ जगती-मान

जगती की चौड़ाई, मंदिर की चौड़ाई से तीन गुना हो तो वह जगती कनिष्ठ (छोटे) मान की तथा चार गुना होने पर मध्यम तथा पाँच गुना होने पर ज्येष्ठ (बड़ा) मान की जानना चाहिए।

कनिष्ठ मान के मंदिर में ज्येष्ठमान की जगती, मध्यम मान के मंदिर में मध्यम मान की और ज्येष्ठमान के मंदिर में कनिष्ठ मान की जगती का निर्माण करना चाहिए। मंदिर के स्वरूप व लक्षण के अनुसार जगती का निर्माण करना चाहिए।

पंच कल्याणक (च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष) वाले अथवा देवकुलिका वाले जैन मंदिरों में, द्वारिका मंदिर में और त्रिपुरुष (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) के मंदिर में छहगुना अथवा सातगुना जगती रखना चाहिए।

२.३.२७ मण्डप की जगती

मण्डप के अनुक्रम से सवा गुना, डेढ़ गुना अथवा दोगुना लंबी जगती बनवाना चाहिए। हजारों (शिखर वाले) मंदिरों में यही विधि है।

२.३.२८ भ्रमणी (परिक्रमा)

तीन परिक्रमा वाला (मंदिर) ज्येष्ठ, दो परिक्रमा हो तो मध्यम और एक परिक्रमा हो तो कनिष्ठ होता है। परिक्रमा की ऊँचाई, जगती के तीसरे भाग सहित (जगती की मान में एक तिहाई जोड़कर) होना चाहिए।

चार कोने वाली, बारह कोने वाली, बीस कोने वाली, अट्ठाईस कोने वाली और छत्तीस कोने वाले ये प्रकार प्रकार की फालना (vertical divisions) होती हैं।

२.३.२८ जगती की ऊँचाई का मान

एक से बारह हस्त के चौड़ाई वाले मंदिर की जगती, मंदिर की (ऊँचाई की) आधी ऊँचाई की हो। तेरह से बाईस हस्त के चौड़ाई वाले मंदिर की जगती मंदिर के तीसरे भाग की, तेईस से बत्तीस हस्त के चौड़ाई वाले मंदिर की जगती चौथे भाग की और तैतीस से पचास हस्त के मंदिर की जगती (मंदिर ऊँचाई के) पाँचवे भाग की बराबर ऊँची बनवाना चाहिए।

तीन पत्तियों के कमल के साथ सरपत्रिका (दासा सहित ग्रासपट्टी) तीन भाग की हो। दो भाग का खुरा, सात भाग का कुम्भ बनवाना चाहिए।

तीन भाग का कलश, एक भाग का अंतरपत्र, तीन भाग की कपोताली (केवाल) और चार भाग का पुष्पकंठ बनवाएँ।

पुष्पकंठ से जाड्यकुम्भ का निर्गम (offset, projection) आठ भाग होना चाहिए। जगती के कोने में पूर्वादि सृष्टि क्रम (प्रदक्षिण क्रम से, clock wise) से दिक्पालों को स्थापित करना चाहिए।

२.३.२९ दिक्पाल

पूर्व-इन्द्र, अग्निकोण-अग्नि, दक्षिण-यम, नैऋत्य-नैऋति, पश्चिम-वरुण, वायव्य-वायु, उत्तर-कुबेर, ईशान-ईश।

२.३.३० जगती के आभूषण

जगती को प्राकारों से शोभायमान करें, चारों दिशाओं में मण्डप वाले चार द्वार बनवाएँ। पानी निकलने के लिये मगर के मुख वाली नाली बनवाएँ एवं सीढ़ियों और तोरणों आदि से शोभायमान जगती बनवाएँ।

मण्डप के आगे और प्रतोली (पोल, porticos) के आगे सीढ़ियाँ बनवाएँ, इसके दोनों तरफ हाथी की सूँड़ बनवाएँ। तोरण (पट्ट के अनुपात में) पट्ट के स्तर (दीवार पर) के बराबर बनवाएँ।

तोरण के दोनों स्तम्भ के मध्य का चौड़ाई, मंदिर के गर्भगृह के मान (दीवार के बाहर-बाहर का मान) से, गर्भगृह की दीवार (के अन्दर-अन्दर का मान) अथवा गर्भ के दीवार के मध्य-मध्य मान से रखा जाती है।

यह जगतीरूप वेदिका, मंदिर की पीठरूप है। इसे अनेक रूपों तथा तोरणों से शोभायमान बनाना चाहिए। तोरणों के झूलों में देवों की आकृति बनवाएँ।

२.३.३१ देव-वाहन-स्थान

देवों के वाहन रहने (रखने) के स्थान पर चौकी (चार स्तम्भ का मण्डप) बनवाएँ। यह चौकी मंदिर से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह अथवा सात पद दूर बनवाएँ।

२.३.३२ देवस्य-वाहन की ऊँचाई

मूर्ति की ऊँचाई के नौ भाग करें, उनमें से पाँच, छह अथवा सात भाग के बराबर वाहन की ऊँचाई होती है। अथवा (मूर्ति के) गुह्य, नाभि या स्तन तक वाहन की ऊँचाई रखना चाहिए। यह तीन-तीन प्रकार की वाहन की ऊँचाई होती है।

२.३.३३ देवता के वाहन का दृष्टिस्थान

वाहन की दृष्टि मूर्ति के पैर, घुटना अथवा कमर पर होना चाहिए। वृषभ (नन्दी) की दृष्टि शिवलिंग के विष्णु भाग तक और सूर्य के वाहन (घोड़ा) की दृष्टि मूर्ति के स्तनभाग तक रखनी चाहिए।

२.३.३४ रथ व मठ का स्थान

देवालय के पीछे (पश्चिम दिशा में) रथशाला, दक्षिण (दाहिनी ओर) में मठ और उत्तर में रथ का प्रवेश द्वार बनवाएँ। ऐसा विश्वकर्मा ने कहा है।

मंदिर जिस आकार का हो, उसी आकार की जगती बनवाना चाहिए। भिन्न आकार की नहीं बनवाना चाहिए, क्योंकि यह मंदिर का आसन रूप है।

२.३.३५ अन्यमंदिर

मुख्य मंदिर के आगे, पीछे, बाईं तथा दाहिनी ओर दूसरे मंदिर बनवाएँ जाएँ, वे सब मंदिर नाभि वेध से रहित हों।

नाभिवेध-दो मंदिर की नाभि एक रेखा में हो तो नाभिवेध दोष होता है।

२.३.३६ शिवलिंग के सामने अन्य देवता

लिंग के सामने कोई भी देव प्रतिमा के रूप में स्थापित करना नहीं चाहिए, क्योंकि जैसे सूर्य के तेज से ताराओं की प्रभा नष्ट होती है, वैसे दूसरे देवों की प्रभा नष्ट होती है, इसलिए वे देव भोगादि सुख संपत्ति नहीं दे सकते।

२.३.३७ देव का अभिमुख

शिव के सामने शिव, ब्रह्मा के सामने ब्रह्मा, विष्णु के सामने विष्णु, जिनदेव के सामने जिनदेव और सूर्य के सामने सूर्य, इस प्रकार आपस में स्वजातीय देव स्थापित किया जाय तो दोष नहीं माना जाता।

२.३.३८ दृष्टिवेध

ब्रह्मा और विष्णु ये दोनों देव एक नाभि में हों अर्थात् उनका देवालय आपस में सामने हो तो दोष नहीं है। परन्तु शिव के सामने दूसरे देव का दृष्टिवेध होता हो तो बड़ा भय उत्पन्न होता है।

२.३.३९ दृष्टिवेधपरिहार

शिवालय और अन्य देवों के देवालय, इन दोनों के बीच में प्रसिद्ध राजमार्ग (आम रास्ता) हो अथवा दीवार हो तो दोष नहीं है।

२.३.४० शिवस्नान के जल का मार्ग

शिव का स्नानजल गुप्त मार्ग से चण्डगण के मुख में गिरे, इस प्रकार स्नान का जल निकलने की गुप्त नाली रखना चाहिए। दिखते हुए स्नान जल का उल्लंघन (लांघना) नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्नान जल का उल्लंघन करने से पूर्वकृत पुण्य का नाश होता है।

२.३.४१ देवताओं की प्रदक्षिणा

चंडीदेवी को एक, सूर्य को सात, गणेश को तीन, विष्णु को चार और महादेव को आधी प्रदक्षिणा देनी चाहिए।

जिनदेव के आगे स्तोत्र, मंत्र और पूजन आदि करें, परन्तु बाहर निकलते समय अपनी पीठ नहीं दिखाएँ, सम्मुख ही पिछले पैर चलकर द्वार का उल्लंघन करें।

२.३.४२ जलमार्ग

पूर्व और पश्चिम दिशा द्वार वाले मंदिर की नाली (पनाला) उत्तर दिशा में रखना शुभ है। उत्तर दिशा में (दक्षिणाभिमुख) किसी भी देव की स्थापना नहीं करें। ऐसा शास्त्र का नियम है। (उत्तर दिशा की ओर) शिव मंदिर की नाली होना चाहिए।

२.३.४३ मण्डप स्थितदेवता के प्रणाल

मंडप में जो देव स्थापित हों, उनके स्नान जल निकलने की नाली बायीं और दाहिनी ओर रखना चाहिए। जगती के चारों दिशा में नाली बनवाएँ।

२.३.४४ पूर्व-पश्चिमाभिमुख देवा :

पूर्व और पश्चिम दिशाभिमुख वाले देवों का मुख दक्षिण और उत्तर दिशा में नहीं रखना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र और कार्तिकेय, ये देव पूर्व और पश्चिम मुख वाले हैं। इसलिए इनका मुख पूर्व अथवा पश्चिम दिशा में रहे, इस प्रकार की स्थापना करनी चाहिए।

नगर के मध्य और बाहर स्थापित किए हुए देवों का मुख नगर के सम्मुख रखना श्रेष्ठ है। गणेश, कुबेर, लक्ष्मीदेवी, उन्हें नगर के दरवाजों पर स्थापित करना सुखदायक है।

२.३.४५ दक्षिण अभिमुख देवता

गणेश, भैरव, चण्डी, नकुलीश, नवग्रह, मातृदेवता और कुबेर, इन देवों को दक्षिणाभिमुख स्थापित करें तो शुभफल देने वाले हैं।

२.३.४६ विदिश अभिमुख देवता

वानरेश्वर हनुमान जी का मुख नैऋत्य दिशाभिमुख रखें। अन्य दूसरे किसी भी देव का मुख विदिशा में कभी भी नहीं रखना चाहिए।

२.३.४६ सूर्य-मंदिर

सूर्य के पंचायत देवों में-मध्य में सूर्य, उनके प्रदक्षिण क्रम से गणेश, विष्णु, चण्डीदेवी और महादेव को स्थापित करें तथा नवग्रह और बारह गणों की मूर्तियाँ भी स्थापित करें।

२.३.४७ गणेशजी का मंदिर

गणेश के पंचायत देवों में-मध्य में गणेश, उनके प्रदक्षिण क्रम से चण्डीदेवी, महादेव, विष्णु और सूर्य की स्थापना करें तथा बारह गणों की मूर्तियाँ भी स्थापित करना हितकारक है।

२.३.४८ विष्णु देवता का मंदिर

विष्णु के पंचायत देवों में-मध्य में विष्णु को स्थापित करके उनके प्रदक्षिण क्रम से गणेश, सूर्य, अम्बिका और शिव को स्थापित करें तथा गोपियों की, अवतारों की मूर्तियाँ तथा द्वारिका नगरी को स्थापित करें।

२.३.४९ चण्डी का मंदिर

चण्डी देवी के पंचायत देवों में-मध्य में चण्डी देवी की स्थापना करके, उसके प्रदक्षिण क्रम से महादेव, गणेश, सूर्य और विष्णु को स्थापित करें तथा मातृदेवी, चौसठ योगिनी की और भैरव आदि देवों की भी मूर्तियाँ स्थापित करें।



॥ अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥

अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥

अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥

अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥

अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥

अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥

अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥
अथ अस्मिन् अष्टादशोऽध्याये ॥

२.३.५० शिव मंदिर

शिव के पञ्चायातन देवों में- मध्य में शिव को स्थापित करके, उसके प्रदक्षिण क्रम से सूर्य, गणेश, चण्डी और विष्णु को स्थापित करें, परन्तु उनका दृष्टिवेध अवश्य छोड़ दें।

२.३.५१ त्रिदेवस्थापना क्रम

त्रिपुरुष मंदिर में महादेव को मध्य में स्थापित करें। उसकी बायीं ओर विष्णु और दाहिनी ओर ब्रह्मा को स्थापित करें, इससे विपरीत स्थापन करेंगे तो भयकारक होंगे।

२.३.५१ त्रिदेव का कम व अधिक मान

शिवमुख का एक-तिहाई भाग कम करके दो-तिहाई भाग तक विष्णु की ऊँचाई रखें और विष्णु के आधे भाग तक ब्रह्मा की ऊँचाई रखें। ब्रह्मा की ऊँचाई के बराबर पार्वती देवी की ऊँचाई रखें। यह नियम सुखदायक और सभी इच्छितफल देने वाला है।

इस प्रकार से हमने देखा कि वास्तु के अनुरूप निर्माण करने को हम मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं- गृह-निर्माण, नगर नियोजन तथा राज-प्रासाद एवं मंदिर वास्तु।

किसी भी निर्माण में नगर का वास्तु महत्वपूर्ण स्थान रखता है। नगर का वास्तु उचित होने पर, नगर का विन्यास उचित होने पर उसमें निवास करने वाले व्यक्ति सुखी होते हैं। इसमें राज-प्रासाद का निवेश भी शामिल है। आज के समय में हम यह कह सकते हैं कि नगर संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने वाले व्यक्ति जैसे कलेक्टर, कमिशनर, पुलिस-अधीक्षक आदि का निवास उचित दिशा, स्थान तथा वास्तु के अनुरूप होने पर नगर का संचालन करने में सहायता मिलती है।

इसी प्रकार नगर के मुख्य मंदिर उचित स्थान पर होना चाहिए। इससे पूरे नगर की ऊर्जा प्रभावित होती है। उग्र देवता की स्थापना नगर से बाहर, बाहर की ओर मुख किए तथा सौम्य देवता की स्थापना, नगर के भीतर मध्य की ओर मुख किए होने पर नगर समृद्धि को प्राप्त करता है।

अध्याय ३
वास्तु की शैलियाँ



अध्याय ३

वास्तु की शैलियाँ



अध्याय ३

शैलियाँ

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
३.	वास्तु की शैलियाँ	३
३.१	शैलियों का क्षेत्र	३
३.२	शैलियों के विकास की परम्परा	३
३.३	नागर शैली	३
३.४	द्राविड़ शैली	४
३.५	वेसर शैली	४
३.६	अन्य शैलियाँ	४
३.७	विभिन्न ग्रन्थ के अनुसार शैलियाँ	६
३.७.१	विश्वकर्मप्रकाश के अनुसार	६
३.७.२	काश्यप शिल्प के अनुसार	८
३.७.३	प्रासाद मण्डन अध्याय १ श्लोक ५-८	१२
३.७.४	शिल्परत्नाकर	१२
३.७.५	मत्स्य पुराण के अनुसार	१५
३.७.६	अपराजित पृच्छा के अनुसार	१७
३.७.७	समरांगण सूत्रधार के अनुसार	१८



क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
१	संस्कृत के अक्षर	१
२	संस्कृत के वाक्य	२
३	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	३
४	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	४
५	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	५
६	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	६
७	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	७
८	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	८
९	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	९
१०	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१०
११	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	११
१२	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१२
१३	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१३
१४	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१४
१५	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१५
१६	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१६
१७	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१७
१८	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१८
१९	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	१९
२०	संस्कृत के वाक्य के अर्थ	२०

अध्याय ३

३. वास्तु की शैलियाँ

भूमिका

प्राचीन वास्तु कलात्मक में प्रसिद्धि वास्तु शैलियों के नाम वर्णित नागर, द्राविड एवं वेसर से हम परिचित हैं। इन शैलियों के लिए विद्वानों के अपने अपने मत हैं। वास्तुकला एवं वास्तु विद्या की दृष्टि से दो परम्पराएँ मुख्य रूप से थी। पहली-आर्य परम्परा जिसको हम विश्वकर्मिय परम्परा, विश्वकर्मा-स्कूल या उत्तरीय परम्परा या नागर शैली के नाम से जानते हैं तथा दूसरी परम्परा अनार्य परम्परा या मय परम्परा जिसको दक्षिणी, द्राविड परम्परा या शैली के नाम से जानते हैं।

३.१ शैलियों का क्षेत्र

प्राचीन शिखर, शैलियाँ नाम के अनुरूप द्राविड शैली का प्रदेश कृष्णा नदी व कन्याकुमारी के मध्य बताया गया है। नागर शैली को हिमालय व विन्ध्य के मध्य कहा गया है। कुछ शास्त्रों में विन्ध्य व कृष्णा नदी के मध्य प्रदेश को वेसर बताया है।

३.२ शैलियों के विकास की परम्परा

भारतीय वास्तुविद्या तथा वास्तु कला दोनों ही वैदिक काल में प्रारम्भ हो चुकी थी, परन्तु उसको विकसित होने में कुछ शताब्दियों का समय लगा होगा। महाकाव्यकालीन समय से ही विद्वानों के मतानुसार दो परम्परा ही थी। वास्तु विद्या की द्राविड या दक्षिण परम्परा, उत्तरभारतीय परम्परा की अपेक्षा अधिक पुरातन पाई गई है। आज के विद्वानों द्वारा भी प्रासादों का वर्गीकरण प्रायः देश के नाम से ही किया गया है। जैसे उत्तर भारत, दक्षिण भारत या द्राविड, उड़िया इत्यादि शैलियों से करते हैं। महाकाव्य (रामायण, महाभारत) कालीन युग को वास्तु शैलियों का जन्मदाता मानते हैं।

३.३ नागर शैली

वास्तुकला, भवनकला अथवा मन्दिर निर्माण की प्रसिद्ध तीन शैलियों में प्रमुख स्थान नागर शैली को दिया गया है। यह शब्द नगर से बना है। महाकाव्य के समीप



ही वात्स्यायन का समय माना जाता है। नगर, नागरिक, नागरिकता के अर्थों को बताने वाले प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रथम स्थान है। वैदिक कालीन सभ्यता एक प्रकार ग्रामीण सभ्यता थी। इसके पश्चात ही छोटे-छोटे ग्राम, बड़े-बड़े पुरों एवं नगरों तथा महानगरों में परिवर्तित हुए हैं। महानगरों के जन्म एवं विकास से ही देश में नागरिकता जाग्रत हुई थी, इससे बड़े-बड़े भवन, मन्दिर प्रासाद निर्मित होना पाया जाता है। प्रायः सभी वास्तुशास्त्री ग्रन्थ के निवेश प्रक्रिया में ऐसा ही बताते हैं। वास्तु कला की नागर शैली से तात्पर्य उस शैली से है जिसके विकास स्वरूप विशाल भवन, विमान तथा मन्दिर, प्रासाद अथवा हर्म्य बड़े-बड़े नगरों से बने तथा सभी नागर नाम से प्रसिद्ध हुए। उत्तरापथ के इस प्रदेश (मध्यप्रदेश) की वास्तु शैलियों का नाम नागर शैली पड़ा होगा। कामिकागम (४९.१-२) इसकी पुष्टि करता है।

नागर, द्राविड़ तथा वेसर में अन्तर मुख्य रूप उनके आधारभूत आकार में है।

नागर शैली में मन्दिरों या घरों का निर्माण मुख्य रूप से चतुरस्र (चौकोर या वर्गाकार) लिया जाता है। घरों में आकार, वर्णानुसार चौकोर से आयताकार होता है।

३.४ द्राविड़ शैली

द्राविड़ शैली का तात्पर्य उस शैली से स्पष्ट है जो दक्षिणापथ या दक्षिण भारत के विशाल भूभाग में निर्मित भवनों या विमानों की रचना में जन्मा, पुष्पित व विकसित हुआ है।

द्राविड़ शैली में मुख्य रूप से षडास्र या अष्टास्र (छह कोण या आठ कोण) का प्रयोग करते हैं। अर्थात् इसमें मन्दिर छह पहलु वाले या आठ पहलु वाले होते हैं।

३.५ वेसर शैली

वेसर शैली को उड़िया शैली भी कहते हैं तथा भौगोलिक दृष्टि से इस शैली का प्रयोग उड़िया या आन्ध्रप्रदेश में बहुतायत में देखने को मिलता है, उसका मुख्य रूप वृत्त या गोलाकार है।

३.६ अन्य शैलियाँ

भारतीय भूभाग के अभ्यन्तर विभिन्न प्रकार के प्रदेश हैं, पार्वत्य भी, मैदानी भी, रेगिस्तानी भी अथवा सैकत भी हैं अर्थात् विभिन्न लोकाचारानुरूप रहन-सहन एवं वेषभूषा, अर्चन, चिन्तन एवं व्यवहार भी विहित ही रहना चाहिए। सांसारिक सत्य के अनुरूप समाजगत विभिन्न क्रियाकलापों में भी पारस्परिक विचार का

परिलक्षण सुसंगत हो सकता है। उस समय के लोग, जैसा आज भी प्रचलित है, अपने-अपने प्रान्तों, देशों तथा जनपदों के प्रति भक्ति रखते थे। वंग, कलिंग, आन्ध्र, गुर्जर, महाराष्ट्र, पांचाल, उत्तर, कुरु आदि जनपदों में जागरुक विभिन्न सांस्कृतिक चेतनाओं ने कला के क्षेत्र में प्रेरणा प्रदान की है। जो अपने-आप में आश्चर्य की बात नहीं है।

नागर, द्राविड़, वेसर आदि शैलियों के अतिरिक्त कालान्तर में विभिन्न जनपदानुरूप विभिन्न वास्तुशैलियाँ प्रचलित हुई हैं। आज के विद्वानोंनुसार प्रासाद का वर्गीकरण देशों के अनुसार उत्तर या दक्षिण भारत या द्राविड़ या उड़िया शैलियों से करते हैं। वर्तमान में मौजूद प्रासादों के शिलालेखों के आधार पर किस राजा के काल से प्रासाद की निर्मिति की है, इसी से जैसा की यादव, चालुक्य, होयसल, पाल इत्यादि के प्रासादों का वर्गीकरण करते हैं। मध्ययुग कालीन भारतीय शिल्प शास्त्रों में, इनके शिल्प शास्त्र विषयक ग्रन्थों में जैसा प्रासादों के वर्गीकरण की जानकारी वर्णित है, वैसा आधुनिक विद्वानों ने कुछ अपवाद छोड़कर किया ही नहीं है।

वास्तु की विभिन्न शैलियों के सम्बन्ध में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उपरोक्त वर्णित शैलियों में नागर प्रासाद (चतुस्र), द्राविड़ (षडस्र, अष्टास्र) तथा वेसर (वर्तुल या गोल) है।

अतः मुख्य-मुख्य ग्रन्थों की वास्तु शैलियों का अध्ययन विषय विश्वकर्म प्रकाश एवं काश्यप शिल्प के अतिरिक्त भी करना आवश्यक समझा जा रहा है।

३.७ विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार वास्तु शैली

३.७.१ विश्वकर्मप्रकाश के अनुसार

विश्वकर्म प्रकाश में भी प्रासाद निर्माण का महत्व, विधि, मन्दिर के विभिन्न अंग, शिखर व मण्डप तथा शिलान्यास का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ में बड़े, मध्यम तथा छोटे लिंग के अनुसार या रूप भेद से तीन शिखर के निर्माण का वर्णन है।

इस ग्रन्थ में वास्तुशैलियों का स्पष्ट वर्णन नहीं बताया जाकर, शिखरों के नाम से इस प्रकार बताया गया है:-

मेरु, मन्दर, कैलास, कुम्भ, सिंह, मृग, विमानच्छन्दक, चतुस्र (चौकोर), अष्टास्र (आठ कोण), षोडशास्र (सोलह कोण वाला), वर्तुल (गोल), सर्वभद्रक, सिंहनन्दन, नन्दिनवर्धन, सिंह, वृष, सुवर्ण, पद्मक और समुद्रक के नाम से दर्शाए गए हैं।

वास्तु शैलियों में वर्गाकार, आयताकार शैली को नागर शैली, षडास्र तथा अष्टास्र अर्थात् छह पहलू तथा आठ पहलू वाले को द्राविड़ शैली तथा वृत्त या गोलाकार को वेसर शैली माना गया है।

नागर, द्राविड़ तथा वेसर इन तीनों शैलियों का आधार भवन की आकृति है। इस ग्रन्थ में नागर शैली के शिखर को मंजिलानुसार स्पष्ट किया गया है।

नागर जाति के शिखर (मंजिलानुसार)

जिसके एक सौ श्रृंग हों, चार द्वार हों, सोलह विभाग (मंजिल) ऊँचा हो, अनेक प्रकार के विचित्र शिखर हों उसे मेरु प्रासाद कहते हैं।

जो बारह मंजिल का हो उसे मन्दर कहते हैं। जिसमें नौ भूमि (मंजिल) हो उसे कैलास कहते हैं।

जिसके अनेक शिखर हो, आठ मंजिल हों, उसे विमानच्छन्दक कहते हैं। जो सात मंजिल वाला हो, नन्दिवर्धन कहलाता है।

व्याख्या-समरांगण सूत्रधार ६।६३-अनेक शिखरों वाला चित्र-सुन्दर, चार द्वार, महान उत्तुंग व आठ मंजिला विमानच्छन्दक होता है। बीस अंडकों से युक्त सात मंजिला नन्दिवर्धन होता है।

सोलह अण्डक वाला, छह मंजिला नन्दन प्रासाद होता है। (अनेक रूप से समन्वित होता है।)



जिसके अनेक शिखर हों, चंद्रशाला से युक्त हो तथा जो पाँच मंजिला हो उसे सर्वतोभद्र कहते हैं।

उसी प्रकार शुक्र (तोता की) नासिका के समान जो कोनों से युक्त हों और वृष की ऊँचाई के बराबर हो मण्डित हो, चित्रों से वर्जित हो वह वलभी छन्दक कहा है।

व्याख्या-वलभीछन्दक तीन शुकनासिका से युक्त होता है। वृष की ऊँचाई के बराबर वृष होता है, यह चित्र से मण्डित नहीं होता है।

जो सिंह के समान दिखे वह सिंह कहलाता है। गज (हाथी) के समान जो दिखे वह गज कहलाता है। कुम्भ के समान जिसका आकार हो वह कुम्भ कहलाता है तथा वह नौ मंजिल ऊँचा होता है।

अंगुली के पुट के मान जिसकी स्थिति हो, पाँच अण्डक से जो भूषित हो वह षोडशाश्र (षोडशास्र) कहलाता है।

जिसके दोनो पार्श्व भागों (बाजू) में चन्द्रशाला हो, ऊँचाई दो भूमि हो वह समुद्रक कहलाता है। जिसकी ऊँचाई दो मंजिला हो वह पद्यक कहा है।

षोडशास्र विचित्र शिखर वाला व शुभ होता है। जो चन्द्र शाला से विभूषित हो, जिसकी विशाल पूर्वग्रीवा हो तथा छः मंजिल ऊँचा हो, वह मृगराज नाम से प्रसिद्ध है।

जिसमें अनेक चन्द्रशालाएं हों वह गज प्रासाद कहलाता है।

जिसकी ऊँचाई सात मंजिल हो और जो तीन चन्द्रशाला से युक्त हो वह पर्यङ्क, गृहराज या गरुड कहलाता है। इसके चारों ओर बाह्यदेश में छियासी हाथ भूमि होती है।

अन्य गरुड नाम के प्रासाद की ऊँचाई दस मंजिला होती है।

व्याख्या- समरांगण सूत्रधार अध्याय ६४ श्लोक १६

सप्तभूम्युच्छ्रितस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः।

अश्रिभिर्विहरं तस्य, बहिरन्तश्च) षड्भिर्युक्तः समन्ततः।

स्यादन्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्राये दशभूमिकः॥

सात मंजिला ऊँचा, तीन चन्द्रशाला से युक्त, बाहर व भीतर चारों ओर से छह कोण वाला माना गया है। दूसरा गरुड प्रासाद उसी के समान होता है। वह ऊँचाई में दस मंजिला होता है।

जिसकी सोलह कोण हों और दो भूमि जिसमें अधिक हों वह पद्यक कहलाता है। पद्य के बराबर, श्रीतुष्टक होता है।

जिसमें पांच अंडक हों, जो तीन मंजिला हो, चार हस्त का गर्भ हो, वह वृष कहलाता है। यह प्रासाद सब कामनाओं को देता (पूर्ति करता) है।

यह प्रासाद के प्रमाण सात और (या) पांच मंजिल के जानना। अन्य प्रासाद का प्रमाण सिंह के समान जानना। ८६-१००/६

इस प्रकार विश्वकर्म प्रकाश में वास्तु शैलियों का वर्णन पृथक् से नहीं बताया जाकर, शिखरों के अनुसार प्रासादों के विभिन्न भेद कहे गए हैं।

३.७.२ काश्यप शिल्प के अनुसार

सात्विक, राजस व तामस भूमि

इस ग्रन्थ में बताया गया है कि हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक की भूमि सात्विक तथा विन्ध्याचल के पास कृष्णा, वेणा नदी तक राजस समझी गई है। कृष्णा (वेणा) से कन्याकुमारी तक की भूमि तामस कहलाती है।

नागर, द्राविड़ व वेसर पद्धति

सात्विक प्रदेश में नागर पद्धति, तामस में वेसर पद्धति व द्राविड़ देश में जहाँ कामदेव की पूजा की जाती है उसमें राजस पद्धति होती है।

हर्म्य व लिंग

सात्विक देश में नागर पद्धति हर्म्य, तामस देश में वेसर पद्धति के आलय तथा राजस देश की द्राविड़ पद्धति के हर्म्य ये क्रम से पुलिंग, नपुंसलिंग व स्त्रीलिंग होते हैं। विष्णु, शंकर व ब्रह्मा इस क्रम में देवता हैं। नागर पद्धति के प्रासाद ब्राह्मण वर्ण से, वेसर पद्धति के प्रासाद वैश्य तथा द्राविड़ पद्धति के प्रासाद क्षत्रिय वर्ण से जाने जाते हैं।

काश्यप शिल्प ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों में वर्णित वास्तु शैली

प्रस्तर के ऊपर, वेदिका का आकार, नागर पद्धति में चौकोर होता है। १५-



द्रविड व वेसर पद्धति में वेदिका का आकार अष्टकोणिय (आठ कोण वाला) होता है या वेसर पद्धति के हर्म्य (प्रासाद, महल, कोई भी विशाल भवन या बड़ी इमारत) में वेदिका का अग्र भाग के ऊपर का भाग अष्टकोणिय होता है। १६-१०

नागर पद्धति में कण्ठ (गला) चौकोर व द्रविड पद्धति में गल अष्टकोण (जिसके की आठ कोण हो) होता है व वेसर पद्धति में गोलाकार होता है। गल का माप (आकार) उस पद्धति के प्रमाण से करें। ६-२०

नागर आदि विमान (भवन) के लक्षण सुनो। हिमालय से कन्याकुमारी के बीच के भाग को देश कहते हैं।

जिस प्रकार देह (शरीर) धारण करके शरीर वात, पित्त व कफ से बना होता है या जिस प्रकार जगत के त्रिगुणात्मक-सात्विक (प्राकृतिक, बलशाली, सत्त्वगुण से युक्त), राजस (रजोगुण से युक्त) व तामस ऐसे तीन गुण बताए गए हैं उसी प्रकार देश गुणधर्म के अनुसार तीन विभाग में बांटा गया है।

हिमालय से विंध्य पर्वत तक की भूमि सात्विक (सत्त्वगुण से युक्त) तथा विंध्याचल के पास कृष्णा वेण्णा नदी तक राजस (रजोगुण से युक्त) होती है।

कृष्णा, वेण्णा से कन्याकुमारी तक की भूमि तामस कहलाती है।

सात्विक प्रदेश में नागर पद्धति, तामस देश में वेसर पद्धति व द्राविड़ देश में जहाँ कामदेव की पूजा की जाती है उसमें राजस पद्धति होती है।

सात्विक देश में नागर पद्धति के हर्म्य (प्रासाद, महल), तामस देश के वेसर पद्धति के आलय (आवास, घर) व राजस देश के द्राविड़ पद्धति के हर्म्य (प्रासाद, महल) ये क्रम से पुलिंग, नपुंसकलिंग व स्त्रीलिंग होते हैं। विष्णु, शंकर व ब्रह्मा इस क्रम से प्रासाद में देवता हैं।

नागर पद्धति के प्रासाद ब्राह्मण वर्ण से जाने, वेसर पद्धति के प्रासाद वैश्य व द्राविड़ पद्धति के प्रासाद क्षत्रिय वर्ण से जाने।

नागर जाति के भवन

कूटकोष्ठ के निर्गमन मानसूत्र के सुस्थित होता है। कूट ऊँचाई पर व कोष्ठ क्रम से नीचे होता है। पत्र-तोरण होकर प्रत्येक मंजिल के ऊपर एक आकार के स्तम्भ होते हैं। हे ब्राह्मण ऊपर क्षुद्रकोष्ठ सहित महानासी होती है।

वेदिका व जाली इसके साथ कूट के शीर्ष चौकोर होते हैं। एक या अनेक मंजिल होती है। बरामदा हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है।

शिखर व कंठ चौकोर होता है या उसमें शाला के समान आकार होता है। ये नागर प्रकार के भवन बताए गए व उस देश में बांधे।

द्राविड़ प्रकार (पहला प्रकार)

पहले बाहर के कूट में निर्गमन होता है। या कोष्ठ कूट के साथ बाहर निकला होता है। या कोष्ठ कूट ही बाहर निकले होते हैं। कूट मानसूत्र के बाहर होकर कूट के किनारे कोष्ठ होता है।

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण बीच के भाग में कोष्ठ एक भद्र के साथ या दो भद्र होते हैं। पंजर मानसूत्र होकर सब कूट मानसूत्र के बाहर होते हैं।

(विमान की) वेला (किनार) ऊँची होकर योग्य क्रम से सौष्टिक होती है। सान्तर मंच ऊँचा होता है व वहाँ प्रस्तर नहीं होता है।

मंजिल के क्रम कूट चौकोर, अष्टकोन व गोल होता है। अलग-अलग प्रकार के अधिष्ठान, स्तम्भ, वेदिका व तोरण होते हैं।

वृत्ताख्यस्फारित, हाथी के मुख, कुम्भ, बेल आदि होते हैं या हारान्तर के पास बने मंच के ऊपर क्षुद्र कोष्ठ होता है।

वहाँ पर हाथी का मुख, भद्रनासी या अल्पनासी आधार के साथ या आधार के बिना मंजिल के ऊपर या प्रत्येक मंजिल पर होता है।

शीर्ष का आकार, कंठ वर्तुलाकार या अष्टकोण या चौकोर या अनेक शीर्ष वाला ऐसा द्राविड़ विमान होता है।

दूसरा प्रकार

ऊपर के अनुसार स्तम्भ और अधिष्ठान एक आकार के होते हैं। हारान्तर के बीच विशेषतः कल्पवृत्तस्फुट होता है।

सान्तर प्रस्तर के साथ दोनों कूट कोष्ठ समपात होते हैं या आन्तर मंच नहीं होकर ऊपर मंच समसूत्र में होता है।

हारान्तर में भद्र या भद्रपंजर करें। या सान्तर प्रस्तर के साथ कपोत पंजर होता है।

सब कूट-कोष्ठ शीर्ष तक चौकोर होते हैं। वेदिका अष्टकोन व शीर्ष और कंठ गोल होता है।

शीर्ष व कण्ठ अष्टकोन या चौकोर की कल्पना करें। होम से बन्द कमल तक

ऐसा ये द्राविड़ विमान कहा है।

तीसरा प्रकार

अष्टकोण या षटकोण विमान होंगे तो वे द्राविड़ पद्धति के बताते हैं। ऐसे तीन प्रकार के द्राविड़ पद्धति के बताते हैं। ऐसे तीन प्रकार के द्राविड़ पद्धति के प्रासाद (महल) हमेशा बनाते हैं।

वेसर विमान

वेसर कूटकोष्ठ आदि के निर्गमन समसूत्र होते हैं। कोष्ठ, कूट इनके शीर्ष गोलाकार होना चाहिए।

गर्भगृह के आकार वृत्ताकार या बाहर से वृत्ताकार होता है। शिखर के कण्ठ शीर्ष गोलाकार होता है या उस आकार के होते हैं।

एक या अनेक मंजिल बरामदे या भद्र के साथ होती हैं। सभी ओर से एक समान लम्बाई या चौड़ाई या आयताकार, वृत्ताकार या वृत्तायताकार होती है।

अथवा कूटकोष्ठ के साथ वृत्तायत आकार के हर्म्य होकर कूट व कोष्ठ क्रम से ऊँचे या नीचे होते हैं।

या दोनों कूट व कोष्ठ समतल होते हैं। वे एक या अनेक मंजिल होते हैं। वेसर पद्धति के विमान होते हैं या अन्य पद्धति के होते हैं।

जन्म से लेकर स्तूपी तक चौकोर ऐसे नागर विमान बताए गए हैं।

शीर्ष व कण्ठ अष्टकोणी हो तो वे द्राविड़ भवन हैं।

कण्ठ व शीर्ष वृत्ताकार होने पर उसे वेसर पद्धति का हर्म्य (प्रासाद, महल) कहते हैं। यह कूट कोष्ठ न होकर प्रासाद में लागू होते हैं।

अलग-अलग प्रकार के अधिष्ठान के साथ गल (गला, कंठ) और प्रत्येक स्तम्भ अलग-अलग तरह के या सभी जगह गोल स्तम्भ वेसर प्रासाद होंगे।

नागर पद्धति में सब शान्त होता है। वेसर पद्धति में वाहन, सैनिक ये भूषित होते हैं, द्राविड़ में भोग, शौर्य (शूरता, वीरता) व नृत्य बताए गए हैं।



३.७.३ प्रासाद मण्डन अध्याय १ श्लोक ५-८

हिमालय पर्वत के उत्तर दिशा में एक बड़ा मनोहर देवदारु वृक्षों का सुन्दर वन है, यह महादेव जी का पवित्र तीर्थस्थान है। वहाँ सब देव और दैत्य आदि ने मिलकर महादेव की पूजा की।

देव तथा दैत्य की पूजा के लिए मंदिर के आकार के अनुसार क्रम से चौदह प्रकार की मंदिर की जातियाँ होती हैं।

राजप्रासाद-राजमहल

देवप्रासाद-मंदिर

चौदह जाति के प्रासादों में (१) नागर, (२) द्राविड़, (३) भूमिज, (४) लतिन, (५) सावंधार (सांधार), (६) विमान नागर, (७) विमान पुष्पक, और (८) श्रृङ्ग और तिलक वाला मिश्र, ये आठ जाति के प्रासाद (मंदिर) उत्तम हैं। इसलिए सब देवों के लिए यही बनाने चाहिए, उनमें भी विशेषकर महादेव जी के लिए बनाना श्रेयस्कर है।

सब मंदिरों के भेद देश के अनुसार होते हैं। इनके मुख्य चौदह भेद हैं, वे लोक के अनुसार जानना चाहिए।

देश-स्थान विशेष, जिस स्थान पर मंदिर का निर्माण किया जाता है।

व्याख्या:- मंदिर के चौदह प्रकार:- देवताओं के लिए नागर आदि, दानव के लिए द्राविड़ आदि, गन्धर्व के लिए लतिन आदि, यक्ष के लिए विमान आदि, विद्याधर के लिए मिश्रक आदि, वसुओं के लिए वराटक आदि, नागों के लिए सांधार आदि, राजाओं के लिए भूमिज आदि, सूर्य लोक के लिए विमाननागरछन्द आदि, चन्द्रलोक के लिए छन्दविमानपुष्पक आदि, पार्वती के लिए बलभी आदि, हरसिद्धि आदि के लिए सिंहावलोकन आदि, पिशाच आदि के लिए फांसना आदि तथा नपुंसक ये सब विराज आदि से उत्पन्न हैं।

३.७.४ शिल्परत्नाकर,

अध्याय २ श्लोक २८ से ४९

महापुण्यशाली भारत वर्ष में हिमालय नामक एक महापर्वत राज है, उसके पास एक सुन्दर व पवित्र लकड़ी का वन है, इस वन में इन्द्राणी, सर्वदेव, वास्तुकी आदि सर्प, कुबेर आदि यक्षों, तुम्बर आदि गन्धर्व, सूर्यवंशी व चन्द्रवंशीय क्षत्रिय एवं विद्याधरों आदि सर्वदेव, असुर, सर्प और मनुष्य कल्याण स्वरूप भगवान शिव की पूजा अर्चना हेतु एकत्रित होते हैं और यज्ञ महोत्सव की दीक्षा लेकर उन्होंने अनेक

विद्या का आयोजन करके विधि पूर्वक ईश्वर की पूजा की।

देव, दैत्य व मनुष्यादि के इकट्ठे हुए समूह ने अनुक्रम से नन्दा आदि पाँच तिथियों में विविध, आकृति एवं छोटे-छोटे सर्पों से युक्त, विलक्षण वैराज्य आदि पाँच-पाँच यज्ञ मण्डप बनाकर, विविध प्रकार से स्त्रोत एवं गीतों से ईश्वर को तृप्त किया। इसके पश्चात् विविध पूजाओं से तृप्त हुए जगदीश्वर ने कहा - आपके मन में जो इच्छा हो वो वरदान माँगें और हे ब्रह्मदेव, आप जो माँगेंगे वह मैं आपको प्रदान करूँगा। देव के हित के लिए आपको जो कहना है, वह कहने के लिए आप योग्य हो।

परमात्मा के इन वचनों को सुनकर, देवताओं के हित की कामनाओं से ब्रह्मदेव ने कहा- हे देवाधिदेव, अगर आप हमारी पूजा से प्रसन्न हों तो जैसे-जैसे स्वरूप आकार वाले यज्ञ मंडप करके आपका पूजन किया है, वह वैसा ही स्वरूप आकार वाले शिवालय बनाकर, आपका पूजन करें। यह वरदान देने की कृपा करें। देवाधिदेव परमात्मा की कृपा से देवादि समूह ने यज्ञ मंडप से की गई पूजा आज संसार में प्रासादों के नाम से प्रसिद्ध हुई और वैराज्य आदि सर्व जाति उत्पन्न हुई।

वैराज्य, पुष्प, कैलास, मणिपुष्प (माणिक्य), त्रिविष्टप पूजा से उत्पन्न हुई, और ये सभी इच्छा पूर्ण करने वाले हैं।

अवान्तर भेदों के लिए वैराज्य आदि ५८८, कैलास आदि ५००, मणिपुष्प आदि १५० तथा त्रिविष्टप आदि ३५० प्रकार के हुए।

वैराज्य आदि पाँच प्रासादों के अवान्तर भेदों के साथ कुल संख्या १८८८ होती है।

देवों के बाद दानवों के राजाओं ने उत्सव के साथ पूजा की उससे स्वस्तिक, सर्वतोभद्र, वर्धमान, सूत्रपद्म तथामहापद्म यह पाँचों द्राविड़ कर्मों से पूजे गए, उत्तम प्रासाद उत्पन्न हुए। अवान्तर भेद से एक-एक में से १०० प्रासाद हुए। इस प्रकार दानवों की पूजा से कुल ५०० प्रासाद उत्पन्न हुए।

गन्धर्वों ने पाँच महोत्सव कर पूजा की और उससे रुधक, भवन, पद्माक्ष, मलय, वज्राक नामक भतिन आदि पाँच प्रासाद प्रकट हुए। उसमें रुचक आदि १६ भव और विभव, पद्माक्ष और मालाधर, मलय और मकरध्वज व वभ्रक, स्वस्तिक व शंकु ऐसे अवान्तर भेदों के साथ कुल २५ लतिन आदि प्रासाद हुए।

पाँचमहोत्सवों के साथ वसुओं ने भी पूजा की। उनकी पूजा से वराट, पुष्पक, श्रीपूँज, सर्वतोभद्र और सिंह ये पाँच प्रासाद प्रकट हुए। अवान्तर भेदों के साथ वराट आदि प्रासाद ११२ होते हैं।

पाँच महोत्सवों यक्षों ने पूजा की। उससे विमान, गरुड़, ध्वज, विजय और गन्धमादन ये विमान आदि प्रासाद प्रकट हुए। सुख शान्ति की इच्छा रखने वाले पुरुषों



को यह प्रासाद करना, अवान्तर भेद के साथ विमान आदि १०३, गरुड़ आदि १०४, ध्वज आदि १०५, विजय आदि १०६ तथा गन्धमादन आदि १०७ प्रासाद होते हैं। कुल ५२५ प्राकार के विमान आदि प्रासाद समझना चाहिए।

तदनन्तर सपों ने (नागलोक) परिक्रमा सहित पूजा की, उससे केसरी नन्दन, मन्दार, श्रीवृक्ष, इन्द्रनील और रत्नकूट नामक ब्रह्म संयुक्त पाँच प्रासाद प्रकट हुए। इस पाँच में से पच्चीस पर्वत जैसे प्रासाद हुए। और उसमें से अवान्तर भेदों से एक के पचास भेद बने। कुल बारह सौ पचास सान्धार आदि प्रासाद कहा गया है। यह प्रासाद नित्य शान्ति देने वाला तथा हमेशा कल्याण करता है।

इसके बाद पंचमहोत्सव से विद्याधरों ने पूजा की। और उससे अनेक रूप वाले ११८ मिश्रक आदि प्रासाद प्रकट हुए।

पृथ्वीपति महाराजाओं ने पाँच महोत्सव से पूजा की उससे प्रासादों में राजा रूप तथा ऐश्वर्य आदि देने वाला भूमिज आदि प्रासाद प्रकट हुए। यह प्रासाद चौकोर, वर्गाकार, अष्टास्र ऐसे तीन प्रकार से होता है। अवान्तर भेदों के साथ प्रासादों की संख्या ६२५ है।

दिव्य तेज वाले पाँच महोत्सवों से सूर्य भगवान ने पूजा की उससे विमान, नागर आदि छन्द प्रासाद प्रकट हुए।

बाणाविद्ध महोत्सवों से युक्त चन्द्र की पूजा से विमान पुष्पक आदि सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले सभी प्रासाद प्रकट हुए।

आयाग महोत्सवों के प्रसंग से महादेवी गौरी ने पूजा की। इससे वल्लभ आदि नामक स्त्री जाति प्रासाद उत्पन्न हुए।

हरिसिद्धि आदि दैवियों की पूजा से सिंहावलोकन नामक भुवनों में उत्तम प्रासाद प्रकट हुए। ऐसे प्रासाद जो लकड़ी के बने होने से उन्हें दारुन आदि कहते हैं। ये स्त्रीलिंग प्रासाद हैं।

देवों की गिनती में आने वाले पिशाच व भूत आदि गणों ने यज्ञोत्सवों में महोत्सव पूर्वक पूजा की इससे दो प्रकार के प्रासाद उत्पन्न हुए और संसार में वह नपुंसक आदि एवं फासना आदि प्रासादों के नाम से जाने गए। ये स्त्री प्रासादा स्त्रीलिंग व नपुंसक लिंग हैं इसलिए पुरुष आदि प्रासादों में वर्जित हैं।

देव दैत्य आदि समाज ने अनुक्रम में जो प्रासाद आकार पूजा की, उससे प्रासाद की चौदह जातियाँ उत्पन्न हुई।

देवताओं से नागर आदि, दानवों से द्राविड़ आदि, गन्धर्वों से लतिन आदि, यक्षों से विमान आदि, विद्याधरों से मिश्रक आदि, वसुओं से वराट आदि, नागलोक से सान्धार आदि, राजाओं से भूमिज आदि, सूर्य लोक से विमाननागर, चन्द्रलोक से

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur MP Collection

विमानपुष्पक, पार्वती से वल्लभ आदि, हरिसिद्धि आदि देवताओं की पूजा से सिंहावलोकन दारुज आदि, पिशाच आदि देवताओं की पूजा से फांसना आदि, और नपुंसक आदि इस प्रकार चौदह आदि प्रासाद वैराज्य आदि प्रासादों से उत्पन्न हुए।

देवों को प्रिय मणि, माणिक, मोती प्रवालादि से अलंकृत तथा सोने या चाँदी से बने होते हैं।

३.७.५ मत्स्य पुराण के अनुसार

मत्स्य पुराण के अनुसार प्रासादों के नाम इस प्रकार बताए गए हैं:- मेरु, मन्दर, कुम्भ, सिंह, मृग, विमान, छन्दक, चतुरस्र, षोडशास्त्र, वर्तुल, सर्वभद्रक, सिंहास्य, नन्दन, नन्दिवर्धन, हंस, वृष, सुवर्णेश, पद्मक, और समुद्रगक।

सौ शिखर तथा चार द्वारवाला एवं सोलह खण्ड से ऊँचा अनेक विचित्र शिखरों से युक्त मेरु प्रासाद होता है। ३१।२६९

बारह खण्डवाला मन्दर तथा नौ मंजिल वाला कैलास एवं विमान तथा छन्दक भी इसी प्रकार अनेक शिखर व मुख से युक्त व आठ खण्डवाला होता है। ३२

सात खण्डवाला नन्दिवर्धन होता है। जो विषाणक से युक्त हो वह नन्दन कहा गया है।

जो प्रासाद सोलह कोण वाला, विविध रूपों से सुशोभित तथा अनेक शिखर से युक्त होता है सर्वतोभद्र कहलाता है।

इसे चित्रशाला से युक्त तथा पाँच मंजिला जानना चाहिए। प्रासाद के वलभी (बुर्ज) तथा छन्दक को भी उसी प्रकार अनेक शिखरों व मुखों से युक्त बनवाना चाहिए।

ऊँचाई में बैल के समान तथा मण्डल में बिना पहल के सिंहप्रासाद को सिंह की आकृति का तथा गज को गज की आकृति का बनवाना चाहिए।

कुम्भ आकृति में कुम्भ के समान तथा नौ मंजिला होता है। जिसकी स्थिति अंगुली के पुट के समान हो, जो अण्डों से विभूषित हो तथा सोलह कोणवाला हो उसे समुद्रगक कहते हैं।

दोनों बाजू में चन्द्रशाला बनी हो, जिसकी ऊँचाई दो खण्ड हो उसके पद्मक कहा है। उसकी ऊँचाई तीन मंजिला होता है। यह सोलह कोणवाला तथा विचित्र शिखरों से युक्त शुभ कहा गया है।

मृगराज प्रासाद वह है जो चन्द्रशाला से विभूषित, प्राग्ग्रीव से युक्त और छः खण्डों तक ऊँचा हो। अनेक चन्द्रशालाओं से युक्त प्रासाद गज कहलाता है।

...
...
...
...
...

...

...
...
...

...
...

...
...

...
...

...
...

...
...

...
...

...
...

...
...

...
...

गरुड नामक प्रासाद पीछे की ओर बहुत फैला हुआ, तीन चन्द्रशालाओं से विभूषित तथा सात खण्ड ऊँचा होता है। उसके बाहर चारों ओर छियासी खण्ड होते हैं।

एक अन्य प्रकार का भी गरुड प्रासाद होता है। यह दस भूमि का होता है। पद्मक सोलह कोण वाला तथा पहले कहे प्रासाद गरुड से दो खण्ड अधिक ऊँचा होता है।

पद्म के बराबर ही श्रीवृक्षक प्रासाद का प्रमाण होता है। जिसमें पाँच अण्डक दो खण्ड तथा मध्य में चार हस्त का विस्तार होता है।

वह वृष नाम प्रासाद सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला होता है।

मैंने पाँच, सात प्रकार के प्रासादों का वर्णन किया है अतः अन्य प्रासादों को जिनका वर्णन नहीं किया गया सिंहास्य के प्रमाण के अनुसार ही जानना चाहिए।

वे सभी चन्द्रशालाओं से संयुक्त तथा प्राग्ग्रीव से संयुक्त रहते हैं। इन्हें ईंट लकड़ी या पत्थर के तोरण सहित बनवाना चाहिए।

प्रासाद के मान

मेरु प्रासाद पचास हस्त तथा मन्दर उससे पाँच हस्त कम होता है। कैलाश चालीस हस्त तथा विमानक चौतीस हस्त का होता है।

उसी प्रकार नन्दिवर्धन बत्तीस हस्त तथा नन्दन व सर्वतो भद्र तीस हस्त के होते हैं।

वर्तुल व पद्मक का परिमाण बीस हस्त का कहा गया है। गज सिंह, कुम्भ तथा वलभी तथा छन्दक सोलह हस्त के होते हैं।

कैलास, मृगराज, विमान और छन्दक ये बारह हस्त के होते हैं। ये चारों देवताओं को अत्यन्त प्रिय हैं। प्रासाद गरुड आठ हस्त का तथा हंस दस हस्त का कहा गया है।

अन्य विवरण

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार इन शुभ लक्षण सम्पन्न प्रासादों की रचना करना चाहिए। यक्ष राक्षस व नागों के प्रासाद मातृहस्त के प्रमाण से प्रशस्त माने गए हैं।



मेरु आदि सात प्रासाद ज्येष्ठ लिंग शुभ दायक हैं। श्रीवृक्षक आदि आठ मध्यम के लिए शुभ कहे हैं।

हंसा आदि पाँच कनिष्ठ लिंग के लिए शुभ दायक माने गए हैं। वलभीच्छन्दक प्रासाद में गौर वर्ण जटामुकुट धारिणी एवं क्रमशः चार हाथों में वरद, अभय, अक्षसूत्र व कमण्डल धारण करने वाली देवी शुभदायिनी है।

गृह में लाल मुकुट धारण करने वाली, चार हाथों में क्रमशः कमल, अंकुश, वर व अभय मुद्रा से युक्त देवी का पति सहित पूजन करना चाहिए।

बुद्धिमान को दूसरी जो तपोवन में स्थित रहने वाली देवी हैं, उनकी भलीभाँति पूजा करना चाहिए। देवी के साथ विनायक वलभी व छन्दक प्रासाद में शुभ दायक होते हैं।।।इति।। अध्याय २६९।। मत्स्य पुराण।।

३.७.६ अपराजित पृच्छा के अनुसार

अपराजित पृच्छा भारतीय शिल्पशास्त्र का एक बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। भुवनदेव आचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना १२ वीं शताब्दी में की है। इस ग्रन्थ में प्रासादों के वर्गीकरण की जानकारी भली प्रकार एवं सरलतापूर्वक दी है। इस ग्रन्थ में प्रासादों के बारे में प्रायः सभी विषयों पर शिल्पशास्त्रीय जानकारी सूत्र रूप में दी है। अपराजित पृच्छा में प्रासादों के १५ प्रकार बताए गए हैं। जिनमें आठ मूल प्रकार हैं एवं सात उनके उपप्रकार हैं। मूल प्रकार के प्रासाद इस प्रकार हैं:- नागर, द्राविड़, वराटक, मिश्रक, लतिन, सान्धार, विमान एवं भूमिज। शेष सात उप प्रकार प्रासादों के नाम इस प्रकार हैं:- वलभी, फांसनाकार, सिंहावलोकन, दारुज, विमान नागर छन्दक, विमान पुष्पक तथा रथारुह (अपराजित पृच्छा १०३.१-३, ११२, २-३)

नागर आदि प्रासादों में पाँच प्रकार के विमानों के बारे में कहा गया है, जो कि मन को आनन्द देने वाले, कामना पूर्ति करने वाले तथा स्वच्छन्द गामी या स्वतन्त्र रूप से विचरण करने वाले हैं। इन प्रासादों के नाम हैं- वैराज्य, पुष्पक, कैलास, मणिक, त्रिविष्टप। १-२/१०६

द्राविड़ शैली प्रासाद के लिए पीठ-जगतीपीठ की ऊँचाई के रेखा में कर्ण-रेखा के क्रमानुसार भूमिका या मंजिल बनाते हैं। उनकी प्रत्येक विभक्ति अर्थात् भाग में पौध-दलों से पूर्ण लताएँ श्रृंगों से निकलती हुई बनाए। (अध्याय १०६)

३.७.७ समरांगण सूत्रधार के अनुसार

समरांगण सूत्रधार की प्रासाद शैलियाँ भारतीय वास्तुविद्या के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक रूप से प्रासाद वर्गीकरण किया गया है। वह विभिन्न जनपदों के अनुरूप मिलता है। समरांगण सूत्रधार में लगभग आठ प्रासाद शैलियों का वर्णन किया गया है। नागर, द्राविड़, वराट, भूमिज, लतिन (लतित), सान्धार, विमान तथा त्रिविष्टप। इसी अध्याय में सुभद्रा आदि नौ मिश्रक प्रासादों, लता आदि पाँच निर्गुण प्रासादों तथा केसरी आदि पच्चीस सान्धार प्रासाद का वर्णन मिलता है।

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ के अध्याय ६२ द्राविड़प्रासाद लक्षण में एक मंजिल से १२ मंजिल के प्रासाद का वर्णन किया गया है। मानसार मयमत आदि ग्रन्थ में १२ मंजिल तथा सोलह मंजिल द्राविड़ प्रासाद का वर्णन मिलता है। यह भी साक्ष्य है कि ग्रन्थ के रचनाकाल तक १२ तल वाले द्राविड़ शैली के मंदिरों का निर्माण होने लगा था।

अध्याय ६३ मेर्वादि बीस नागर प्रासाद लक्षण में २० प्रकार के प्रासाद का वर्णन मिलता है- १. मेरु २. मन्दर ३. कैलाश ४. कुम्भ ५. मृगराज ६. गज, ७. विमानच्छन्द ८. चतुरश्र ९. अष्टाश्र १०. षोडशाश्र ११. वर्तुल १२. सर्वतोभद्रक १३. सिंहास्य १४. नन्दन १५. नन्दिवर्धन १६. हंसक १७. वृष १८. गरुड १९. पद्मक २०. समुद्र- नागर प्रासादों की संक्षेप से यह बीस संख्या बताई गई हैं। १-४।।

अध्याय ६४ दिग्भद्रादि प्रासाद लक्षण अध्याय में १२ प्रासादों का वर्णन है। दिग्भद्र आदि वावाट या वैराट प्रासादों के लक्षण के बारे में विचार किया है। अपराजित पृच्छा के १७५ वें अध्याय में स्पष्टतर वराट संज्ञा आई है, वहाँ इसकी संख्या बढ़कर पच्चीस हो गई है। दसवीं सदी तक वैराट प्रासादों का प्रचलन हो चुका था। ये प्रासाद नागर शैली के प्रभाव से मुक्त नहीं थे। वास्तुनिघण्टु में कहा गया है कि जो भूमिज प्रासाद जंघारहित, अनेक श्रृंगों से युक्त, प्रतिरथ, भद्र, प्रतिभद्र, मन्दारपुष्प तथा घण्टा युक्त होते हैं ये वैराट शैली के कहे जाते हैं। इन लक्षण कोटि के प्रासाद में वैराट प्रासादों का लक्षण कहूंगा। उनमें दिग्भद्र, श्रीवत्स, वर्धमानक, नंदावर्त, नन्दि-वर्धन, विमान, पद्म, महाभद्र, श्रीवर्धमान, महापद्म, पंचशाल तथा पृथिवीजय- इन बारह वावाट प्रासादों का लक्षण कहता हूँ।

अध्याय ६५ में भूमिज प्रासाद का वर्णन मिलता है। अपराजित पृच्छा के १७१ वें अध्याय में २५ प्रकार के भूमिज प्रासाद का वर्णन मिलता है। नाम आदि दोनों ग्रन्थों में समानता है। वास्तु निघण्टु में कहा गया है कि यह प्रासाद शैली मालवा, महाराष्ट्र तथा उत्तरी कर्नाटक में प्रचलन में रही है। शिखरमें भूमिका की रचना की जाती है। उसमें स्तम्भ, कुम्भी आदि प्रहार करके उनपर श्रृंग उत्तरोत्तर ७ अथवा ९ स्तर (भूमिक) शिखर के स्कन्ध तक चढ़ाए जाते हैं। सुन्दर आकृति वाले शुकनास



का शूरसेन कहा जाता है। चतुरस्र तलदर्शन के ऊपर वर्तुलाकार शिखर लतिन जैसा होता है, किन्तु उसकी आकृति पृथक होती है।

चतुरश्र-भूमिज-प्रासादः- अब क्रम-प्राप्त विमानों का लक्षण कहता हूँ। इन गोल, चौकोर प्रासादों का किन्हीं का अनुपूर्वशः वहां पर एक भाग से निर्गम बनाया जाता है। फिर इनमें यह निर्गम वृत्त के मध्य में अधिष्ठित बनाया जाता है।

दश भागों में विभाजित चौकोर क्षेत्र में चार भूमिकाओं से युक्त इसके छेद का लक्षण कहा जाता है। निषध, मलयाचल, माल्यवान्, और नवमाली- ये चार चौकोर प्रासाद होते हैं। १-४। ६५

इस प्रकार से हमने विभिन्न ग्रन्थ विश्वकर्म-प्रकाश, काश्यप शिल्प, मत्स्य पुराण, समरांगण-सूत्रधार, प्रासाद-मण्डन आदि ग्रन्थों के आधार पर वास्तु की विभिन्न शैलियों को देखा। यह जाना कि वास्तु में मुख्य रूप से तीन शैली नागर, द्राविड़ तथा वेसर शैली का प्रयोग होता है। इन शैलियों से ही कालान्तर में अन्य शैलियाँ विकसित हुई।

अध्याय ४

विश्वकर्म-प्रकाश-विषय वस्तु



अध्याय ४

विश्वकर्म-प्रकाश-विषय वस्तु



अध्याय ४

विश्वकर्म-प्रकाश विषय वस्तु

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
४.१	अध्याय १ भूमि लक्षण	५
४.२	अध्याय २ गृहादि विचार	१७
४.३	अध्याय ३ गृहारम्भ मुहूर्त	३२
४.४	अध्याय ४ गृह व शयन विचार	३६
४.५	अध्याय ५ शिलान्यास	४२
४.६	अध्याय ६ प्रासाद विधान	५८
४.७	अध्याय-७ द्वार निर्माण	६७
४.८	अध्याय-८ जलाशय विचार	८२
४.९	अध्याय-९ वृक्षछेदन विधि	८५
४.१०	अध्याय-१० गृहप्रवेश विधि	९१
४.११	अध्याय-११ दुर्ग	१०१
४.१२	अध्याय-१२ शल्योद्धार विधि	१०६
४.१३	अध्याय-१३ गृहवेधनिर्णय	११२



अध्याय ४ .

विश्वकर्म-प्रकाश

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ की रचना विश्वकर्माजी ने की है। इस ग्रन्थ में १३ अध्याय तथा १३७४ श्लोक हैं। वास्तुशास्त्र के सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर इस ग्रन्थ में प्रकाश डाला है।

वास्तुशास्त्र के अनेकानेक ग्रन्थ हैं। श्री प्रसन्नकुमार आचार्य ने मानसार ग्रन्थ पर कार्य करते समय सन् १९२६ में, लगभग ३०० से अधिक वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों का उल्लेख किया है। ये सारे ग्रन्थ देश के विभिन्न भागों में, विभिन्न पृष्ठ भूमि में, किसी विशेष शैली को, तो कहीं वस्तु विशेष को ध्यान में रखकर अलग-अलग कालखण्ड (समय) में लिखे गए हैं। जहाँ कुछ तो अत्यन्त प्राचीन हैं तो कुछ सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में लिखे हैं। अग्निपुराण, मत्स्य पुराण इत्यादि प्राचीन ग्रन्थ हैं तो राजवल्लभ आदि लगभग सत्रहवीं शताब्दी के ग्रन्थ हैं।

वास्तुशास्त्र के कुछ प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं-

अग्नि पुराण

अपराजितपृच्छा

काश्यप शिल्प

प्रासाद तिलक

मत्स्य-पुराण

मनुष्यालय-चन्द्रिका

मयमत

मानसार

राजवल्लभ

वास्तु-विद्या

शिल्प प्रकाश

शिल्प रत्नाकर

समरांगण-सूत्रधार

विश्वकर्म-प्रकाश**विश्वकर्मा जी द्वारा रचित**

इन समस्त ग्रन्थों में विश्वकर्मा जी द्वारा रचित विश्वकर्म प्रकाश अपना अलग व महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

१३ अध्यायों में लगभग १४०० श्लोकों में वास्तुशास्त्र के सभी पक्षों को अपने आप में समेटे हुए यह एक अद्वितीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में वास्तु विद्या के लगभग सभी पक्षों को स्पर्श किया है या छुआ है। कुछ विषयों को काफी व्यापकता दी गई है जैसे भूमि चयन के समय आकार एवं परिवेश का महत्व, द्वार निर्णय, शिलान्यास एवं मुहूर्त इत्यादि, तो कुछ विषयों को केवल स्पर्श किया है।

इस ग्रन्थ की अद्भुतता ऐसी है जो इसे, अन्य कई ग्रन्थों से अधिक प्रभावशाली बनाती है, आकारों की महत्ता, परिवेश का महत्व, भूमि परीक्षण की विभिन्न विधियाँ, गृहारम्भ के समय मुहूर्त, शकुन-अपशकुन, शिलान्यास की विधि, द्वार निर्धारण के १५ पक्ष, लकड़ी तथा उनके उपयोग, शल्य ज्ञान एवं शल्योद्धार की रीति एवं गृहवेध निर्णय विचार इनमें से कुछ हैं।

अध्याय १ में भूमि चयन का, अध्याय २ में आयादि (वास्तु के अनुसार मान निर्धारण के सूत्र) व घरों का वर्णन किया गया है। अध्याय ३ में ज्योतिष के महत्व को प्रतिपादित किया गया है, अध्याय ४ में १४ प्रकार के पदार्थों से बने घरों का वर्णन है। अध्याय ५ में वास्तु पदविन्यास का वर्णन है। अध्याय ६ में मंदिर वास्तु का वर्णन है। अध्याय ७ द्वार का निर्णय किस प्रकार करना, यह बताया गया है।

अध्याय ८ में जलाशय का विचार है। अध्याय ९ में वृक्ष से सम्बन्धित विषयों को लिया गया है। अध्याय १० में गृहप्रवेश का वर्णन है तो अध्याय ११ में दुर्ग या किले के निर्माण का वर्णन है। अध्याय १२ में शल्य (भूमि के अन्दर स्थित दोष, जैसे हड्डी, कोयला आदि) दोष के पता लगाने तथा उसे दूर करने की विधि का वर्णन है। इस ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय १३ में गृहदोष के बारे में बताया गया है।

इस प्रकार से वास्तु के लगभग सभी आयामों को अपने में समेटे यह अत्यन्त ही प्रभावशाली व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।



[The text on this page is extremely faint and illegible, appearing as light grey smudges and ghosting of characters.]

अध्याय १

४.१ भूमि लक्षण

इस अध्याय के प्रथम श्लोक में गणपतिजी, सरस्वतीजी तथा महेश्वर जी की वन्दना की गई है। श्लोक क्रमांक २ में घर की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। श्लोक क्रमांक ३ व ४ में वास्तुशास्त्र की परम्परा का वर्णन किया गया है कि यह परम्परा महादेव से प्रारम्भ होकर पराशर ऋषि से ऋषि बृहद्रथ से विश्वकर्माजी को प्राप्त हुई। श्लोक क्रमांक ५ में बताया गया है कि वास्तुशास्त्र का उद्देश्य लोक कल्याण है। श्लोक क्रमांक ६ से १८ तक में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि पहले त्रेतायुग में एक महाभूत उपस्थित होकर सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो गया, देवता भयभीत होकर इन्द्र के साथ ब्रह्माजी की शरण में गए, उनसे भय-निवारण का उपाय जानने हेतु प्रश्न किया। ब्रह्माजी ने कहा कि उस भूत को भूमि पर अधोमुख गिराकर उसके ऊपर स्थित हो जाओ। ऐसा होने पर वह भूत ब्रह्माजी के पास गया तथा उनसे कहा कि मुझे बिना अपराध के देवता पीड़ा देते हैं, इस पर ब्रह्माजी ने उसे वरदान दिया कि कोई भी नवीन निर्माण कार्य आरम्भ करने पर तेरी पूजा नहीं करेगा वह मृत्यु को प्राप्त होगा तेरा आहार बनेगा।

अतः प्रत्येक निर्माण कार्य (कुआँ, बावड़ी, तालाब, घर, मंदिर, राजमहल, नगर, बन्दरगाह आदि बनवाने से पहले वास्तुपुरुष का पूजन करना चाहिए अर्थात् प्लानिंग करके निर्माण करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक १९ में बताया गया है कि उत्सव आदि में तथा कम से कम एक वर्ष में (प्रति वर्ष) वास्तु पूजन करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक २० से २२ में यह बताया गया है कि किसी स्थान पर वास्तु दोष होने पर वहाँ क्या लक्षण होते हैं। इसमें बताया है कि जिस स्थान पर पालतू पशु असामान्य रूप से शब्द करें, जहाँ बिजली गिरी हो, महिलाओं में कलह हो, सर्प आदि प्रवेश कर जाएँ वहाँ वास्तु दोष होता है।

श्लोक क्रमांक २३ में वास्तुदोष दूर करने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि उपरोक्त प्रकार के उत्पात या अन्य उत्पात होने पर वास्तु शान्ति करवाना चाहिए।

श्लोक क्रमांक २४ से ६० तक भूमि चयन विधि का वर्णन है। इसमें वर्ण के अनुसार भूमि चयन का भी वर्णन किया गया है। चार वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र बताए गए हैं।

वर्ण	रंग	गन्ध	स्वाद
ब्राह्मण	सफेद	सुगन्ध	मीठा
क्षत्रिय	लाल	रक्त	कषैला
वैश्य	पीली	शहद	खट्टा
शूद्र	काली	शराब	तिक्त

सारणी ४.१

भूमि चयन के सन्दर्भ में कहा है कि कौन-कौन से आकार शुभ हैं तथा भूमि का आकार उस प्रकार का होने पर क्या परिणाम होता है।

आकार (सारणी ४.२)

शुभ आकार

वृषभाकार

वृत्ताकार

भद्रपीठ

त्रिशूल

लिङ्ग

महल के झण्डे के समान

घड़ा

अशुभ आकार

त्रिकोणाकार

गाड़ी के समान आकार

सूपड़े के समान

पंखे के समान

परिणाम

पशु की वृद्धि

धनदायी

धनदायी

वीरों की उत्पत्ति, धन व सुख देने वाली

साधुओं के लिए शुभ

पदोन्नति

धन को बढ़ाने वाली

परिणाम

पुत्र हानि

सुखहानि

धनहानि

धर्म की हानि

मृदंग के समान	वंशहानि
सर्प के समान	भय
मेढक के समान	डर देने वाली
गधे के समान	गरीबी
अजगर के समान	मृत्यु देने वाली
चिमटे के समान	पुरुषार्थ से हीन करने वाली
कौवे के समान	दुख, शोक, व डर
उल्लू के समान	दुख, शोक, व डर
साँप के समान	पुत्र-पौत्र का नाश
बाँस के समान	वंश नाश
सुअर, ऊँट, बकरे के समान	कमजोर, मलिन, मूर्ख व ब्रह्म का नाश करने वाले पुत्र
गिरगिट व मुर्दे के समान	पुत्र नाश, धनहानि व पीड़ा
कुत्ते व सियार के समान	भयानक पुत्र

भूमि फल अन्य विचार (सारणी ४.३)

मनोरम भूमि	पुत्रदायक
दृढा भूमि	धन
उत्तर व ईशान में झुकीभूमि	पुत्र व धन
गम्भीर आवाज वाली भूमि	गम्भीर पुत्र
ऊँची भूमि	उच्च पदस्थ पुत्र
समतल भूमि	सौभाग्य
विकट भूमि	शूद्रों, किले में रहने वालों व चोरों के लिए शुभ
कुश-काश से युक्त हो,	ब्रह्म तेज के समान पुत्र
दूर्वा से युक्त भूमि	वीरों को उत्पन्न करने वाली
फल से युक्त भूमि	धन व पुत्र
नदी के कटाव पर घर	मूर्ख तथा मृत सन्तान
जिस भूमि के बीच में पत्थर हो	दरिद्रता

जो भूमि गड्ढे में हो	मिथ्यावादी पुत्र
विवर से युक्त भूमि	पशु व पुत्र को दुख
आड़ी-टेड़ी भूमि	विद्या-हीन पुत्र
डरावनी भूमि	डर
जहाँ हवा का प्रकोप हो	हवा से उत्पन्न डर
जिस भूमि पर रीछ आते हों	पशु हानि
भयंकर भूमि	भयंकर पुत्र
कुत्ते व सियार के समान	भयंकर पुत्र
रुखी भूमि	बुरे वचन कहने वाली सन्तान
भूमि में दीमक के घर हों	विपत्ति
धूर्त के घर के पास	निश्चित रूप के मरण
जो भूमि चौराहे पर	कीर्ति का नाश
मंदिर के पास	उद्वेग
मन्त्री के पास	धन हानि
जिस भूमि में गड्ढा हो	विपत्ति
छिद्र वाली भूमि	प्यास अधिक लगती है
कछुए के समान पर	धन नाश

श्लोक क्रमांक ६१ से ७० तक भूमि की या मिट्टी की परीक्षा की विधि का वर्णन है। इनमें सबसे पहले भूमि के घनत्व की परीक्षा, उसके पश्चात नमी की परीक्षा, उर्वरता परीक्षण, विकिरण परीक्षण तथा वायु संचरण विधि का वर्णन है।

घनाकार हस्त भूमि को खोदकर, उसकी मिट्टी निकालकर पुनः उसी मिट्टी से भरने पर यदि मिट्टी बच जाती है तो वह भूमि बहुत शुभ होती है, न बचे तो अधम होती है। इसी प्रकार १ घनाकार हस्त गड्ढे को जल से भरकर, कुछ प्रतीक्षा करने के उपरान्त यदि जल शेष रहता है तो भूमि शुभ कही है। सप्तधान्य को बोकर भूमि की उर्वरता की परीक्षा की जाती है, तीन रात्रि में उपजने पर भूमि श्रेष्ठ कही गई है। चार बत्ती वाला दीया जलाकर पूर्व आदि जिस दिशा की बत्ती तेज जले वह ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए शुभ कही गई है। वायु संचरण परीक्षण में भूमि की धूल को उठाकर हवा में उछालने पर यदि धूल उड़ जाए तो वह भूमि शुभ बताई गई है।

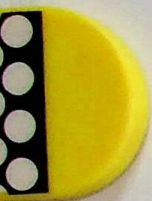
श्लोक क्रमांक ७१ में भूमि के अधिग्रहण की विधि का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि ब्राह्मणों के पद दलन करवाने के उपरान्त भूमि को अधिगृहीत करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ७२ से ८० भूमि चयन करते समय के शुभ व अशुभ शकुन का वर्णन किया गया है। यह बताया है कि भूमि पर प्रवेश करते समय पुण्याहवाचन, शंख की आवाज, पढ़ने के शब्द, पानी से भरा घड़ा, ब्राह्मण, वीणा, क्षेत्र की आवाज, पुत्र की माता, गुरु, मृदंग की ध्वनि वाद्य यन्त्रों की आवाज, भेरी की आवाज सुनाई देना शुभ होता है। स्वच्छ कपड़ों को पहने हुए कन्या, सुस्वाद व सुगन्धित मिट्टी, फूल, सोना, चांदी, मोती, मूँगा तथा अच्छे खाने की चीजों का दिखना शुभ होता है। हिरण, सुरमा, बंधा हुआ पशु, पगड़ी, चन्दन, शीशा, पंख्रा तथा वर्धमान के दर्शन होना (दिखना) शुभ होता है। मांस, दही, दूध, पालकी, छत्र, मछलियाँ, मिथुन इनका दिखाई देना आयु व स्वास्थ्य की वृद्धि करने वाला होता है। साफ सुथरा कमल का फूल, गाने की आवाज, सफेद बैल, हिरण, ब्राह्मण इनका गृह कार्य में आते जाते समय दिखाई देना शुभ होता है। हाथी, घोड़ा, सौभाग्यवती महिला, श्रेष्ठ स्त्री का दिखाई देना धन, पुत्र, सुख व स्वास्थ्य को बढ़ाता है। वेश्या, अंकुश, दीपक की माला, आभूषण पहने हुए कन्या, तथा बारिश का होना घर को बनाना शुरू करते समय शुभ होता है।

अशुभ शकुन

बुरे शब्द, शत्रु की आवाज, शराब, चमड़ा, हड्डी, घास, भूसी, सर्प चर्म, कोयला (का दिखना अशुभ होता है।) कपास, लवण, कीचड़, नपुंसक, तेल, दवाई, मल, काले अनाज, बीमार, जिसने उबटन लगाया हो (ऐसा व्यक्ति दिखाई देना अशुभ होता है।) पतित, जटाधारी, उन्मत्त, गंजा, नंगे सिर वाला, ईधन, रोने या विलाप करने का शब्द, पक्षी, मृग या मनुष्य एक साथ (इनका दिखाई देना अशुभ होता है।)

ज्वाला, दग्धा तथा धूम दिशा को ओर मुख करके यदि भूमि में प्रवेश करें तो मृत्यु होती है तथा उस भूमि में शल्य होता है।



जिस वस्तु का अपशकुन होता है, उस वस्तु का शल्य उस घर में होता है। जिस भूमि में शल्य हो उस भूमि में घर नहीं बनवाना चाहिए तथा रहना भी नहीं चाहिए।

श्लोक क्रमांक ८३ में मुहूर्त का वर्णन है।

शुभ तिथि, शुभ वार, शुभ लग्न, शुभ मुहूर्त में स्नान कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके (पूजन करें)।

श्लोक क्रमांक ८४ से ८७ तक में भूमि शुद्धिकरण तथा अधिग्रहण की विधि का वर्णन है।

भूमि शुद्धिकरण

भूमि को शुद्ध करने के लिए उस भूमि को पंचगव्य, सर्वौषधि, पंचामृत, सोना, धान्य, गन्ध आदि के जल से सींचना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ८८ से १०० तक भूमि पूजन विधि का वर्णन है।

भूमिपूजन विधि

भूमिपूजन विधि में सबसे पहले कलश की स्थापना की जाती है। इसमें विभिन्न नदी, समुद्र आदि का आवाहन किया जाता है। रुद्री आदि का पाठ किया जाता है। उसके पश्चात् वास्तुपुरुष से प्रार्थना की जाती है कि- हे वास्तुपुरुष सभी घर, महल, जलाशय, बगीचे के कार्य तथा घर के बनाते समय, शुरु से सभी सिद्धि (सफलता) को देने वाले, जिनकी सेवा रात दिन सिद्ध, देव व मनुष्य करते हैं, आप इस प्रजापति (ब्रह्मा) के क्षेत्र में आकर स्थित हो जाओ, इस पूजा को ग्रहण (स्वीकार) करें तथा वरदान दें। हे वास्तुपुरुष, भूमि रूपी शय्या (बिस्तर) पर शयन करने वाले, हे प्रभो, आपको नमस्कार है। मेरे इस घर को आप सदा धन-धान्य आदि से समृद्ध करें।

श्लोक क्रमांक ९७ में भूखण्ड पर वास्तु पद विन्यास करने का विधान बताया है। इसमें कहा गया है कि भूखण्ड पर वास्तुरूपी नाग को बनाएँ तथा पूजा करने के उपरान्त खुदाई का आरम्भ करें।

श्लोक क्रमांक १०१ में घर की खुदाई का मुहूर्त चन्द्रमास के अनुसार बताया

है:-

मास	गृहारम्भ की दिशा (सारणी ४.४)
भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक	पूर्व
मार्गशीर्ष, पौष, माघ	दक्षिण
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख	पश्चिम
ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण	उत्तर

श्लोक क्रमांक १०२ में सूर्य की राशि अनुसार वेदी निर्माण के मुहूर्त का वर्णन

है:- (सारणी ४.६)

सूर्य की राशि	दिशा
वृषभ, मिथुन, कर्क	पूर्व
सिंह, कन्या, तुला	दक्षिण
वृश्चिक, धनु, मकर	पश्चिम
कुम्भ, मीन, मेष,	उत्तर

इसी श्लोक में सूर्य राशि के अनुसार गृह-निर्माण मुहूर्त बताया है:-

सूर्य-राशि	दिशा
सिंह, कन्या, तुला	पूर्व
वृश्चिक, धनु, मकर	दक्षिण
कुम्भ, मीन, मेष	पश्चिम
वृषभ, मिथुन, कर्क,	उत्तर

श्लोक क्रमांक १०३ में देवालय तथा जलाशय के निर्माण के लिए शुभ मुहूर्त

बताया गया है:- (सारणी ४.७)

देवालय

सूर्य राशि	दिशा
मीन, मेष, वृषभ	पूर्व
मिथुन, कर्क, सिंह	दक्षिण
कन्या, तुला, वृश्चिक	पश्चिम
धनु, मकर, कुम्भ,	उत्तर

अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

(१.१.१) यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

(१.१.१) यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा अथ यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

(१.१.१) यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

यजुर्वेद

यजुर्वेदस्य ऋषिर्ब्रह्मा

जलाशय (सारणी ४.८)

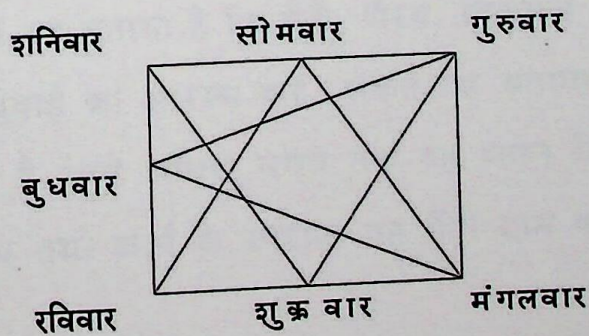
सूर्य राशि	दिशा
मकर, कुम्भ, मीन	पूर्व
मेष, वृषभ, मिथुन	दक्षिण
कर्क, सिंह, कन्या	पश्चिम
तुला, वृश्चिक, धनु	उत्तर

श्लोक क्रमांक १०४ से ११७ तक खुदाई का विचार किया गया है। विभिन्न आधार पर खुदाई की दिशा व समय का निर्धारण किया गया है। इनमें बताया है कि अधोमुख नक्षत्र में खुदाई का आरम्भ करना चाहिए।

मास के अनुसार बताया गया है कि किस मास में किस दिशा का घर बनवाना, किस दिशा का घर नहीं बनवाना तथा किस दिशा से खुदाई का आरम्भ करना चाहिए:- (सारणी ४.९)

मास	सूर्य राशि	बनवाए	न बनवाए	खुदाई दिशा
मार्गशीर्ष, पौष, माघ		सिंह, कन्या, तुला	दक्षिण	पूर्व ईशान
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख		वृश्चिक, धनु, मकर	पश्चिम	दक्षिण वायव्य
ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण		कुम्भ, मीन, मेष	उत्तर	पश्चिम नैऋत्य
भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक		वृषभ, मिथुन, कर्क	पूर्व	उत्तर आग्नेय

इसी प्रकार वार के अनुसार बताया गया है कि रविवार आदि वार को नैऋत्य आदि दिशा में खुदाई नहीं करना चाहिए।



चित्र ४.१ श्लोक १०३

चन्द्रमा व वास्तु का नक्षत्र गृहारम्भ के समय सामने व पीछे होना शुभ नहीं कहा है। लग्न तथा नक्षत्र से विचार किया गया चन्द्रमा शीघ्र फल देता है।

पूर्व

	कृ तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य
भरणीआश्लेषा						मघा
अश्विनी						पू.फाल्गुनी
रे वती						उ.फाल्गुनी
उ.भाद्रपद						हस्त
पू.भाद्रपद						चित्रा
शतभिषा						स्वाती
धनिष्ठा						विशाखा
	अभिजित	श्रवण	उ.षाढ़ा	पू.षाढ़ामूल	ज्येष्ठा	अनुराधा

चित्र ४.२ श्लोक ११७

घर के कार्य में सामने तथा पीछे चन्द्रमा हो तो शुभ नहीं होता है। वास्तु के काम में चन्द्रमा दाहिनी ओर या बाई ओर होना शुभ होता है।

लोहदण्ड का पूजन

श्लोक क्रमांक ११९ से १२२ तक भूमि पूजन हेतु लोहदण्ड के पूजन तथा खुदाई की विधि का वर्णन है। यह बताया है कि गैंती, भैरव, दिक्पाल एवं शिवजी का पूजन करें। उसके पश्चात् खुदाई का आरम्भ करें। संकेत यह बताया कि वह गैंती जितना भूमि में प्रविष्ट करती है उतने अधिक समय तक वह भवन टिकता है। गैंती विषम अंगुल की लेना चाहिए तथा कार्य के उपरान्त वह गैंती दान कर देना चाहिए।

...
...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...
...
...
...
...
...
...

खुदाई के समय शकुन

शुभ शकुन

श्लोक क्रमांक १२३ से १२८ तक खुदाई के समय होने वाले शुभाशुभ शकुन को बताया है।

वेद या गीत की ध्वनि, फूल व फल का दिखना, वेणु, वीणा व मृदंग की आवाज सुनाई देना व दिखना, दही, दूर्वा, कुश, कल्याणकारक पदार्थ का दिखना, सोना, चाँदी, ताम्बा, शंख, मोती, चिद्रुम, मणि, रत्न, वैडूर्य, स्फटिक, सुख देने वाली मिट्टी, गारुण का फल, फूल, मिट्टी, झाड़ी, खाने के पदार्थ, कन्द, मूल का दिखना सुखदाई होता है।

अशुभ शकुन

काँटे, साँप, कनखजूरा, दद्रु, बिच्छू, कठोर चट्टान, छेद, लोहे का मुद्गर, बाल, कोयला, राख, चमड़ा, हड्डी, लवण, खून, मज्जा, इनका दिखना अशुभ होता है।

विश्लेषण

इस प्रकार से विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ के पहले अध्याय भूमिलक्षण में सबसे पहले मंगलाचरण किया गया है। मंगलाचरण के सामान्यतः दो उद्देश्य होते हैं-पहला चित्त की एकाग्रता तथा दूसरे उद्देश्य ग्रन्थकार अपने आपको एक उपकरण मानकर कार्य करता है, सारा कार्य ईश्वर, गुरु या इष्ट की कृपा से सम्पन्न हो रहा है। उसके पश्चात् वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है। इस ग्रन्थ में बताया है कि वास्तुपुरुष की उत्पत्ति त्रैतायुग के मध्य हुई, उससे हमें ज्ञात होता है कि जब सतयुग था, जब चेतना सतोगुणी थी, तब वास्तुपुरुष की उत्पत्ति नहीं हुई थी। सतोगुणी चेतना प्रधान होने पर वास्तुदोष नहीं लगते हैं, जब चेतना के स्तर में गिरावट होती है, चेतना रजोगुणी-तमोगुणी होने लगती है, तब वास्तुपुरुष की उत्पत्ति हुई तथा वास्तुदोषों का लगना प्रारम्भ हुआ।



उसके पश्चात् यह बताया कि कोई भी नवीन निर्माण किया जाए तो सबसे पहले वास्तु के अनुसार क्षेत्र को विभिन्न भागों में विभाजित किया जाए, जिसे पदविन्यास कहते हैं (अध्याय ५ विश्वकर्म-प्रकाश)। जिससे हमें यह ज्ञात होता है कि भूखण्ड के किस भाग में किस प्रकार की ऊर्जा है, उसके अनुकूल इस स्थान पर निर्माण कार्य करना चाहिए। इससे प्रकृति की पोषणकारी शक्ति प्राप्त होती है। जैसे ईशान दिशा में आप, आपवत्स, पर्जन्य आदि देवता होते हैं, ये देवता जल से संबंधित हैं, अतः इस दिशा में हमें जल क्षेत्र जैसे भूमिगत पानी की टंकी आदि बनवाना चाहिए। इसलिए नगर, वापी, कूप, जलाशय, दुर्ग, नगर, घर, मन्दिर आदि कोई भी निर्माण कार्य को आरम्भ करने से पहले पदविन्यास कर देवता की स्थापना करना चाहिए।

उसके पश्चात् वास्तुदोष के लक्षण बताए हैं। जैसे चिकित्सक, रोग के लक्षण के आधार पर रोग का निर्धारण करता है, वैसे ही वास्तुदोष के लक्षण के आधार पर यह निर्धारण होता है कि किसी स्थान पर वास्तुदोष है या नहीं। कोई भी जीव (जैसे सर्प, चमगादड़, मधू-मक्खी आदि) अपने अनुकूल ऊर्जा प्राप्त होने पर वहाँ प्रवेश करते हैं या रहते हैं। वह ऊर्जा सामान्यरूप से मनुष्य के लिए शुभ नहीं है, अतः कहा है कि जिस घर में ये प्रवेश कर जाएँ वहाँ वास्तुदोष होता है। इसी प्रकार कहा है कि जहाँ रात्रि में पालतू पशु विलाप करते हों, रोते हों वहाँ वास्तुदोष रहता है अतः उस स्थान पर दोष के निवारणार्थ वास्तुशान्ति करवाना चाहिए।

उसके पश्चात् भूमि चयन विधि का वर्णन है। इसमें भूमि के शुभाशुभ आकार बताए हैं, वास्तव में आकार के माध्यम से आकार के गुण बताएँ हैं। जैसे वर्गाकार भूमि शुभ बताई है इसका तात्पर्य है कि वर्गाकार शुभ है। वह आकार चाहे भूमि का हो या भवन या कमरे या चित्र का शुभ है। इस प्रकार विभिन्न आकार के परिणाम बताए हैं।

वास्तु की दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो मनुष्यों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है, यह विभाजन उनके गुण-धर्म के आधार पर किया गया है। इसे वर्ण-व्यवस्था कहते हैं। वास्तुशास्त्र में मनुष्यों को चार श्रेणी में विभाजित किया गया है:- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र। वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थ में रंग, गन्ध, व स्वाद के आधार पर भूमि के गुण बताएँ हैं। वास्तव में यहाँ रंग, गन्ध व स्वाद के गुण बताए

हैं कि ब्राह्मण के लिए मीठा स्वाद उपयुक्त है। उसके लिए सफेद रंग तथा मधुर गन्ध शुभ कही है। इस प्रकार से यहाँ रंग, गन्ध व स्वाद के गुण बताएँ हैं। मीठा स्वाद ब्राह्मणोचित गुण को विकसित करता है। सफेद रंग से ब्राह्मणोचित गुण का विकास होता है। इस प्रकार यहाँ सांकेतिक रूप से भूमि चयन विधि से आकार, रंग, गन्ध व स्वाद के गुण बताएँ हैं।

इसके अतिरिक्त ' हेयं दुःखम् अनागतम् ' के सिद्धान्त पर क्रियान्वयन करते हुए कहा है गृह हेतु ऐसी भूमि का चयन करें जो सार्वजनिक स्थल जैसे मन्दिर, सभागृह, चौराहे आदि के समीप न हो, न ही उसके आसपास धूर्त, सचिव आदि के घर हों। ऐसी भूमि का चयन भी न करें जिसमें पत्थर या छिद्र हो, जो विषम व प्रतिकूल हो।

ऐसी भूमि का चयन करें जो मनोरम हो।

उसके पश्चात भूमि परीक्षण की विधियों को वर्णन है, जिसमें भूमि का घनत्व, आर्द्रता, विकिरण तथा ऊर्वरता का परीक्षण किया जाता है। चूँकि इन विधियों में परीक्षण भूखण्ड पर ही किया जाता है अतः इनसे वास्तविक परिणाम प्राप्त होते हैं। जबकि आधुनिक समय में प्रयोगशाला में परीक्षण करने पर, प्रयोगशाला के वातावरण से परिणाम प्रभावित होता है तथा प्रयोगशाला की विधि में खर्च भी अधिक जाता है, समय भी अधिक लगता है।

उसके पश्चात् कार्य आरम्भ करने के मुहूर्त का वर्णन है। जैसा कार्य होता है उसके अनुसार मुहूर्त का निर्धारण किया जाता है। गृह-आरम्भ, मंदिर, जलाशय व यज्ञवेदी के लिए अलग-अलग मुहूर्त बताए हैं।

प्रत्येक कार्य को आरम्भ करते समय प्रकृति के जो संकेत प्राप्त होते हैं, उन्हें भी ध्यान में रखा जाता है, इन्हें शकुन कहते हैं। शुभ मुहूर्त में शुभ शकुन होने पर ही कार्य का आरम्भ किया जाता है। शुभ मुहूर्त में अशुभ शकुन होने पर कार्य को स्थगित कर, ध्यान, जप, पूजा, हवन आदि कर कार्य को आरम्भ किया जाता है।



अध्याय २

४.२ गृहादि विचार

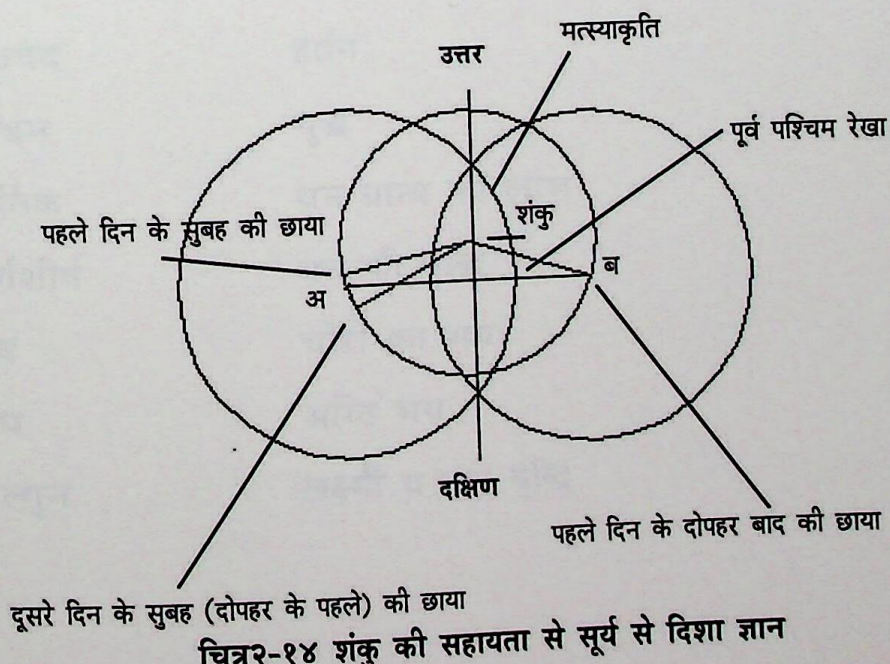
इस अध्याय में गृह के निर्माण व मुहूर्त तथा मान आदि का विचार किया गया है। इसमें भवन के अंग, उनके मान तथा शाला भवन का भी वर्णन किया गया है।

स्वप्न विधि

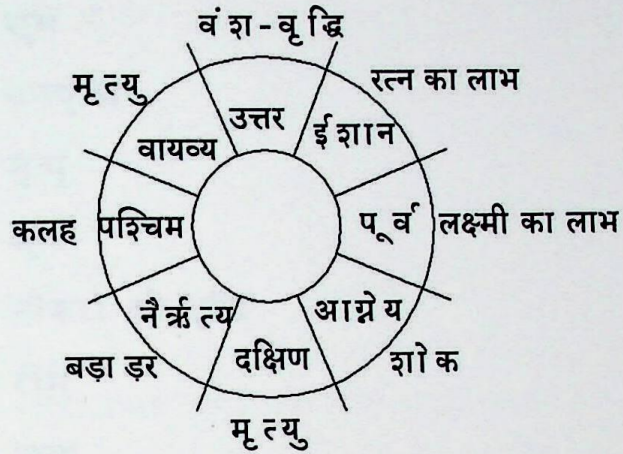
श्लोक क्रमांक १ से १३ तक स्वप्न विधि का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि पहले जिस स्थान पर निर्माण कार्य करना हो तो उस स्थान की भूमि को साफ-सुथरा करें। गृहस्वामी स्वच्छ रेशमी वस्त्र आदि को धारण कर, माला आदि से सुशोभित हो, जितेन्द्रिय रहकर, अल्पाहार रहकर भगवान शंकर का पूजन आदि करें। रुद्राध्यायी का पाठ करें। स्थान पर जाकर गणपति, भूमि, दिक्पाल, लक्ष्मी आदि का पूजन करें, चारों दिशाओं में नवीन कलश को स्थापित करें, वे जल, रत्न, गन्ध, सोना आदि से पूर्ण हों। भली प्रकार से शयन को बिछाकर उस पर दाहिनी करवट सोए, रात्रि के अन्तिम प्रहर में दिखने वाले स्वप्न के आधार पर भूमि के शुभाशुभ का निर्धारण करें।

उसके पश्चात श्लोक क्रमांक १४ में दिशा ज्ञान की विधि का वर्णन है-

इसमें शंकु की सहायता से दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन है।



श्लोक क्रमांक १५-१६ में भूमि के झुकाव का परिणाम बताया है।



श्लोक क्रमांक १७ से २३ तक चैत्र आदि मास में गृहारम्भ का फल कहा है:-

चन्द्रमास	परिणाम
चैत्र	व्याधि
वैशाख	धन व रत्न का लाभ
ज्येष्ठ	मृत्यु
आषाढ़	नौकर, रत्न, पशु का लाभ
श्रावण	मित्रों का लाभ
भाद्रपद	हानि
अश्विन	युद्ध
कार्तिक	धन-धान्य का लाभ
मार्गशीर्ष	धन की वृद्धि
पौष	चोरों का भय
माघ	अग्नि भय
फाल्गुन	लक्ष्मी व वंश वृद्धि



श्लोक क्रमांक २१ से २३ में सूर्य की राशि के अनुसार गृहारम्भ का फल बताया

है:-

सूर्य राशि	परिणाम
मेष	शुभ
वृषभ	धनवृद्धि
मिथुन	मृत्यु
कर्क	शुभ
सिंह	नौकरों की वृद्धि
कन्या	रोग
तुला	सुख
वृश्चिक	धन-धान्य
धनु	बहुत हानि
मकर	धनागम
कुम्भ	रत्नलाभ
मीन	भयानक स्वप्न

श्लोक क्रमांक में २४ से ३९ तक ग्रह का विचार किया गया है। यह बताया है कि गृहारम्भ के समय महादशा, अन्तर्दशा, ग्रह बल, जन्म राशि से ग्रह की स्थिति तथा अशुभ ग्रह का विचार करना चाहिए।

पत्थर व ईंट के गृह में मास का विचार करना चाहिए, घास व लकड़ी आदि के घर में मास का विचार नहीं किया जाता है।

वर्ण	ग्रह के बल का विचार
ब्राह्मण	गुरु व शुक्र
क्षत्रिय	सूर्य व मंगल
वैश्य	चन्द्र व बुध
शूद्र	शनि

ग्रह एवं प्रभाव

सूर्य	गृहस्वामी
चन्द्र	पत्नी
मंगल	भाई-बन्धु
बुध	पुत्र-पौत्र
गुरु	सुख-सम्पत्ति
शुक्र	लक्ष्मी
शनि	नौकर

गृहारम्भ के समय जन्म राशि से सूर्य विचार

भाव	परिणाम
१	पेट में रोग
२	धननाश
३	धनलाभ
४	भय
५	पुत्रनाश
६	शत्रुनाश
७	स्त्रीकष्ट
८	मृत्यु
९	धर्मनाश
१०	कर्मलाभ
११	धनलाभ
१२	धनहानि

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो ग्रह अस्त है, नीच राशि में हो, शत्रु राशि में हो, शत्रु द्वारा पराजित हो, बाल या वृद्ध हो या वक्री हो उनका पूजन करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ४० से ४३ तक निर्माण में प्रयुक्त इकाई हस्त व अंगुल आदि का विचार किया गया है। यह बताया है कि गृहस्वामी, उसकी पत्नी या बड़े पुत्र या कारीगर के हाथ से माप लेकर कार्य करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ४४-४५ में त्याज्य तिथि व योग आदि का वर्णन है। इनमें मास दग्ध, वार दग्ध तिथि, मंगलवार व शनिवार तथा सूर्य संक्रान्ति तथा गंडांत को छोड़कर कार्य का आरम्भ करना चाहिए यह बताया है।

स्तम्भ के लिए शुभ नक्षत्र का विचार श्लोक ४८ में किया गया है।

श्लोक क्रमांक ४९ से ६५ तक क्षेत्रफल के आधार पर आय, आय के उपयोग आदि का विचार किया गया है। आय आदि का उपयोग किसी भी स्थान या उपकरण जैसे प्लाट, बना हुआ भाग, खिड़की, दरवाजा आदि का उचित मान ज्ञात करने के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला सूत्र है।

यह बताया है कि लम्बाई में चौड़ाई का जो गुणनफल आए उसमें आठ का भाग देने पर जो शेष रहता है उसे आय कहते हैं। शेषफल १ से ८ (०) हो सकता है उसी के आधार पर आय के नाम व दिशा होती है:-

शेष	आय	दिशा	उपयोग
१	ध्वज	पूर्व	छत्र, प्रासाद, पुर, हाथी, घोड़ा, ऊँट, अमत्र,
२	धूम	आग्नेय	अग्नि, वस्त्र व्यवसाय
३	सिंह	दक्षिण	आसन, प्रासाद, पुर, घर, पीठ, खड़ाऊँ
४	श्वान	नैऋत्य	म्लेच्छ
५	वृष	पश्चिम	भोजन पात्र, पुर, घर, घोड़े, शय्या, छत्र, वस्त्र
६	खर	वायव्य	वैश्य, घोड़े
७	गज	उत्तर	शयन, गज, वापी, कुँआ, तालाब
८ (०)	काक (ध्वांक्ष)	ईशान	शेष कुटी (सन्यासी की कुटिया)

शेष	आय	वर्ण के अनुसार शुभ	परिणाम
१	ध्वज	ब्राह्मण	सभी कार्यों में सफलता
२	धूम		शोक व दुःख
३	सिंह	क्षत्रिय	शुभ, परन्तु क्रोध व कम सन्तान
४	श्वान		शोक व दुःख
५	वृष	वैश्य	पशुओं की वृद्धि
६	खर		शोक व दुःख
७	गज	शूद्र	सम्पत्ति की वृद्धि
८ (०)	काक (ध्वांक्ष)		शोक व दुःख

श्लोक क्रमांक ६६ से ९३ तक आयादि के नौ सूत्रों का विचार किया गया है। इन सूत्रों के आधार पर प्लाट या भूखण्ड, बने हुए हिस्से कमरे आदि, उपकरण, पलंग, दरवाजा खिड़की आदि का उचित मान ज्ञात किया जाता है। इस में क्षेत्रफल को आधार बनाकर आय आदि नौ सूत्र का उल्लेख है:-

आय, ऋण के बराबर या अधिक होना चाहिए।

वार की गणना रविवार (शेषफल १) से आरम्भ होती है। रविवार, मंगलवार व शनिवार शुभ नहीं होते हैं।

तिथि में ४, ९ व १४ शुभ नहीं हैं।

नक्षत्र में गृहस्वामी के जन्म नक्षत्र से गृह का नक्षत्र (शेषफल का नक्षत्र) ३ रा, ५ वाँ, ७ वाँ, १२वाँ, १४ वाँ, १६वाँ, २३वाँ, २५वाँ व २७वाँ नहीं होना चाहिए।

योग में विष्कुम्भ आदि २७ योग का नाम के अनुसार ही फल होता है यह जानना चाहिए।

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ९}{८} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{आय}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ९}{७} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{वार}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ६}{९} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{अंश}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{१२} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{द्रव्य}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ३}{८} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{ऋण}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{२७} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{नक्षत्र}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{१५} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{तिथि}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ४}{२७} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{योग}$$

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{१२०} \xrightarrow{\text{शेषफल}} \text{आयु}$$

सूर्य आदि ९ ग्रह के नौ अंश होते हैं, इनमें क्रूर ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहू व केतू के अंश शुभ नहीं होते हैं।

द्रव्य में वस्त्र, शत्रु, पुस्तक, द्रव्य, धान्य, पृथ्वी, कुटुम्ब, विद्या, पशु, वाटिका, भाण्ड-भूषण व धन आदि १२ द्रव्य होते हैं, जैसा कार्य हो उसके अनुसार द्रव्य का चयन करना चाहिए।

जिस प्रकार विवाह के पूर्व वर व कन्या के गुण का मिलान नक्षत्र के चरण के आधार पर किया जाता है, उसी प्रकार गृहस्वामी व गृह के नक्षत्र के चरण के अनुसार मिलान किया जाता है। मिलान के आठ बिन्दु होते हैं:- राशि, वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रह, गण, नाड़ी। कुल गुण ३६ होते हैं, इनमें से १८ गुण मिलने पर शुभ है ऐसा माना जाता है। इसमें भी यह विचार करते हैं कि गृह स्वामी की राशि से घर की राशि ४, ८ या १२ नहीं होना चाहिए।

माप की इकाई हस्त व अंगुल होती है।

११ से अधिक तथा ३२ हस्त से कम यदि गृह का मान हो तो ही आयादि का विचार किया जाता है।

श्लोक क्रमांक ९४ से ९९ तक गृहविन्यास का विचार किया है कि किस दिशा में कौन सा कक्ष बनवाना चाहिए:-

	रतिगृह	भंडार	औषधि	मन्दिर
कोपभवन				
				स्नान
अध्ययन				मथने
	शौचालय		घी	रसोई

श्लोक क्रमांक १०० से १०७ तक एक शाला वाले गृह का विचार किया गया है:-

(शाला७, अलिन्द १, पू-पूर्व, द-दक्षिण, प-पश्चिम, उ-उत्तर)

संख्या	शाला-अलिन्द (दिशा)	नाम	परिणाम
	पूदपउ		
१	७७७७	ध्रुव	धन-धान्य
२	१७७७	धान्य	धान्यसुख
३	७१७७	जय	विजय
४	११७७	नन्द	स्त्रीहानि
५	७७१७	खर	सम्पत्तिनाश
६	१७१७	कान्त	पुत्रपौत्रदाता
७	७११७	मनोरम	लक्ष्मीदाता
८	१११७	सुमुख	भोग
९	७७७१	दुर्मुख	दुःखदाता
१०	१७७१	उग्र	सभी दुःख का दाता
११	७१७१	रिपुद	शत्रुभय
१२	११७१	धनद	धनदाता
१३	७७११	क्षय	सर्वस्वनाश
१४	१७११	आक्रन्द	शोक
१५	७१११	विपु	प्रचुरता
१६	११११	विजय	विजयजाता

जिस घर में शुभ अलिन्द न हो उसे कापाल कहते हैं।

श्लोक क्रमांक १०८ से १३३ तक भवन की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, दीवार का मान, राशि व दिशा उसमें निवास करने वाले व्यक्ति का विचार किया गया है।

घर की लम्बाई, चौड़ाई के दुगुने से अधिक हो तो गृहस्वामी का विनाश होता है।

वह घर निरर्थक (अर्थ हीन) होता है एवं उसमें राजा से भय होता है।

आज के समय में हमें यह याद रखना चाहिए कि हमारे पास जो ज्ञान है, वह हमारे पूर्वजों के ज्ञान का ही फल है। हमें इसे सही ढंग से उपयोग करना चाहिए।

क्र.सं.	नाम	पद	वर्ग
1	श्री गुरुदेव	गुरु	1
2	श्री गुरुदेव	गुरु	2
3	श्री गुरुदेव	गुरु	3
4	श्री गुरुदेव	गुरु	4
5	श्री गुरुदेव	गुरु	5
6	श्री गुरुदेव	गुरु	6
7	श्री गुरुदेव	गुरु	7
8	श्री गुरुदेव	गुरु	8
9	श्री गुरुदेव	गुरु	9
10	श्री गुरुदेव	गुरु	10
11	श्री गुरुदेव	गुरु	11
12	श्री गुरुदेव	गुरु	12
13	श्री गुरुदेव	गुरु	13
14	श्री गुरुदेव	गुरु	14
15	श्री गुरुदेव	गुरु	15
16	श्री गुरुदेव	गुरु	16
17	श्री गुरुदेव	गुरु	17
18	श्री गुरुदेव	गुरु	18
19	श्री गुरुदेव	गुरु	19
20	श्री गुरुदेव	गुरु	20

हमारे पास जो ज्ञान है, वह हमारे पूर्वजों के ज्ञान का ही फल है। हमें इसे सही ढंग से उपयोग करना चाहिए।

हमारे पास जो ज्ञान है, वह हमारे पूर्वजों के ज्ञान का ही फल है। हमें इसे सही ढंग से उपयोग करना चाहिए।

हमारे पास जो ज्ञान है, वह हमारे पूर्वजों के ज्ञान का ही फल है। हमें इसे सही ढंग से उपयोग करना चाहिए।

अलिन्द पर्यायवाची-द्वार, अलिन्दक, गृह से बाहर निकली काष्ठ, लकड़ी सहित लकड़ी का गृह, दोनों ओर की तिरछी काष्ठ, स्तम्भ के बिना बाहर की ओर निकली काष्ठ, ऊपर की ओर उठी हुई काष्ठ को अलिन्द कहते हैं।

गृह की ऊँचाई

घर की चौड़ाई = ऊँचाई

एक शाला घर की लम्बाई चौड़ाई से दुगुना होता है।

शाला ऊँचाई व चौड़ाई का अनुपात

एक १:१

दो २:१

तीन ३:१

चार ५:१

घर की शिखा = $\frac{१}{३}$ घर की ऊँचाई

वर्णानुसार-शाला

वर्ण शाला

ब्राह्मण ४

क्षत्रिय ३

वैश्य २

शूद्र १

राशि व द्वार

दिशा	राशि	वर्ण
उत्तर	४, ८, १२	ब्राह्मण
पूर्व	१, ५, ९	क्षत्रिय
दक्षिण	२, ६, १०	वैश्य
पश्चिम	३, ७, ११	शूद्र

गृहप्रमाण

श्लोक क्रमांक १३४ से १४९ तक राजा आदि के महल आदि के मान का विचार किया गया है।

राजा के महल के पाँच प्रकार के मान (हस्त में)

चौड़ाई	१०८	१००	९२	८४	७६
लम्बाई	१३५	१२५	११५	१०५	९५

सेनापति के पाँच प्रकार के गृहमान (हस्त में)

चौड़ाई	६४	५८	५२	४६	४०
लम्बाई	७४-१६	६७-१६	६१-१६	५३-१६	४६-१६

सचिव के गृह के पाँच प्रकार के गृह मान (हस्त में)

चौड़ाई	६०	५६	५२	४८	४४
लम्बाई	६७-१२	६३-०	५८-१२	५४-०	४९-१२

इसी प्रकार राजमहिषी, राजकुमार, अन्यराजपुरुष, कलाकार तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के गृहों के मान का वर्णन है। इसमें गृह कि न्यूनतम चौड़ाई १६ हस्त बताई गई है। इन मान में लम्बाई व चौड़ाई का विशिष्ट अनुपात रहता है।

श्लोक क्रमांक १५३ में वीथिका का मान बताया है।

वीथिका

वीथिका (गली) = १/३ शाला

गली दिशा	नाम
सामने	सोष्णीश
पीछे	सायाश्रय
दोनों ओर	सावष्टम्भ
चारों ओर	सुस्थित



श्लोक क्रमांक १५४ से १६० तक घर की ऊँचाई एवं दीवार का प्रमाण बताया है।

घर की ऊँचाई का मान

घर की ऊँचाई = $१/१६$ (घर की चौड़ाई) अ ४ हस्त

ऊपर की मंजिल की ऊँचाई उ नीचे की मंजिल की ऊँचाई - $१/१२$ (नीचे की मंजिल की ऊँचाई)

मंजिल की संख्या (अधिकतम)

राजा	८.५
ब्राह्मण	७.५
क्षत्रिय	६.५
वैश्य	५.५
शूद्र	३.५

दीवार का प्रमाण

पक्की ईंट के बने घर की मोटाई = $१/१६$ (घर की चौड़ाई)

द्वार-प्रमाण का वर्णन श्लोक क्रमांक १६१-१६३ में किया गया है।

श्लोक क्रमांक १६४ से १६८ तक स्तम्भ के मान, प्रकार व अंग वर्णन किया है।

स्तम्भ का मान

स्तम्भ के ऊपरी भाग की मोटाई = निचले भाग की मोटाई - $१/१०$ निचले भाग की मोटाई

स्तम्भ प्रकार

कोण	नाम
४	रुचक
८	वज्र
१६	द्विवज्र
३२	प्रलीनक
गोल	गोल

स्तम्भ के अंग

श्लोक क्रमांक १७१ से १८४ तक दोशाला वाले गृहों का वर्णन किया गया है।

शाला दिशा निर्णय

जब दो शाला बनवाना हो तो पहली शाला दक्षिण में, दूसरी शाला पश्चिम में, तीसरी शाला उत्तर में तथा चौथी शाला पूर्व-पश्चिम (पूर्व) में बनवाना चाहिए।

दो शाला वाले भवन

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	संज्ञा
खर	दुर्मुख			वात
	दुर्मुख	धान्य		सिद्धार्थ
		धान्य	जय	यमसूर्य
खर			धान्य	दण्ड
	दुर्मुख		जय	वात
खर		धान्य		चुल्लकी
	विपक्ष	कूर		शोभन
	विजय	विजय		कुम्भ
धन		धान्य		नन्द
किसी दो दिशा में विजय				शंकु
किसी दो दिशा में विपुल				संपुट
किसी दो दिशा में जब धनद, सुवक्त्र या मनोरम				कान्त

श्लोक क्रमांक १८५ से १८९ तक तीन शाला वाले गृहों का वर्णन किया गया है।

त्रिशाल

शाला हीन	नाम	परिणाम
उत्तर	हिरण्यनाभ	राजाओं के सुख को बढ़ाने वाला
पूर्व	सुक्षेत्र	पुत्र-पौत्र, धन-धान्य व समृद्धि देने वाला
दक्षिण	चुल्ली (चुल्ही)	पुत्र-पौत्र व धन का नाश
पश्चिम	पक्षघ्न	पुत्र को दोषकारक, पुरवासियों से शत्रुता



श्लोक क्रमांक १९० से १९६ तक चार शाला वाले भवनों का वर्णन किया गया

है।

चतुश्शाल (चारों दिशाओं में शाला)

विशेषता	संज्ञा
चारों दिशा में द्वार	सर्वतोभद्र
पश्चिम में द्वार न हो	नन्द्यावर्त
दक्षिण में द्वार न हो	वर्धमान
उत्तर दिशा में द्वार न हो	रुचक
पूर्व दिशा में द्वार हो	स्वस्तिक

विश्लेषण

इस अध्याय का नाम गृहादि विचार है। इस अध्याय में सबसे पहले स्वप्न विधि का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि जिस भूमि का चयन गृह आदि बनवाने के लिए किया जाता है, उस भूमि पर रात्रि में निवास कर शुभाशुभ का ज्ञान किया जाता है। गृहस्वामी जितेन्द्रिय रहकर, अल्पाहार कर, पवित्र होकर उसी भूमि पर रात्रि शयन करता है, यदि भूमि का प्रभाव शुभ है तो रात्रि के अन्तिम प्रहर में शुभ स्वप्न आते हैं। यदि भूमि अशुभ है तो रात्रि के अन्तिम प्रहर में अशुभ स्वप्न आते हैं। अशुभ भूमि का त्याग कर शुभ भूमि पर निर्माण कार्य करना चाहिए। उसके पश्चात् प्लव विचार में बताया है कि जो भूमि सूर्योदय की दिशा पूर्व, उत्तर या ईशान कोण की ओर झुकी हो वह निर्माण के लिए सदैव उपयुक्त रहती है। उसके पश्चात् मासानुसार गृहारम्भ विचार किया है, इसमें बताया है कि जब प्रकृति अनुकूल हो, बहुत अधिक गर्मी या वर्षा न हो उस समय निर्माण कार्य का आरम्भ करना चाहिए। ज्येष्ठ मास में गृहारम्भ का फल मृत्यु तो भाद्रपद मास में हानि बताया है। ज्येष्ठ मास में बहुत अधिक गर्मी रहती है तो भाद्रपद मास बहुत अधिक वर्षा की आशंका रहती है, अतः इन मास में गृहारम्भ नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार सूर्य की राशि के अनुसार, ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रह की स्थिति के अनुसार शुभ समय में गृहारम्भ करना चाहिए।

उसके पश्चात् इकाई का वर्णन किया गया है। सबसे छोटी इकाई परमाणु बताई है। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में इतनी सूक्ष्म इकाई का वर्णन मिलता है। यह बताया है कि गृह निर्माण में हस्त व अंगुल का प्रयोग कर शुभ मान में निर्माण करना चाहिए। नगर आदि का मान बड़ी इकाई दण्ड आदि में लेना चाहिए। उसके पश्चात् किसी भी निर्माण कार्य के लिए शुभ लम्बाई व चौड़ाई के मान ज्ञात करने की विधि का वर्णन

श्लोक क्रमांक १९० से १९६ तक चार शाला वाले भवनों का वर्णन किया गया

है।

चतुश्शाल (चारों दिशाओं में शाला)

विशेषता	संज्ञा
चारों दिशा में द्वार	सर्वतोभद्र
पश्चिम में द्वार न हो	नन्धावर्त
दक्षिण में द्वार न हो	वर्धमान
उत्तर दिशा में द्वार न हो	रुचक
पूर्व दिशा में द्वार हो	स्वस्तिक

विश्लेषण

इस अध्याय का नाम गृहादि विचार है। इस अध्याय में सबसे पहले स्वप्न विधि का वर्णन किया गया है। इसमें बताया गया है कि जिस भूमि का चयन गृह आदि बनवाने के लिए किया जाता है, उस भूमि पर रात्रि में निवास कर शुभाशुभ का ज्ञान किया जाता है। गृहस्वामी जितेन्द्रिय रहकर, अल्पाहार कर, पवित्र होकर उसी भूमि पर रात्रि शयन करता है, यदि भूमि का प्रभाव शुभ है तो रात्रि के अन्तिम प्रहर में शुभ स्वप्न आते हैं। यदि भूमि अशुभ है तो रात्रि के अन्तिम प्रहर में अशुभ स्वप्न आते हैं। अशुभ भूमि का त्याग कर शुभ भूमि पर निर्माण कार्य करना चाहिए। उसके पश्चात् प्लव विचार में बताया है कि जो भूमि सूर्योदय की दिशा पूर्व, उत्तर या ईशान कोण की ओर झुकी हो वह निर्माण के लिए सदैव उपयुक्त रहती है। उसके पश्चात् मासानुसार गृहारम्भ विचार किया है, इसमें बताया है कि जब प्रकृति अनुकूल हो, बहुत अधिक गर्मी या वर्षा न हो उस समय निर्माण कार्य का आरम्भ करना चाहिए। ज्येष्ठ मास में गृहारम्भ का फल मृत्यु तो भाद्रपद मास में हानि बताया है। ज्येष्ठ मास में बहुत अधिक गर्मी रहती है तो भाद्रपद मास बहुत अधिक वर्षा की आशंका रहती है, अतः इन मास में गृहारम्भ नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार सूर्य की राशि के अनुसार, ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रह की स्थिति के अनुसार शुभ समय में गृहारम्भ करना चाहिए।

उसके पश्चात् इकाई का वर्णन किया गया है। सबसे छोटी इकाई परमाणु बताई है। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में इतनी सूक्ष्म इकाई का वर्णन मिलता है। यह बताया है कि गृह निर्माण में हस्त व अंगुल का प्रयोग कर शुभ मान में निर्माण करना चाहिए। नगर आदि का मान बड़ी इकाई दण्ड आदि में लेना चाहिए। उसके पश्चात् किसी भी निर्माण कार्य के लिए शुभ लम्बाई व चौड़ाई के मान ज्ञात करने की विधि का वर्णन

है। जिस सूत्रों की सहायता से यह मान ज्ञात वे आयादि सूत्र कहलाते हैं। इस ग्रन्थ में क्षेत्रफल को आधार बनाकर ९ सूत्रों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त एक सूत्र में बताया है कि लम्बाई व चौड़ाई के गुणनफल को आठ से भाग देने पर शेष अंक विषम (संख्या) होना चाहिए। इस सूत्र को देखने पर हम पाते हैं कि यदि लम्बाई व चौड़ाई के मान को हम विषम अंक में लें तो शेषफल विषम आता है। अतः वास्तुशास्त्र में आयादि सूत्र की दृष्टि से माप की इकाई हस्त या अंगुल में लेना चाहिए तथा वह संख्या विषम १, ३, ५, ७ आदि होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त इस अध्याय में बताया है कि ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए ध्वज आदि आय शुभ होती है।

जिस प्रकार विवाह से पूर्व, वर व वधू की पत्रिका का मिलान किया जाता है, ठीक उसी प्रकार गृह निर्माण से पूर्व गृहस्वामी तथा गृह के नक्षत्र के आधार पर गुणों का मिलान किया जाता है। इसमें नक्षत्र या तारा मिलान का बहुत अधिक महत्व है। यहाँ ९ ताराओं का वर्णन मिलता है, इसमें तीसरी, पाँचवीं व सातवीं तारा को छोड़कर अन्य तारा शुभ बताई गई है।

उसके पश्चात् गृहविन्यास का वर्णन मिलता है। इसमें बताया है कि पूर्व दिशा में स्नान, पूजा, रसोई आदि का स्थान होना चाहिए। दक्षिण दिशा में शौचालय, नैऋत्य-पश्चिम के मध्य विद्याभ्यास, नैऋत्य में सूतिका-गृह, उत्तर दिशा में भण्डार-गृह बनवाना चाहिए।

उसके पश्चात् बताया है कि अलिन्द आदि के भेद से १६ प्रकार के एक दिशा में बने गृह (एकशाल) होते हैं। द्विशाल के तेरह भेद बताएँ हैं। त्रिशाला के चार भेद हैं, इसमें बताया है कि जो शाला उत्तर या पूर्व दिशा की ओर खुली हो, जिसमें उत्तर या पूर्व दिशा का विकिरण आता हो वह शुभ है। इसके विपरीत जिस भवन में केवल दक्षिण या पश्चिम दिशा खुली हो वह अशुभ होता है। इसी अध्याय में पाँच प्रकार के चतुश्शाल भवन का वर्णन भी है, ये सभी शुभ हैं। इस अध्याय में राजा आदि विभिन्न व्यक्ति (मन्त्री, सेनापति, सचिव, राजपुरुष, रानी, राजकुमार, पुरोहित, ब्राह्मण आदि वर्ण) के लिए उनके पद के अनुसार उनके गृहों के मान, लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई का वर्णन किया है।

इस अध्याय में भवन हेतु संरचना (स्ट्रक्चर) का वर्णन भी किया है। भारवाहक दीवार के मान बताया है कि जितनी चौड़ाई हो उसका सोलहवाँ भाग दीवार की मोटाई होती है। इसी प्रकार सेल्फ सपोर्टेड कॉलम (स्तम्भ) का मान बताया है। एक भवन बनाते समय कमरे व अलिन्द (बरामदे) के अनुपात का वर्णन है।

स्तम्भ के क्रॉससेक्शन के आधार पर पाँच प्रकार के स्तम्भ (चौकोर से गोल तक) का वर्णन है। स्तम्भ की लम्बाई को ९ भागों में विभाजित कर किस प्रकार अलंकृत किया जाता है, उसके विधान बताएँ हैं। स्तम्भ के ऊपर तुला, उपतुला आदि रखी जाती है, इनका मान स्तम्भ के अनुपात में होता है। भारतुला, स्तम्भ के बराबर होना चाहिए। अन्य तुला (उपतुला, तुलोपतुला आदि), तुला के अनुपात में पौन-पौन भाग होती हैं।

इस प्रकार से इस अध्याय में स्वप्न विधि, प्लव, इकाई, मुहूर्त, आयादि, शालभवन, भवन व भवन के अंगों के मान का वर्णन किया है।



४.३ अध्याय ३

गृहारम्भ मुहूर्त

श्लोक क्रमांक १ से ११ तक नक्षत्र, वार, तिथि आदि के आधार पर गृहारम्भ के समय का विचार किया गया है। यह बताया है कि मृदु, ध्रुव संज्ञक नक्षत्र हो, रविवार, मंगलवार व रिक्ता तिथि न हो। यह बताया है कि चर, यमघंट, दग्ध व मृत्यु योग में गृहारम्भ नहीं करना चाहिए।

नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
१	२	३	४	५
६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५

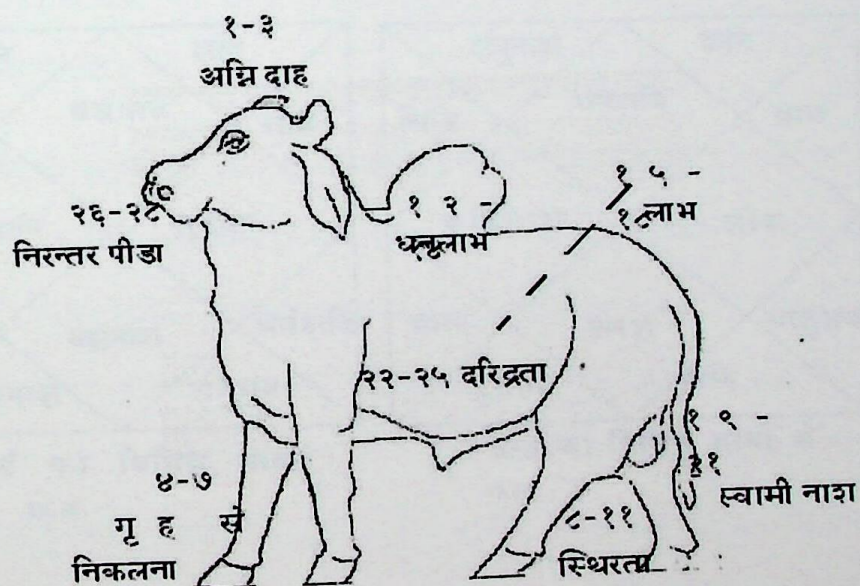
तिथि	गृहारंभ परिणाम
प्रतिपदा	दरिद्रता
चतुर्थी	धननाश
अष्टमी	उच्चाटन
नवमी	शस्त्रघात
चतुर्दशी	पुत्र व स्त्री का नाश
अमावस्या	राजभय

श्लोक क्रमांक १२ से १५ वृष चक्र का वर्णन है, जिसमें एक वृष के माध्यम से गृहारम्भ मुहूर्त को बताया है:-

योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
चरयोग	पू.षा	आर्द्रा	विशाखा	रोहिणी	शतभिषा	मघा	मूल
यमघंट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त
दग्ध	भरणी	चित्रा	उ.षा.	धनिष्ठा	उ.फा.	ज्येष्ठा	रेवती
मृत्यु	अनुराधा	उ.षा.	शतभिषा	अश्विनी	मृगशिर	आश्लेषा	हस्त

श्लोक क्रमांक १८ से ४५ तक विभिन्न भाव, नक्षत्र में विभिन्न ग्रहों के स्थित होने का परिणाम बताया है:-

सूर्य से चन्द्र नक्षत्र	अंग	सू से च नक्षत्र	परिणाम
१-३	मस्तक	१-३	अग्निदाह
४-७	अग्रपाद	४-७	गृह से निकलना
८-११	पिछला पैर	८-११	स्थिरता
१२-१४	पीठ	१२-१४	धनलाभ
१५-१८	दाहिनी कुक्षी	१५-१८	लाभ
१९-२१	पूँछ	१९-२१	स्वामी नाश
२२-२५	बाई कुक्षी	२२-२५	दरिद्रता
२६-२८	मुख	२६-२८	निरन्तर पीड़ा





श्लोक क्रमांक ४६-४७ में गृहारम्भ समय की लग्न व काल का निर्धारण किया गया है।

श्लोक क्रमांक ४८ से ६९ तक सूर्य आदि ७ ग्रहों का गृहारम्भ के समय विभिन्न भाव में होने का फल बताया है जो इस प्रकार है:-

२ भाव	१२ भाव
३ भाव	१ भाव
४था भाव	१०वाँ भाव
५ भाव	७ भाव
६ भाव	८ भाव
९ भाव	११ भाव

पूर्व

धन	१	व्यय
भ्राता	लग्न	लाभ
सुख		कर्म
पुत्र	भार्या	भाग्य
शत्रु		निधन

हानि	हानि
इच्छापूर्ति	वज्रपात
मित्रहानि	सुहृदय
संतानकष्ट	यशनाश
रोगनाश	शत्रुभय
धर्महानि	लाभ

सूर्य का विभिन्न भावों में फल

शत्रुनाश	हानि
सिद्धि	धनहानि
बुद्धिनाश	शोक
कलह	क्लेश
पुष्टता	हानि
धातुक्षय	लाभ

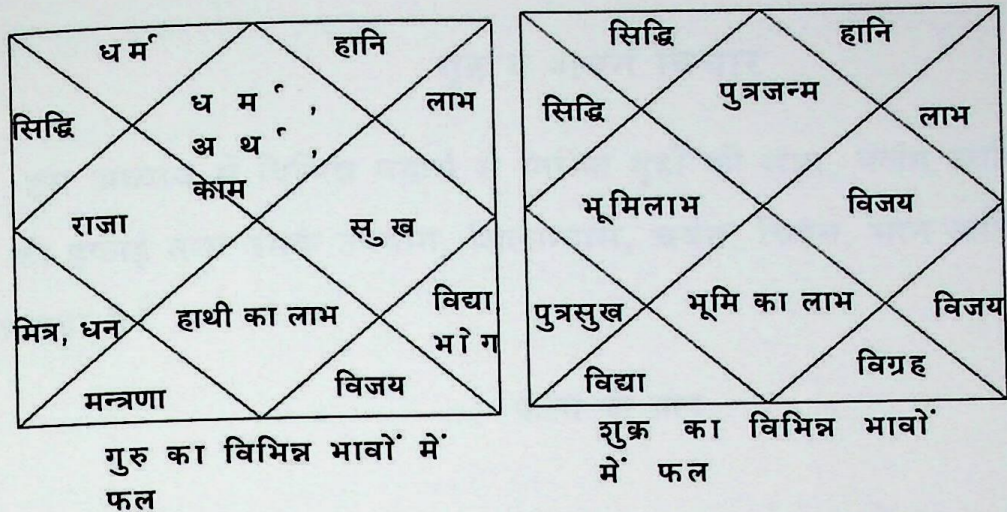
चन्द्र का विभिन्न भावों में फल

बन्धन	हानि
सिद्धि	मृत्यु
मतभेद	रत्नलाभ
बाधा	विपत्ति
प्राप्ति	रोगभय
धननाश	लाभ

मंगल का विभिन्न भावों में फल

सम्पत्ति	हानि
सिद्धि	कुशलता
धनलाभ	विजय, स्त्री, धन
रत्नलाभ	घोड़े का भोग
ज्ञान व धन	पतिष्ठा
लाभ	धन

बुध का विभिन्न भावों में फल



विश्लेषण

इस अध्याय में गृहारम्भ मुहूर्त की वर्णन है। इसमें नक्षत्र, वार, तिथि, लग्न आदि के आधार पर मुहूर्त का विचार किया है। चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो उसे सूर्य के नक्षत्र से गणना कर (वृषभ चक्र बनाकर) शुभाशुभ का विचार किया जाता है।

इसमें गृहारम्भ के समय की लग्न के आधार पर विचार किया जाता है। ग्रहों को २ श्रेणी में विभाजित कर सकते हैं- सौम्य व उग्र। सौम्यग्रह-गुरु, शुक्र व पूर्ण चन्द्र। उग्र ग्रह-मंगल, सूर्य व शनि। इस अध्याय में बताया है कि जिस समय गृहारम्भ करना हो उस समय की लग्न कुण्डली बनाएँ। केन्द्र स्थान (लग्न, चतुर्थ, सप्तम् व दशम स्थान) में शुभ ग्रह (सौम्य ग्रह) हो तो शुभ फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार तीसरे, छठवें व ग्यारहवें भाव में क्रूर ग्रह (उग्र ग्रह) हों तो शुभ फल प्राप्त होता है। सभी ग्रह ग्यारहवें भाव में शुभ फल प्रदान करते हैं। चौथे, आठवें व बारहवें भाव में चन्द्रमा अशुभ फल देता है, ऐसे समय गृहारम्भ न करें। इसी प्रकार सूर्य, गुरु, शुक्र छठवें, आठवें या बारहवें भाव में हों तब भी गृहारम्भ नहीं करना चाहिए।

४.४ अध्याय ४

गृह व शयन विचार

इस अध्याय में विभिन्न पदार्थ से निर्मित गृहों की संज्ञा, पलंग आदि का मान, माप की इकाई तथा उनके उपयोग, शिलान्यास, चयन, चिह्न, मान आदि का वर्णन किया गया है।

पलंग का मान

पलंग (की लम्बाई) = इक्यासी अंगुल (८१) या नब्बे (९०) अंगुल होना चाहिए।

पलंग की चौड़ाई, लम्बाई की आधी होना चाहिए।

पलंग की ऊँचाई, चौड़ाई की आधी होती है।

आसन का मान पलंग की चौड़ाई के अनुसार (अनुपात) में होता है।

आसन की चौड़ाई, पलंग की चौड़ाई से एक चौथाई कम होती है।

जूता, पैरों के अनुसार होना चाहिए।

राजा की बड़ा पलंग एक सौ अंगुल का होता है।

राजकुमार का पलंग नब्बे अंगुल का होता है।

मन्त्री पलंग उससे छः अंगुल कम होता है। उससे बारह अंगुल कम पलंग के ऊपर वलय होता है।

अठारह अंगुल कम पुरोहित की शय्या होती है।

उसके आधे में से आधे के आठ भाग कम करने से उसकी चौड़ाई होती है।

लम्बाई की एक तिहाई पलंग की ऊँचाई होती है।

सभी के लिए इक्यासी अंगुल का पलंग शुभ होता है।

१०

गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः
गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः

गणेशाय नमः (१०) गणेशाय नमः (१०) गणेशाय नमः (१०) गणेशाय नमः (१०)

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः (१०) गणेशाय नमः (१०) गणेशाय नमः (१०) गणेशाय नमः (१०)

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः गणेशाय नमः

सामन्त की शय्या नब्बे या इक्यासी अंगुल की होना चाहिए। अपने शरीर के अनुसार ही पलंग होना चाहिए, कम या अधिक नहीं होना चाहिए।

निर्मित पदार्थ के अनुसार घर के नाम

मन्दिर	पत्थर से बना हुआ घर
भवन	पक्की ईंट का बना घर
सुमन	कच्ची ईंट का बना घर
सुधार	कीचड़ या गारे के बने हुए घर
मानस्य	लकड़ी से बना घर
चन्दन	बेंत से बना घर
विजय	शिल्पि के द्वारा वस्त्रों से राजाओं के लिए बनाया गया घर
काल	आठवें प्रकार का घर घास से बना हुआ
कर	सोने से बना घर
श्रीभव	चाँदी से बना हुआ घर
सूर्यमन्त्र	ताम्बे से बने घर
चण्ड	लोहे से बने घर
अनिल	लाख से बने घर
प्रायुव	पानी से घिरे हुए घर

मुहूर्त

श्लोक क्रमांक २१-२२ में यह बताया है कि सोने का गृह बनवाते समय मास का दोष नहीं होता है।

चैत्र, सिंह (भाद्रपद), पौष महिने में घर को बनवाना शुरु न करें तथा घर में गृह-प्रवेश भी इन महिनों में न करें। शुभ मुहूर्त में ही प्रवेश करें। किसी बड़े उत्सव के दिन प्रवेश करें।

गृह मान इकाई

श्लोक क्रमांक २३-३७ तक मान, इकाई व उपयोग का वर्णन है।



पक्की ईंट के घर में शिला का प्रयोग करते हैं। लकड़ी में स्तम्भ का मान का प्रयोग करते हैं। सोने व लाख में गृह में किसी भी मान का प्रयोग कर सकते हैं।

खड़ाऊँ,जूते, मूर्ति, पीठ, लिङ्ग, स्तम्भ, झरोखा, शिला का मान, खड्ग, चमड़ा, शस्त्र आदि को अंगुल के अनुसार बनवाना चाहिए।

पुरुषों - विषम अंगुल

खाई, दरवाजे (बड़े), रास्ते, खम्बे (स्तम्भ), महल, घर के निकलने के रास्ते तथा इनकी सीमा का अन्तर (के बीच की दूरी), दिशा के बीच की दूरी, कपड़े, आयोधन का विभाग, रास्ते का नाप कोश, गव्यूत तथा योजन में होता है।

खुदाई, लकड़ी को चीरना, महल का आंगन व आयत, घर के लिए नौ यव के अंगुल से बने हस्त का प्रयोग करना चाहिए।

आयोधन, चर्म, चण्ड, आयुध, वापी (बावड़ी), कुआँ, हाथी तथा घोड़ों के घर (हाथी शाला, घुड़शाल), कोल्हू (गन्ने का रस निकालने का यन्त्र), जल यन्त्र, हल, यूप (यज्ञ का स्तम्भ), जुआ, झण्डा, नाव, शिल्पि के उपकरण, पादुका, वदशी, छत्र, धार्मिक बाग आ' यव के प्रमाण से बने अंगुल से बने हस्त के नापना चाहिए, न कि दण्ड से।

अन्य इकाई व उपयोग

२४ अंगुल = १ हस्त

४ हस्त = १ दण्ड

२००० दण्ड = १ कोश

४ कोश = १ योजन

देश में एक सौ घरों के स्थान को, निवर्तन को, सभी स्थान में इक्यासी पद के वास्तु का प्रयोग करते हैं।

श्लोक क्रमांक ४०- ४५ शंकु निर्माण विचार किया गया है।

श्लोक क्रमांक ४०-४४ में शंकु निर्माण विचार का विचार किया गया है।

...
...
...
...

...

...
...
...
...

...
...
...
...

...

...

...

...

...

...
...

...

...

स्निग्ध मिट्टी में जो वृक्ष, बरगद, बिल्व, खादिर, शमी, गूलर, देवदारु, दूध वाले, शुभ हैं।

शुभ वृक्ष के मध्य भाग का प्रयोग शंकु के लिए करते हैं।

श्लोक क्रमांक ४६ से ६२ शिला के मान, चिह्न तथा पूजन विधि का वर्णन है।

ईशान आदि दिशा के क्रम से शुक्ला, सुभगा, सुमंगली तथा भद्रंकरी शिला होती है। नन्दा आदि शिला में क्रम से वृष (बैल), घोड़ा, पुरुष व सर्प का चिह्न होना चाहिए।

शिला के बीच में कूर्म (कछुआ), शेषनाग, जनार्दन (विष्णु) तथा श्री ध्रुव का चिह्न होता है।

वर्ण	शिला का मान	चौड़ाई	मोटाई (अंगुल)
ब्राह्मण	२१	१०.५	५.२५
क्षत्रिय	१७	८.५	४.२५
वैश्य	१३	६.५	३.२५
शूद्र	९	४.५	२.२५

शिला मजबूत तथा शुभ लक्षणों से युक्त होना चाहिए। उसके पश्चात् शिला के शुद्धिकरण की विधि का वर्णन है। तीर्थों के जल से भरे हुए कलश से शिला का पूजन करना चाहिए।

उस कलश को जल, चावल, ग्रीही पञ्चगव्य, मधु, घी से पूरा भरें। शिलान्यास के समय सभी सामग्री को इकट्ठा करें।

समुद्र से उत्पन्न रत्न, सोना, चाँदी, सभी बीज, सभी गन्ध, शर, कुश, फूल, सफेद सरसों, पिघलाया हुआ घी, मधु, गोरोचन, मांस व शराब, अनेक प्रकार के फल, नैवेद्य के लिए पक्वान्न, आभूषण तथा ब्राह्मण के लिए सफेद वस्त्र, क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए पीला (सुनहरा) तथा शूद्र के लिए काले रंग का वस्त्र, वस्त्र व फूल इकट्ठा करें। वास्तुविद्या का जानकार व्यक्ति समाहित (एक ही स्थान पर लगा हो, एकाग्र) चित्त से कार्य करें (पूजन करें)।

शिलान्यास करने के उपरान्त दिशा ज्ञात करके ईशान दिशा के क्रम से खुदाई आरम्भ करना चाहिए, नाभि तक गहराई में खुदाई करके शिला की स्थापना करना चाहिए।

विश्लेषण:- इस अध्याय में बताया गया है कि १४ प्रकार के पदार्थ से गृह का निर्माण किया जा सकता है। जैसा आवश्यकता हो या जैसा प्रभाव उत्पन्न करना हो उसके अनुसार पदार्थ का चयन करना चाहिए। जैसे यदि कोई भवन अस्थाई रूप से बनाना हो, किसी कार्य विशेष जैसे विवाह आदि के लिए बनवाना हो तो वह हम कपड़े, लकड़ी आदि का बनवा सकते हैं। स्थाई भवन ईंट, पत्थर आदि का बनवाया जाता है। विशेष सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए भवन में चाँदी, सोना आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त राजा आदि व्यक्ति के लिए पलंग या शयन के मान का उल्लेख किया है। व्यक्ति के शरीर तथा पद (राजा आदि) के अनुपात व अनुसार उसके लिए शय्या का मान बताया गया है। वास्तुशास्त्र में सामान्य रूप से मान चौड़ाई के रूप व्यक्त किया जाता है। लम्बाई, ऊँचाई आदि का मान चौड़ाई के अनुपात में होता है।

इस अध्याय में अंगुल, हस्त, दण्ड आदि विभिन्न इकाइयों का वर्णन है। जैसा क्षेत्र हो उसके अनुसार इकाई का प्रयोग करना चाहिए। जब हम प्लाट या भूखण्ड के मान की गणना करते हैं तो हम अंगुल व हस्त का प्रयोग करते हैं। कक्ष या कमरे के लिए भी हम हस्त व अंगुल का प्रयोग करते हैं। एक ग्राम या नगर की दूरी या मान को दण्ड में नापते हैं। एक नगर से दूसरे नगर की दूरी क्रोश आदि में लेते हैं। इस प्रकार से हमने देखा कि छोटे माप में छोटी इकाई तथा बड़े माप में बड़ी इकाई का प्रयोग करते हैं।

पदविन्यास के संदर्भ में इस अध्याय में बताया है कि सभी स्थान में इक्यासी पद वास्तु का प्रयोग करना चाहिए। मंदिर, प्रासाद व मण्डप आदि में चौंसठ पद वास्तु का विन्यास करना चाहिए।

इसके पश्चात् शंकु निर्माण के लिए उपयुक्त वृक्ष का वर्णन है। जिसमें बताया है कि जिन वृक्षों की लकड़ी की प्रहार सहने की क्षमता अधिक हो, जो लकड़ी पर प्रहार करने पर फटती नहीं हो उन वृक्ष की लकड़ी का चयन शंकु हेतु करना चाहिए।

विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र के अन्तर्गत विष्णु देव के अनेक नामों का वर्णन है। इनमें से कुछ नामों का अर्थ है कि वह सब कुछ का सृष्टा है, सब कुछ का रक्षक है, सब कुछ का धारक है।

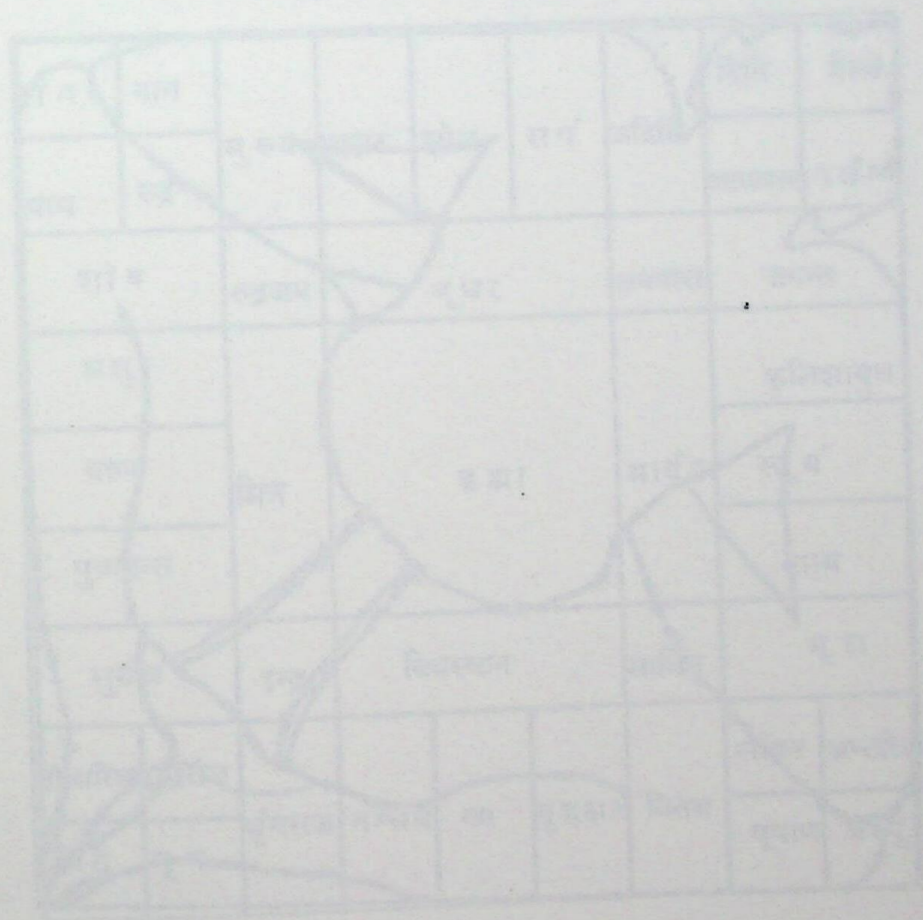
इस प्रकार विष्णु देव का अर्थ है कि वह सब कुछ का सृष्टा है, सब कुछ का रक्षक है, सब कुछ का धारक है। यह नामों के अर्थों से ही हमें विष्णु देव की महिमा का पता चलता है।

विष्णु देव का नाम है कि वह सब कुछ का सृष्टा है, सब कुछ का रक्षक है, सब कुछ का धारक है। यह नामों के अर्थों से ही हमें विष्णु देव की महिमा का पता चलता है।

इस प्रकार विष्णु देव का अर्थ है कि वह सब कुछ का सृष्टा है, सब कुछ का रक्षक है, सब कुछ का धारक है। यह नामों के अर्थों से ही हमें विष्णु देव की महिमा का पता चलता है।

वृक्ष को शुभ मुहूर्त में शकुन को ध्यान में रखते हुए काटना चाहिए तथा उसके पश्चात् उस लकड़ी को सुखाकर प्रयोग में लाना चाहिए।

शिलान्यास के संदर्भ में बताया है कि ईशान आदि कोण के क्रम से शिला की स्थापना करना चाहिए। जिस पदार्थ का उपयोग भवन निर्माण के लिए किया जाना है उसी पदार्थ की शिला बनवाना चाहिए। शिला शुभ लक्षण व चिह्नों से युक्त हो, मजबूत हो। उसमें किसी भी प्रकार का दोष नहीं होना चाहिए। उसमें दोष होने पर उसकी भारवहन क्षमता कम हो जाती है। शिला मनोरम होना चाहिए। उसके पश्चात् वर्णानुसार शिला का मान बताया है। उसके पश्चात् बताया है कि विभिन्न कलशों के जल से स्नान कराकर, पूजन कर स्थापित करना चाहिए।





४.५ अध्याय ५

शिलान्यास

श्लोक क्रमांक १ से ७ तक वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित देवताओं का वर्णन है। यह बताया है कि सिर ईशान कोण में है, मुख में आप, स्तन पर आर्यमा, छाती पर आपवत्स सूर्य आदि देवता दाहिने हाथ, यम आदि दाहिने पैर पर तथा इसी अन्य देवता शरीर के अन्य अंगों पर चित्रानुसार स्थित हैं।

श्री ग	नाग					दिति	हिखी
पाप	रुद्र	मुख्य	सोम	सर्प	अदिति	आपवत्स	पर्जन्य
शोष	रुद्रजय		भूधर		अपवत्स	जयन्त	
असु						कुलिशायुध	
वरुण	मित्र		ब्रह्मा		आर्यमा	सूर्य	
पुष्पदन्त						सत्य	
सुग्रीव	इन्द्र		विवस्वान		सावित्र	भृश	
वैशारिवा	द्रुपद					ससित्र	अन्तरिक्ष
भृंगराज	गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वितथ		पूषाण	कायु
भृंग							

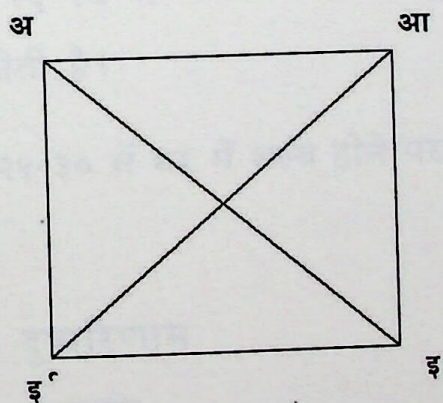
श्लोक क्रमांक ८ से १२ तक ६४ पद वास्तुविन्यास का वर्णन है जो इस प्रकार

है:-

नाग	मुख्य				अदिति	उदिति	ईश
रोग		भल्लाट	सोम	सर्प		अपवत्स	पर्जन्य
पाप	रुद्र						जयन्त
शोष		रुद्रजय	भूधर		अपवत्स		महेन्द्र
असुर							दिनायक
वरुण		मित्रक	ब्रह्मा		आर्यक		सत्य
पुष्पदन्त		इन्द्र	विवस्वान		सावित्र		भृश
सुग्रीव	इन्द्रराज					सवित्र	अन्तरिक्ष
दीवारिक		भृंगराज	गन्धर्व	यम	गृहक्षत		अग्नि
पितृ	मृग					वितथ	पूषाण

चित्र ५-श्लोक १०

श्लोक क्रमांक १३ से १६ तक प्लोट को गुनिया करने के लिए विधि है:-



श्लोक क्रमांक १७ से २३ तक में ८१ पद वास्तु की १०-१० पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण जाने वाली नाड़ियों (शिराओं) के नाम (संज्ञा) तथा ६४ पद वास्तु की ९-९ शिराओं का वर्णन है:-

८१ पद वास्तु की शिराएं इस प्रकार हैं:-

हिरण्या	सुवता	लक्ष्मी	विभूति	विमला	प्रिया	जया	काला	विशोका	इन्द्रा	
										शान्ता
										यशोवती
										कान्ता
										विशाला
										प्राणवाहिनी
										सती
										सुमना
										नन्दा
										सुभद्रा
										सुस्थिता

चित्र ५-
श्लोक २०

श्लोक क्रमांक २४, २५ में मर्म आदि का मान बताया है:-

मर्म = १/८ पद

वंश (अंगुल में) = पद (हस्त में)

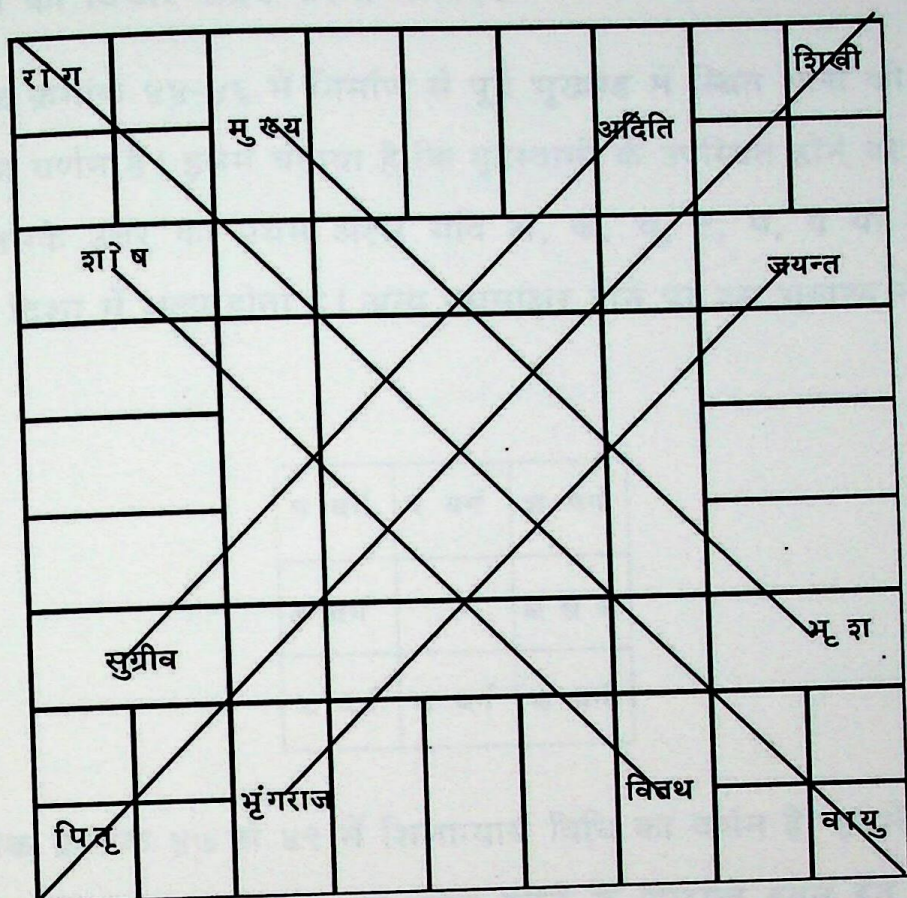
श्लोक क्रमांक २६-२७ में मर्म स्थान पर जूठे बर्तन, कील, स्तम्भ होने पर गृहस्वामी को पीड़ा होती है।

श्लोक क्रमांक २९-३० में घर में शल्य होने पर दुष्परिणाम का वर्णन किया गया है:-

शल्य	दुष्परिणाम
काष्ठ	धनहानि
हड्डी	पशुपीड़ा व रोगभय
लोहा	शस्त्रभय
कपाल	मृत्यु
बाल	मृत्यु
कोयला	चोरभय
राख	अग्निभय
भूसी	धनागम को रोकता है।



श्लोक क्रमांक ३१-३४ में वंश तथा वंश पर स्तम्भ, बीम न हो यह बताया है:-



इन स्थान पर स्तम्भ या तुला नहीं बनवाना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ३५ से ४३ तक भूखण्ड पर शिरा (नाड़ी) खींचने की विधि का वर्णन है, यह बताया है कि रेखाएँ सोने, चाँदी आदि धातु, मणि या फूल, दही, अक्षत या फल से खींचना चाहिए। अन्य पदार्थ से खींचने पर निम्न फल प्राप्त होता है:-

पदार्थ

परिणाम

शस्त्र

शस्त्रभय

लोहा

बन्धन

राख

अग्निभय

घास

राजभय

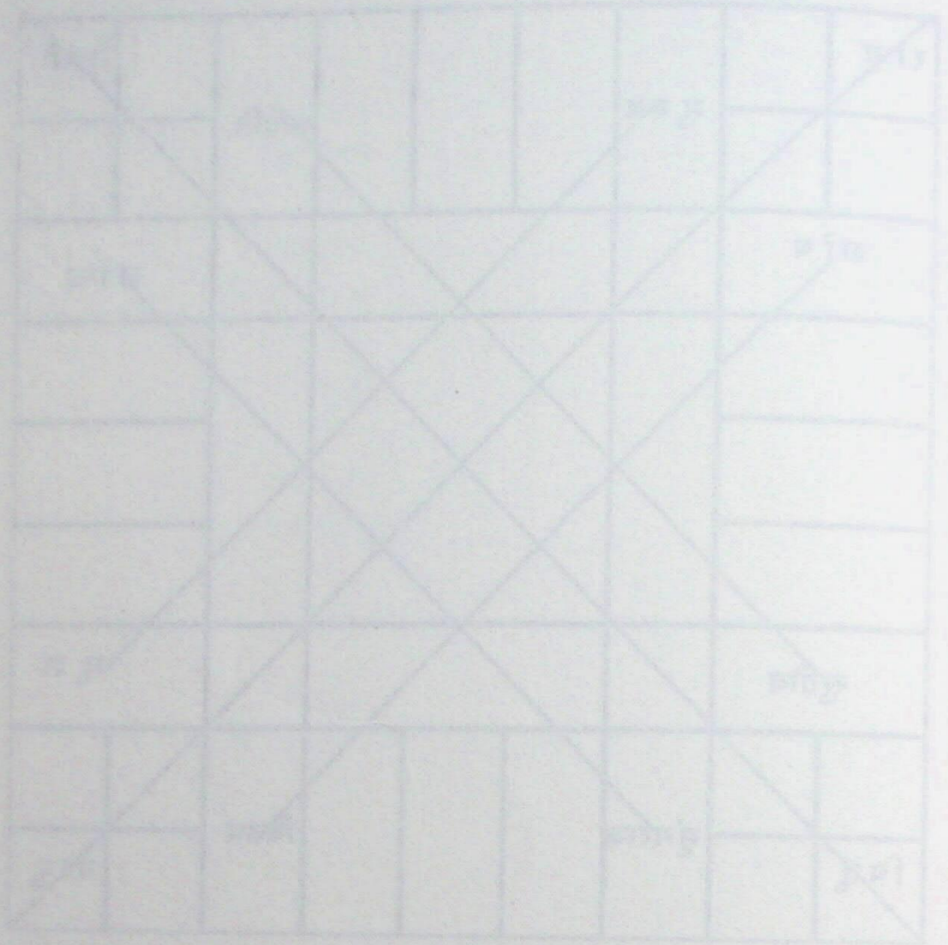
लकड़ी

राजभय

चमड़े, दाँत, कोयला, हड्डी

अशुभ

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥

रेखा सदैव बाएँ से दाहिनी ओर खींचना चाहिए।

शकुन का विचार सदैव करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ४४-४६ में निर्माण से पूर्व भूखण्ड में स्थित शल्य को ज्ञात करने की विधि का वर्णन है। इसमें बताया है कि गृहस्वामी के उपस्थित होने पर उससे कोई प्रश्न पूँछे उसके उत्तर का प्रथम अक्षर यदि अ, क, च, ट, प, य या श होने पर चित्रानुसार दिशा में शल्य होता है। अन्य प्रथमाक्षर होने पर उस भूखण्ड में शल्य नहीं होता है।

प वर्ग	य वर्ग	श वर्ग
त वर्ग		अ से अः
ट वर्ग	च वर्ग	क वर्ग

श्लोक क्रमांक ४७ से ४९ में शिलान्यास विधि का वर्णन है, इसमें बताया गया है कि गणेशजी, दिक्पाल आदि का पूजन करने के उपरान्त हवन हेतु तीन मेखला वाली योनि के आकार के कुण्ड को बनाना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ५० से ९८ तथा ११६ से १४६ तक वास्तुपुरुष में मंडल में स्थित ४५ देवता तथा मंडल से बाहर स्थित चरकी आदि राक्षसी तथा विभिन्न देवताओं हेतु मन्त्र, स्थान, रंग, पदसंख्या, बलि आदि का वर्णन है:-

वास्तुपुरुष मंडल-देवता व पद

देवता	पद	रंग	बलि
शिखी	१	लाल	घी व अन्न
पर्जन्य	१	पीला	कमल के साथ घी व अन्न
जयन्त	२	पीला	कमल के साथ घी व अन्न
कुलिशायुध	२	पीला	पांच रत्न तथा पुष्टि के पदार्थ
सूर्य	२	लाल	कुशा, धुएँ व लाल रंग, चंदोवा व मालपूआ
सत्य	२	सफेद	घी व गेहूँ
भृश	२	काला	मछली व अन्न



अन्तरिक्ष	१	काला	पूड़ी, पक्षी के मांस
वायु	१		सत्तु
पूषा	१	लाल	लाजा
वितथ	२	सफेद	चने व अन्न
गृहक्षत	२	पीला	शहद व अन्न
यम	२	काला	मांस
गन्धर्व	२	लाल	गन्ध व चावल
भृंगराज	२	कृष्ण	भेड़ की जीभ
मृग	१	पीला	नीलपद व जौ
पितृ	१	लाल	खिचड़ी
दौवारिक	१	लाल	खिचड़ी
सुग्रीव	२	सफेद	दन्तकाष्ठ, काला आटा, दन्तधावन पूड़ी व जौ
पुष्पदन्त	२	लाल	खीर
वरुण	२	सफेद	यम (?) को कुशा का स्तम्भ पीठी व सोने
असुर	२	पीला-लाल	मदिरा
शोष	२	काला	घी व ओदन (भात)
पाप	१	पीला	गोह (गोधा)
रोग	१	लाल	घी व भात
सर्प	१ (२)	लाल	फल-फूल व नागकेसर
मुख्य	२	लाल	घी, गेहूँ
भल्लाट	२	कृष्ण	मूँग व भात
सोम	२	सफेद	खीर व घी
सर्प	२	कृष्ण	पौष्टिक पदार्थ व शालि (चावल)
अदिति	२	पीले	रोटियों
दिति	१	पीले	पूरियों
आप		सफेद	खीर व घी
आर्यमा	३	काले	शक्कर के साथ खीर
सचिता	३	लाल	कुश व भात
विवस्वान	३	सफेद	लाल चन्दन व खीर

इन्द्र	१	लाल	घी सहित हरिताल व भात
जय (इन्द्रजय)		सफेद	लड्डू, मिर्च, घी व चन्दन
मित्र	३	सफेद	घी, भात, कच्चा मांस व शहद
रुद्र		लाल	खीर व गुड़
अर्यमा			गुड़ व मालपुआ
सवित्र			गुड़ व मालपुआ
राज्यक्षमा	१	लाल	मांस व कूष्मांस
पृथ्वीधर	३	लाल	मांस व कूष्मांस
ब्रह्मा	९	पीला-सफेद	पंचगव्यं, जौ, तिल, अक्षत व दही
आपवत्स		सफेद	
सावित्र		सफेद	

पदमंडल के बाहरी देवी (राक्षसी)

नाम	स्थान	वर्ण	बलि पदार्थ
चरकी	ईशान के बाहर	धूम्र	उड़द का भात तथा घी के साथ पद्मकेशर
विदारिका		लाल	वितान, माषभक्त, रक्त के साथ हल्दी
पूतना		हरित-पीले	माषभक्त रक्त, अस्थि व पीला रक्त
पापराक्षसी		काला	मछली के मांस, शराब व आसव
स्कन्ध	पूर्व	लाल-काला	रक्त व शराब
अर्यम्ण	दक्षिण	काला	मांस (उड़द)
जृम्भक	पश्चिम	लाल	मांस व रक्त
पिलिपिच्छक		पीला	रक्त
भीमरूप	ईशान कोण	लाल	कबूतर, शराब, वसा, रक्त, मांस
त्रिपुरारि	अग्नि कोण	काला	
अग्निजिह्व	नैऋत्य कोण	पीला	दूध व सेंधा नमक
कराला		लाल	पक्का मांस, रक्त व सेंधा नमक व दूध
हेतुक	पूर्व	काला	खीर व रक्त
अग्निवेताल	दक्षिण	काला	रक्त व मांस
काल	पश्चिम	मांस	व भात
एकपाद	उत्तर	पीले	खिचड़ी

गन्धमाल्य ईशान व पूर्व पीला
ज्वालास्य नैऋत्य व बुद्धि के मध्य श्वेत

पूजन

श्लोक क्रमांक ९९ से १०९ में पूजन व कलश के संबंध में वर्णन है:-

किला, मन्दिर तथा शल्योद्धार में विशेष रूप से चौंसठ पद वास्तु का पूजन करना चाहिए।

कलश में वरुण देवता की स्थापाना करें। उस कलश को तीर्थों के जल से भर दें तथा उसमें सभी बीज, सभी औषधि, सभी रत्न, सभी गन्ध, पांच प्रकार के पत्ते, पांच कषाय, मिट्टी तथा (या) शुद्ध पानी से भरें।

सर्वौषधि

मुरा, जटामोसी, वच, कूट(कूट), चन्दन, दोनों प्रकार की हल्दी, शूंठी (सोंठ), चम्पक, नागरमोथा इन्हें सर्वौषधि कहते हैं।

पंचपल्लव

पीपल, गूलर, पिलखन, आम, वट वृक्ष के पत्ते पंचपल्लव कहे गए हैं। ये सभी कार्यों में शुभ हैं।

पंचकषाय

तुलसी, सहदेवी, विष्णुक्रान्ता तथा शतावरी की जड़ को इनके न मिलने पर विशेष रूप से बरगद, गूलर, बैत, पीपल तथा मूल ये पंच की जड़ लें, यह पंचकषाय कहे गए हैं।

मिट्टी

घोड़े के स्थान की, हाथी के स्थान की, दीमक के स्थान की, दो नदी के संगम की, राजद्वार के प्रवेश की मिट्टी कलश में डाले।

जल

(इस प्रकार का आवाह करें)-सभी समुद्र, नदी, तालाब तथा जल देने वाले



नद, ये सभी यमजान के इस पाप को नाश करने वाले कलश में आओं।

(सभी देवताओं का पूजन) वेद के मन्त्रों से या प्रणव (ॐ) आदि से युक्त व्याहृति से करना चाहिए।

यज्ञकुण्ड व हवन समिधा

श्लोक क्रमांक १०९ से ११४ तक यज्ञकुण्ड व समिधा का वर्णन किया है:-

एक हस्त मान का तथा तीन मेखला (घेरे वाला) कुण्ड बनाकर, उसमें हवन करें। जौ, काले तिल, दूध वाले वृक्ष की लकड़ी, पलाश, खैर, अपामार्ग, गूलर की लकड़ी (समिधा) से हवन करना चाहिए अथवा शहद मिली हुई कुश, दुब से घी मिलाकर हवन करें या पांच बेल (बिल्व) या बेल के बीज से हवन करें।

हवन कर प्रार्थना करें। रात्रि में भोजन कर संयम से रहें।

बलिदान पश्चात् प्रार्थना

श्लोक क्रमांक १५२ से १६३ तक प्रार्थना की गई है:-

देवी, देवता, मुनीन्द्र, तीनों लोक के पति, दानव, सभी सिद्ध, यक्ष, राक्षस, नाग व पक्षीराज गरुड़, गुह्यक देवता, देव, डाकिनी, अप्सरा, हरि, समुद्र के पति, मातर, विघ्ननाथ, प्रेत, भूत, पिशाच, श्मशान व नगर के अधिपति (स्वामी), क्षेत्रपाल, गन्धर्व, सभी किन्नर, जटाधारी, पितृ, ग्रह, कूष्माण्ड, पूतना, रोग, ज्वर, वैतालिक, शिव, खून से युक्त, पिशुन, तथा अनेक प्रकार के मांस के भक्षक, लम्बक्रोड, दीर्घ, सफेद, लंगड़े (विकलांग), मोटे, एक आँख वाले, अनेक प्रकार के जिनके मुख पक्षी के समान हैं, जिनके मुख सांप के समान हैं, जिनके मुख ऊँट के समान हैं तथा जो मुख से हीन (बिना), जो छाती के बिना हैं। जो धमन के समान कान्ति वाले हैं, जो तमाल के समान कान्ति वाले हैं, जो हाथी के समान हैं, जिनकी आभा मेघ के समान है, जो बगले के समान हैं, जो आकाश के समान हैं, जो वज्र के समान आवाज करते हैं, जो बहुत तेज चलते हैं, मन के समान तेज चलने वाले, वायु के समान वेग वाले, अनेक मुख वाले, अनेक सिर वाले, जिनकी अनेक भुजाएं हैं, जिनके बहुत पैर हैं, जिनके बहुत नेत्र हैं, जो सभी आभूषणों से विभूषित हैं, जिनका विकट रूप है, जो मुकुट के धारण किए हैं, जो रत्नों को धारण करते हैं, जिनका तेज कोटियों सूर्य के

समान है, जिनका तेज बिजली के समान है, जिनका कपिल रंग हैं, जिनका रंग आग के समान है, जिनकी भूत सेवा करते हैं, ऐसे अनेक रूप वाले इस सम्पूर्ण बलि को ग्रहण करें, तृप्त होकर जाए, उनके प्रति हमारा नमस्कार है।

यजमान का अभिषेक

श्लोक क्रमांक १६१ से १८१ तक यजमान का अभिषेक करने की विधि का वर्णन है:-

उसके बाद आचार्य मन्त्र से कलश को अभिमन्त्रित करके स्वयं पश्चिम दिशा की ओर मुख करके बैठे तथा यजमान को पूर्व की ओर मुख करके बैठाए। उसके बाद अपनी वेद शाखा के कहे मन्त्र के अनुसार या आगम के मन्त्रों या पुराणों के मन्त्रों से वस्त्र व कुटुम्ब सहित यजमान को कलश के पानी(जल) से स्नान कराए। ऋत्विक् यजमान को स्त्री व पुत्र सहित स्नान करवाए।

सिद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, साध्य, मरुद् गण, सूर्य, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, अदिति, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, द्युति, श्री, सिनी वाली व कुहू, दिति, सुरसा, विनता, कद्रु, शुभ अप्सराओं के गण, नक्षत्र, मुहूर्त, अहोरात्र की संधि, संवत्सर, जिसके स्वामी कला, काष्ठ, क्षण व लव, मुनि स्त्रियों के साथ सातों ऋषि प्रसन्न मन से इन्द्र के अभिषेक के समान ही यजमान का अभिषेक करें)।

पृथ्वी का पूजन

श्लोक क्रमांक १८२ से १९१ तक पृथ्वी की पूजा तथा वास्तुदेवता से प्रार्थना का वर्णन किया है:-

वास्तुमण्डल में मध्य में ब्रह्मा के स्थान पर पृथ्वी का पूजन करें।

हे वास्तुपुरुष, हे भूमि शय्या में रत, हे प्रभो, आपको नमस्कार करता हूँ, मेरे घर में धन-धान्य आदि की सदैव समृद्धि करें।

श्लोक क्रमांक १९२-१९३ में भूमि पर बीज रोपण विधि का वर्णन है।



शिलान्यास

श्लोक क्रमांक १९५-१९६ में बताया है कि दिशा का साधनकर सोने की कुदाली से ईशान दिशा से आरम्भ कर खुदाई करना चाहिए। नाभि तक की गहराई तक खुदाई कर शिला की स्थापना करना चाहिए।

अपशकुन

श्लोक क्रमांक १९७ से २०२ तक अपशकुन का वर्णन किया है:-

यदि सूत्र टूट जाए तो मृत्यु, कील अधोमुख हो जाए तो रोग, कन्धे से गिर जाए तो सिर में रोग, हाथ से गिर जाए तो घर के मालिक का क्षय (हानि, मृत्यु) होती है।

गृहस्वामी, स्थपति (वास्तुविद्या का निपुण व्यक्ति) की याददास्त (स्मरण शक्ति) का लोप हो जाए (भूलना) तो मृत्यु होती है। यदि विसर्जन के पहले कलश टूट जाए तो कुल की कीर्ति का क्षय होता है।

सूत्र फैलाते समय यदि गधा आवाज करें तो उस स्थान पर शल्य (दोष, हड्डी आदि) जानना चाहिए। कुत्ता, श्रृगाल जिस स्थान से सूत्र को उलाघ जाए उस स्थान पर शल्य जानना चाहिए।

सूर्य से दीप्त दिशा में यदि कठोर शब्द हो तो सूत्र शरीर के जिस भाग से छू रहा हो उस भाग में शल्य जानना चाहिए।

शिलास्थापना के समय यदि हाथी शब्द (आवाज) करें तो वास्तुपुरुष की देह में (प्लाट में) शल्य जानना चाहिए।

सूत्र रखते समय कुबड़ा, ठिगना (नाटा), भिक्षु, वैद्य, रोगी का दिखना अशुभ होता है। लक्ष्मी को चाहने वाले (धनाभिलाषी) पुरुष इस अवसर का त्याग करें। २०२

शुभ शकुन

श्लोक क्रमांक २०३ से २०८ तक शुभ शकुन का वर्णन है:-

हुलहुल का शब्द, मेघों की गर्जना, सिंह के शब्द ये सभी धन देने वाले होते हैं। सूत्र फैलाते समय यदि जलती हुई आग दिखाई दें, घोड़े पर चढ़ा हुआ पुरुष दिखाई

दें तो निष्कण्टक (बगैर कोई बाधा के) राज्य होता है। शंख, तूर्य्य आदि वाद्य के शब्द होने पर घर वस्तुओं से भरा रहता है। युवा स्त्री व कन्या का खेलते हुए दिखना धन की वृद्धि करता है। ये शुभ शकुन घर आरंभ करते समय शुभ तथा घर छाबते (बनवाते हुए) मृत्यु व रोग को देते हैं। स्तम्भ रखते समय मध्यम फल देते हैं। स्तम्भ रखते समय मध्यम फल देते हैं। घर में (पूर्ण होने के बाद) प्रवेश करते समय बारिश होना शुभ है। लकड़ी का छेदन करते समय दुख, शोक व रोग को देती है, भूमि की परीक्षा करते समय भी ये सुखदाई नहीं होते हैं। छत्र, ध्वज, पताका का दर्शन सूत्र रखते समय होना, धन-प्राप्ति की संभावना को दर्शाता है। पूर्ण कलश का दिखना (भरे हुए घड़े का दिखना) प्राप्ति को दर्शाता है। कलकल आवाज सुनाई पड़ने पर स्थिरता होती है। २०८

शिलान्यास

श्लोक क्रमांक २०९ से २३८ तक शिलान्यास विधि का वर्णन है:-

ईशान आदि दिशा में प्रदक्षिण क्रम से एकाग्र चित्त हो शिला का विन्यास करें।

शिला	चिह्न
नन्दा	पद्म (कमल),
भद्रा	सिंहासन
जया	तोरण
रिक्ता	छत्र व कछुआ
पूर्णा	चारभुजा वाले विष्णु

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईशान व सदाशिव का आवाहन करें, इनमें पाँचों पुनः भूतों का आवाहन करें। शिला को पाँच कलशों के जल से स्नान कराए।

स्नान कराएँ

मन्त्र

अग्निर्मूर्द्धेति च मृदा
अश्वत्थ मन्त्र
गायत्री
गन्धद्वारा

जल से

पाँच कषाय व पत्ते के जल से

गोमूत्र

गोबर

10

आप्यायस्व	दूध
दधिक्राव्ण	दही
घृतवर्ती	घी
मधुवाता	शहद
पयः पृथिव्यां.	पंचगव्य
देवस्यत्वा.	कुशाओं
काण्डात् काण्डात्.	दूर्वा के जल
गन्धद्वारा	गन्ध व पंचगव्य
औषधीः	औषधी के जल
फलिनी.	फल के जल
नमस्ते	बैल के सींग की मिट्टी
धान्यमसि	धान्य आदि के जल से
आजिघ्नकलशम्	कलश के जल
ओषधय,	अक्षत के जल
यवोऽसि.	यव के जल
तिलोऽसि.	तिलों के जल
पंचनद्य.	नदी के जल
स्योनापृथिवी.	हल की मिट्टी तथा शहद मिली हुई मिट्टी
हिरण्यगर्भ.	सोने के जल
रूपेणव.	चांदी के जल से,
पदस्याय.	वस्त्र, तीर्थ के जल से स्नान कराए

उसके बाद शुद्ध जल से स्नान कराए। उसके बाद सफेद वस्त्र से मार्जन करके सभी अंगों पर गन्ध का लेपन कर वास्तुमण्डल के मध्य में ब्रह्मा आदि देवताओं का नाम लेकर मन्त्रों के साथ षोड़शोपचार पूजन करें। उनको सोना (स्वर्ण), वस्त्र व आभूषण देकर, पुण्याहवाचन करके शिला की स्थापना करें। सर्वोषधि, जल, पारा, घी, रत्न व शहद से युक्त कलश को रखें। श्रेष्ठ लग्न के समय पांच प्रकार के वाद्य यन्त्रों को बजाए। नन्दा नाम वाली शिला का ग्रहण कर (लेकर), आधार शिला की स्थापना करें।



श्लोक क्रमांक २३९-२४८ तक शिला की प्रार्थना की गई तथा उनके गुण बताएँ हैं:-

प्रार्थना - दिशाओं के गुण

शिला	कलश	गुण
नन्दा	पद्म	आनन्ददाई, कामना की पूर्ति, लक्ष्मी
भद्रा	महापद्म	लोक का भला, आयु, कामना व सुखदायक
जया	शंख	जय व भूमिदाई
भद्रा	विजय	रिक्त दोषनाशक, सिद्धि व भोगदेने वाली
पूर्णा	सर्वतोभद्र	आयु, कामना, धन व पुत्रदाई

दिशाओं में ईशान से प्रारम्भ कर सभी प्रकार की सफलता के लिए प्रदक्षिण क्रम से करें। कोई विद्वान कहते हैं कि आग्नेय आदि शिला की स्थापना आग्नेय दिशा से प्रारंभ करके करना चाहिए।

विसर्जन मन्त्र

श्लोक क्रमांक २५९ से २६५ तक विसर्जन की विधि का वर्णन है।

सभी देवगण इस पूजा को ग्रहण कर कामना की सिद्धि के लिए पुनः आना, इस प्रकार से जाए। इसके बाद यजमान पूर्व दिशा की ओर मुख करके आचार्य को निवेदन करें (सामाग्री दें)। उसके बाद आपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्रह्मा को दक्षिणा दे। उत्तर दिशा की ओर मुख किए हुए ब्रह्मा से बारम्बार क्षमा माँगे (किसी भी प्रकार की त्रुटि के लिए)। बछड़े के साथ गाय जो कि सोने व दो वस्त्रों से युक्त हो तथा यज्ञ के अन्त में धुले हुए वस्त्रों को आचार्य को निवेदित करें। उसके बाद ज्योतिषी, स्थपति तथा वैष्णव को दक्षिणा आदि देकर सन्तुष्ट करें। घी में अपना मुख देखें। उसके बाद रक्षा बन्धन मन्त्र पाठ व त्र्यापुष को करें याने स्रुवे से भस्म को लगाए। अपनी सामर्थ्य (शक्ति) के अनुसार ऋत्विज व शिष्ट को दक्षिणा दें। अपने धन के अनुसार गरीब, नेत्रहीन, व कृपण को भी कुछ दान दें। इस प्रकार करने पर मनुष्य लक्ष्मी, पुत्र व पौत्र से युक्त होता है।



विश्लेषण

इस अध्याय में सर्वप्रथम वास्तुपुरुष का वर्णन है। यह बताया है कि वास्तुपुरुष के शरीर के किस भाग पर कौन सा देवता स्थित है। जैसा कि हम जानते हैं कि देवता शब्द संस्कृत की दिव् धातु से बना है जिसका अर्थ प्रकाश या ऊर्जा होता है। प्रत्येक देवता एक विशेष प्रकार की ऊर्जा को अभिव्यक्त करता है। वास्तुपुरुष के शरीर पर ४५ देवता स्थित हैं, इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी भूखण्ड या प्लॉट पर ४५ विभिन्न प्रकार की ऊर्जा होती है या रहती है।

इस अध्याय में इक्यासी तथा चौंसठ पद वास्तुविन्यास का वर्णन किया है। किसी भी प्लॉट या भूखण्ड को जब हम दस आड़ी तथा दस खड़ी रेखा के माध्यम से ८१ भागों में विभाजित करते हैं तब प्रत्येक भाग पद कहलाता है, इसे परमशायिक पदविन्यास कहते हैं। ये रेखाएँ शिरा या नाड़ी कहलाती है। प्रत्येक शिरा या नाड़ी का जैसा नाम होता है, वैसा ही उसका गुण होता है। वास्तु के अनुसार नगर नियोजन करते समय यह ध्यान रखते हैं कि इन शिराओं पर कोई निर्माण न हो, इन शिराओं पर मार्ग बनाए जाते हैं। इन शिराओं के सन्धि-स्थल पर चौराहे बनाए जाते हैं।

भूखण्ड पर शिराओं का न्यास किया जाता है, इन्हें खींचा या बनाया जाता है। इन रेखाओं को सकारात्मक पदार्थ सोना, चाँदी आदि से बनवाना शुभ तथा नकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ हड्डी, कोयले आदि से बनवाना अशुभ होता है।

इक्यासी पद विन्यास का वर्णन करने के उपरान्त विभिन्न तिरछी रेखाओं का वर्णन है जो वंश कहलाते हैं। इन वंशों के संधिस्थल को मर्मस्थान कहते हैं, इन मर्मस्थानों पर कोई भी निर्माण या नकारात्मक ऊर्जा देने वाला पदार्थ नहीं होना चाहिए। इस अध्याय में विभिन्न नकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ के मर्म स्थान पर होने पर दुष्परिणाम का वर्णन किया है।

इसके पश्चात् इस अध्याय में वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित ४५ देवताओं का वर्णन किया है। उनके मन्त्र, उनका रंग, उनके हवन के लिए पदार्थ बताएँ हैं। चरकी आदि राक्षसी व अन्य देव जो वास्तुपुरुष के बाहर स्थित हैं, उनके भी मन्त्र आदि का वर्णन किया है।

देवताओं का उल्लेख करने के उपरान्त उनके पूजन के विधान में बताया है कि

विभिन्न कलशों को पंचगव्य, सर्वोषधि, सभी धान्य, सभी बीज, सभी रत्न, पत्ते, मिट्टी, सोना, चाँदी, पारा, जल आदि भर कर पूजन करना चाहिए।

उसके पश्चात् विभिन्न देवता आदि से प्रार्थना के साथ, यजमान के अभिषेक का वर्णन है। इस अभिषेक विधि से यजमान का कल्याण होता है, वह सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होता है।

उसके पश्चात् पृथ्वी के पूजन का वर्णन तथा वास्तुपुरुष से प्रार्थना की गई है। इस अध्याय में आगे शिलान्यास विधि का वर्णन है, जिसमें शिलाओं को विभिन्न कलशों के जल से स्नान कराकर, प्रार्थना कर स्थापित करना चाहिए।

शिला से प्रार्थना के समय सांकेतिक रूप से दिशाओं के गुण बताएँ हैं। जिस दिशा की जो शिला है, उस दिशा के जो गुण हैं, उनके संबंध में उस शिला से प्रार्थना की गई है। जैसे आग्नेय कोण के गुण धन आदि से संबंधित हैं, अतः आग्नेय कोण की शिला से आयु, कामना व लक्ष्मी हेतु प्रार्थना की गई है।

इस अध्याय के अन्त में समस्त पूजन की समाप्ति पर विसर्जन विधि का वर्णन किया है।

अध्याय ६

प्रासाद विधान

श्लोक क्रमांक १ व २ में देवता का मन्दिर बनवाना चाहिए तथा शुभ भूमि का चयन करना चाहिए यह बताया है। श्लोक क्रमांक ३ से १० तक में यह बताया है कि देवालय निर्माण का क्या महत्व होता है। यह भी बताया है कि मिट्टी से बने मन्दिर से १० गुणा अधिक फल पत्थर के मन्दिर का होता है, उससे १० गुणा अधिक फल धातु का, उससे १०० अधिक फल ताम्बे का, उससे हजार गुणा अधिक फल चाँदी, उससे हजार गुणा फल सोने के बने मन्दिर का होता है। रत्न से बने मन्दिर का फल अनन्त गुणा होता है।

श्लोक क्रमांक ११ में बताया है कि जो भूमि घर बनवाने के लिए श्रेष्ठ है वही मन्दिर निर्माण हेतु भी उपयुक्त होती है।

श्लोक क्रमांक १२ से ५६ तक शिलान्यास विधि का वर्णन है।

शिला की स्थापना इस प्रकार करना:-

दिशा	शिला
ईशान	नन्दा
आग्नेय	भद्रा
नैऋत्य	जया
वायव्य	रिक्ता

शिला मनोहर, चौकोर व एक हस्त प्रमाण की हो।

शिला की मोटाई = $\frac{1}{3}$ शिला की चौड़ाई होती है।

शिला पर शुभ चिह्न:- कुश, दूर्वा, ध्वज, छत्र, चंवर, कूर्म, हाथी, दर्पण, वज्र, स्वस्तिक, कमल, गाय व घोड़े के पैर का चिह्न।

शिला पर अशुभ चिह्न:- मांस भक्षी पक्षी, मृग के पैर के चिह्न हों, जो तिरछी, दीन, बड़ी या छोटी हो, क्षतिग्रस्त हो वह शुभ नहीं है।



ईट:-ईट के संदर्भ में कहा है कि ईट एक समान, बराबर पकी हुई, उचित प्रमाण व मनोरम होना चाहिए। अशुभ ईट के सन्दर्भ में कहा है कि काले रंग की, कंकर से युक्त, बहुत जीर्ण या भुरभुरी नहीं होना चाहिए।

आगे बताया है कि पत्थर के प्रासाद में पत्थर की शिला तथा ईट के प्रासाद में ईट की शिला स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार पीठ भी बनवाना चाहिए।

शिला स्थापन विधि के बारे में बताया है कि स्तम्भ के नीचे शिला की स्थापना की जाती है इस हेतु पहले चारों कोण में गड्ढा खोदकर वेदी बनवाना चाहिए। उसके ऊपर चाँवल बिछाकर आधार शिला की स्थापना करना चाहिए।

कलश के नाम:-

- पद्म
- महापद्म
- शंख
- मकर

ये कलश पंचपल्लव, सभी गन्ध, सभी औषधि, रत्न, अष्टधातु, तीर्थों के जल, गूलर के पत्ते आदि से युक्त रहते हैं। शिला को स्नान कराकर, गन्धादि से पूजन कर, मन्त्र की ध्वनि के साथ प्रणाम कर स्थापित करना चाहिए।

शिला से प्रार्थना

दिशा	शिला	प्रार्थना
आग्नेय	नन्दा	आनन्द को देनेवाली, मनुष्य को आयु, वांछित फल व लक्ष्मी देने वाली
नैऋत्य	भद्रा	लोकों का कल्याण कर, आयु, कामना, सिद्धि को देनेवाली,
वायव्य	जया	जय देने वाली, सब अर्थों की सिद्धि देने वाली
ईशान	पूर्णा	महाविद्यारूप, सभी कामनाओं को देनेवाली

इस प्रकार से दिशा के गुण शिला के माध्यम से बताएँ हैं।

श्लोक क्रमांक ५६ से ६१ में प्रासाद निर्माण का प्रथम लक्षण बताया है। यह बताया है कि क्षेत्र को १६ भागों में विभाजित करें। इसमें मध्य में चार भाग का गर्भ होता है।

...
...
...

...
...

...
...

...
...
...
...
...

...
...
...

...			
...
...
...
...
...
...

...
...
...

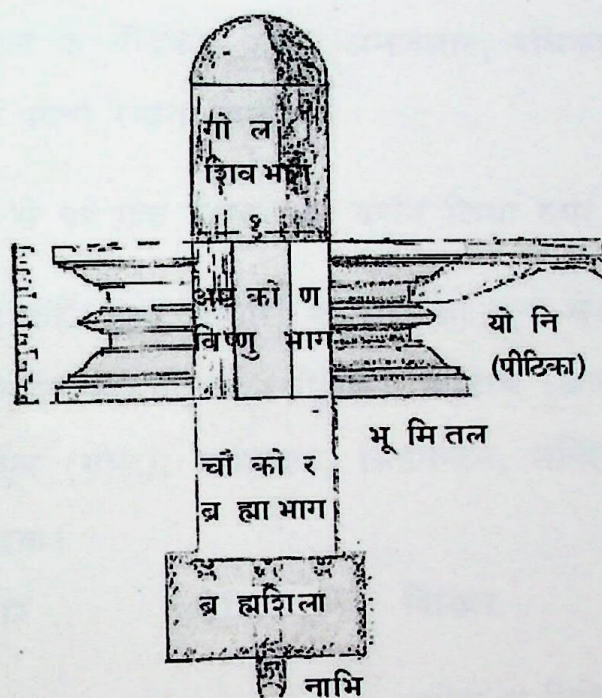
दीवार की ऊँचाई = चार भाग

शिखर की ऊँचाई = २ (दीवार की ऊँचाई)

प्रदक्षिणा = $\frac{1}{4}$ शिर

द्वार = $\frac{1}{5}$ गर्भ

श्लोक क्रमांक ६२ से ६८ तक प्रासाद निर्माण का दूसरा प्रकार बताया है:-



पीठिका = लिंग का पूजा भाग (शिव भाग)

दीवार = $\frac{1}{2}$ पीठिका

शिखर की ऊँचाई = २ (दीवार की ऊँचाई)

प्रदक्षिणा = $\frac{1}{8}$ शिखर की ऊँचाई

मुख मण्डप = $\frac{1}{2}$ भाग

शुकनासिका = १.५ मंजरी

वेदीबन्ध = $\frac{1}{2}$ भाग



श्लोक क्रमांक ६९ से ८० तक प्रासाद निर्माण का तीसरा प्रकार बताया है:-

गर्भ के नौ भाग करें बीच में लिंग की पीठिका बनवाएं। आसपास आठ स्तम्भ बनवाएँ।

दीवार = ५ पाद

शिखर की ऊँचाई = २ (दीवार की ऊँचाई)

शुकनासिका = १/४ या १/२ शिखर की ऊँचाई

उसमें यथोचित मान के वेदिका, कण्ठ, अमलसार, रथिका, नेमि आदि भी बनवाना चाहिए। हार में स्वर्ण रखना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ८१ से ९९ तक शिखर का वर्णन किया गया है:-

ये शिखर सामान्य कहे। अब शिखरों के नाम को सुनो-मेरु, मन्दर, कैलाश, कुम्भ, सिंह, मृग, विमानछन्दक, चतुरस्र (चौकोर), अष्टास्र (आठकोना), षोडशास्र (सोलह कोनेवाला), वर्तुल (गोल), सर्वभद्रक, सिंहनन्दन, नन्दिवर्द्धन, सिंह, वृष, सुवर्ण, पद्मक और समुद्रक।

नाम	श्रृंग	हस्त	द्वार	मंजिल	शिखर
मेरु	१००	५०	४	१६	अनेक व विचित्र
मन्दर		४५		१२	
कैलास		४०		९	
विमानछन्दक	३४			८	अनेक
नन्दिवर्द्धन	३२			७	
नन्दन			३०	६	१६ अण्डक
सर्वतोभद्र			३०	५	अनेक शिखर, चन्द्रशाला
वलभीछन्दक			१६		तोते के समान नाक, वृष की ऊँचाई, चित्र वर्जित
सिंह			१०		सिंह के समान
गज			१६		गज के समान
कुम्भ				९	कुम्भ के समान

षोडशाश्र			५ अण्डक
समुद्रक		२	दोनों ओर चन्द्रशाला
पद्मक		२	
षोडशाश्र			विचित्र शिखर, चन्द्रशाला
मृगराज		६	
गज	१६		अनेक चन्द्रशालाएँ
गरुड़	८	७	तीन चन्द्रशाला, ८६ हस्त
गरुड़		१०	
पद्मक		२	सोलहकोण
श्रीतुष्टक			पद्मक के समान
वृष		३	४ हस्त का गर्भ, ५ अण्डक

ये सभी चन्द्रशालाओं से विभूषित व प्राग्ग्रीव से युक्त होते हैं। ईंट या लकड़ी वा पत्थर के होते हैं। तोरण सहित होते हैं।

हस्त प्रमाण

यक्ष, राक्षस, नाग इसका आठ हस्त का मंदिर श्रेष्ठ होता है।

पीठ लक्षण

श्लोक क्रमांक १०७ से ११३ तक पीठ के लक्षण बताएँ हैं:-

लिंग की चौड़ाई से तीन गुना पीठ का विस्तार होता है। लिंग के विष्णु भाग में पीठ का भाग होता है। पीठ की ऊँचाई के सोलह भाग में से एक भाग भूमि में रहता है। पीठ में विभिन्न भाग का निर्माण कर जल निकलने के लिए प्रणाली बनवाएँ।

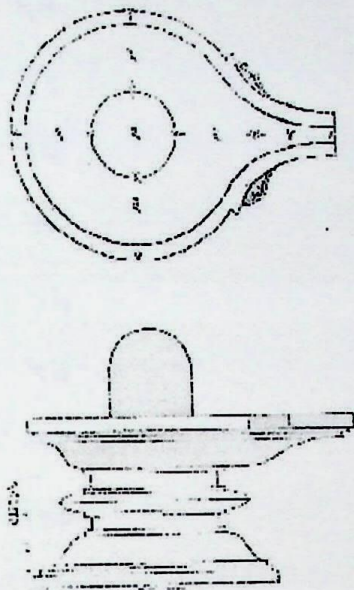
लिंग प्रवेश विधि

श्लोक क्रमांक ११३ से ११७ तक लिंग प्रवेश विधि का वर्णन है। पीठिका में अनुपात से लिंग का प्रवेश होता है। दो भाग हो तो एक भाग का लिंग में प्रवेश के लिए रखें।



[The text on this page is extremely faint and illegible, appearing as light grey smudges and ghosting of characters.]

इसी प्रकार बाण आदि लिंग का प्रवेश शिवजी ने कहा है। शिर स्थूल हो, मूल कृश हो।



ब्रह्म शिला व कूर्मशिला

श्लोक क्रमांक ११८ से १२२ तक ब्रह्मशिला व कूर्मशिला का वर्णन किया है:-ब्रह्म शिला तीन प्रकार की होती हैं-ज्येष्ठ, मध्य, कनिष्ठा। उसे तीन गुने विस्तार या अन्य प्रकार से बनवावें।

ब्रह्मसूत्र में कूर्मशिला की स्थापन करें। कूर्मशिला के गर्भ में बारह मुख वाला सोने के कूर्म (कछुआ) की स्थापन करें। वहाँ रत्न आदि सहित भूमि के हृदय के ऊपर स्थापन करें। उसके गर्भ को वज्र लेप से छिद्र रहित करें। लीपकर, शांति पाठ के जल से छिड़के और ऊँचे नीचे को एक रस (समान) कर दें।

मंडप (श्लोक १२३-१३७)

मण्डप	स्तम्भ संख्या
पुष्पक	६४
पुष्पभद्र	६२
सुवृत्त (सुप्रभ)	६०
अमृतनंदन (मृगनंदन)	५८
कौशल्य	५६
बुद्धिसंकीर्ण	५४
गजभद्र (राजभद्र)	५२
जयावह (द्वयावह)	५०
श्री वृक्ष (श्रीवत्स)	४८
विजय	४६
वास्तुक (?वास्तुकोण)	४४
अर्णश्रुतंधर (श्रुतिर्जय, श्रीधर)	४२
जय(यज्ञ)भद्र	४०
विलास (विशालक्ष)	३८
सुशिशिलष्ट (सुश्रेष्ठ)	३६
शत्रुमर्दन	३४
भाग्यपंच (भूजय)	३२
नंदन	३०
मानव (विमान)	२८
मानभद्र (भद्रक)	२६
सुग्रीव	२४
हर्षण	२२
कर्णिकार	२०
पदाधिक (पराधिक)	१८
सिंह	१६
श्याम(याम)भद्र (सिंहभद्र)	१४
शत्रुघ्न (समसूत्र)	१२

संस्कृत-संज्ञा-सूची

संज्ञा-सूची

पृष्ठसंख्या

११

संज्ञा

१२

संज्ञा

१३

(संज्ञा) संज्ञा

१४

(संज्ञा) संज्ञा

१५

संज्ञा

१६

संज्ञा

१७

(संज्ञा) संज्ञा

१८

(संज्ञा) संज्ञा

१९

(संज्ञा) संज्ञा

२०

संज्ञा

२१

(संज्ञा) संज्ञा

२२

(संज्ञा) संज्ञा

२३

संज्ञा

२४

(संज्ञा) संज्ञा

२५

(संज्ञा) संज्ञा

२६

संज्ञा

२७

(संज्ञा) संज्ञा

२८

संज्ञा

२९

(संज्ञा) संज्ञा

३०

(संज्ञा) संज्ञा

३१

संज्ञा

३२

संज्ञा

३३

संज्ञा

३४

(संज्ञा) संज्ञा

३५

संज्ञा

३६

(संज्ञा) संज्ञा

३७

(संज्ञा) संज्ञा

विश्लेषण

प्रासाद विधान नामक इस अध्याय में सर्वप्रथम यह बताया है कि जिस प्रकार गृहादि निर्माण से पूर्व भूमि चयन किया जाता है, उसी प्रकार मंदिर निर्माण से पूर्व भी भूमि चयन अवश्य करना चाहिए। उसके पश्चात् मिट्टी आदि से कौन-कौन से पदार्थ मंदिर निर्माण व प्रतिमा निर्माण हेतु श्रेष्ठ हैं, उन्हें बताया है। यह बताया है कि रत्न आदि से निर्मित प्रतिमा का फल अनन्त गुणा होता है। उसके पश्चात् शिलान्यास विधि का वर्णन है। यह बताया है कि शिला निर्दोष व मनोरम होना चाहिए। शुभ चिह्नों से युक्त शिला शुभ मानी गई है। यदि नींव में ईंट का प्रयोग करना हो तो वह भी निर्दोष व पकी हुई होना चाहिए। जिस पदार्थ का मंदिर बनवाना हो, नींव में भी उसी पदार्थ का प्रयोग करना चाहिए। सबसे पहले आधार शिला की स्थापना करना चाहिए। नन्दा आदि शिला की स्थापना पद्म आदि कलश के ऊपर करना चाहिए। शिला को स्थापना से पूर्व कलश के जल स्नान कराना चाहिए। वे कलश पंचपल्लव, गन्ध, औषधि, रत्न, अष्टधातु आदि से युक्त हों। शिला का सिर पूर्व या उत्तर दिशा में रखना चाहिए।

शिला पर भवन का सारा भार स्थानान्तरित होता है, अतः शिला मजबूत होना चाहिए। प्रत्येक तल का स्तम्भ का आधार शिला ही होती है। अतः शिला पर शुभ चिह्न बनाए जाते हैं। शिला के नीचे सकारात्मक पदार्थ रखे जाते हैं, जिससे वह ऊर्जा विभिन्न तल पर स्तम्भ के माध्यम से हस्तान्तरित (ट्रांसफर) हो, फैले। इसीलिए शिला चयन सावधानी पूर्वक करना चाहिए। शिला का मान भवन की चौड़ाई तथा मंजिलों की संख्या के आधार पर निर्धारित किया जाता है। शिलाओं से प्रार्थना के द्वारा हमें उस दिशा के गुण भी ज्ञात होते हैं।

इसके पश्चात् प्रासाद निर्माण के लक्षण का वर्णन किया है। इसमें बताया गया है कि सारा निर्माण एक अनुपात में होता है। जैसे मानव का शरीर एक अनुपात में होता है। हाथ, पैर, काया (धड़), सिर आदि एक निश्चित अनुपात में रहते हैं, उसी प्रकार गर्भगृह, अन्तराल मंडप, मुख्य मंडप, मुख मंडप व परिक्रमा एक निश्चित अनुपात में होते हैं। आर्किटेक्चर की दृष्टि से जब हम देखते हैं तो कहते हैं कि जो इलेवेशन (दर्शन) है के विभिन्न अवयव दीवार, शिखर के विभिन्न अंग मंजरी, कपोतालिका, शुकनासिका, वेदिका, शिखा एक निश्चित अनुपात में होते हैं। इस अध्याय में इन अनुपात का वर्णन किया है।

इस अध्याय में नागर शैली के अनुसार बनाए जाने वाले मेरु आदि (१८) विभिन्न शिखरों का वर्णन किया है। इनमें शिखरों की संख्या, ऊँचाई, मंजिलों की संख्या व आकृति का भी उल्लेख किया है। इसमें स्तम्भों की संख्या के आधार पर पुष्पक आदि २७ प्रकार के मंडपों का वर्णन है।

शिवलिंग व पीठ के निर्माण की विधि का वर्णन भी इस अध्याय में किया गया है। लिंग को विधि पूर्वक बनवाकर, पीठ में रखकर, भलीप्रकार से छिद्ररहित करना चाहिए। कूर्मशिला के नीचे सोने का कछुआ रखना चाहिए। विधिपूर्वक स्थापना कर प्राणप्रतिष्ठा करना चाहिए।

द्वार विधान

द्वारके पर्याप्त (अथ) से अधिकता में होने से द्वार द्वार के स्थानों को सुन्दर और के विन्यास के समस्त भाग को अर्थ है।

द्वार द्वार प्रकार प्रकार प्रकार प्रकार प्रकार

पहला प्रकार भाद्रपद अर्धरात्रि भाग के अनुसार पूर्व प्राग् दिशि द्वार बनवाना शुभ होता है-

दिश	द्वार की दिशा
भाद्रपद, अर्धरात्रि, कार्तिक	पूर्व
मार्गशीर्ष, वीस, माघ	पश्चिम
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख	उत्तर
ज्येष्ठ, आश्विन, भाद्रपद	दक्षिण

द्वार पश्चिम-पूर्व प्रकार प्रकार प्रकार

जब्या आदि तीन तीन राशियों पर शुभ स्थित होने के समय पूर्व प्राग् दिशि द्वार द्वार की न बनवाना-

शुभ राशि	दिश	अशुभ दिशा
मीन, मेष, वृषभ	पूर्व	पश्चिम
मिथुन, कर्क, सिंह	पश्चिम	उत्तर
कन्या, तुला, वृश्चिक	उत्तर	पूर्व
धनु, मकर, कुम्भ	दक्षिण	पश्चिम

द्वार पश्चिम-पूर्व प्रकार प्रकार प्रकार

शुभ राशि	द्वार दिशा
कर्क और कुम्भ	पूर्व और पश्चिम
मेष और वृश्चिक	उत्तर और दक्षिण

४.७ अध्याय-७

द्वार निर्माण

इसके पश्चात् (अब) हे ब्राह्मणों में इन्द्र। उत्तम द्वार के लक्षणों को सुनो द्वार के विन्यास के पन्द्रह पक्ष कहे गए हैं।१

द्वार पक्ष पहला प्रकार-गृह-द्वार विचार-मासानुसार

पहला प्रकार भाद्रपद आदि मास के अनुसार पूर्व आदि दिशा का द्वार बनवाना शुभ होता है:-

मास	द्वार की दिशा
भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक	पूर्व
मार्गशीर्ष, पौष, माघ	दक्षिण
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख	पश्चिम
ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण	उत्तर

द्वार पक्ष-दूसरा प्रकार-देवालय द्वार

कन्या आदि तीन तीन राशियों पर सूर्य स्थित होने के समय पूर्व आदि दिशाओं में द्वार को न बनवाएं:-

सूर्य राशि	दिशा	निषिद्ध दिशा
मीन, मेष, वृषभ	पूर्व	पश्चिम
मिथुन, कर्क, सिंह	दक्षिण	उत्तर
कन्या, तुला, वृश्चिक	पश्चिम	पूर्व
धनु, मकर, कुम्भ,	उत्तर	दक्षिण

द्वार पक्ष-तीसरा प्रकार-जलाशय का द्वार विचार

सूर्य राशि	द्वार दिशा
कर्क और कुम्भ	पूर्व और पश्चिम
मेघ और वृश्चिक	उत्तर और दक्षिण

द्वार पक्ष चौथा प्रकार-वेदी व गृह द्वार विचार

सूर्य राशि	द्वार बनवाएं	द्वार न बनवाएं
सिंह	पश्चिम	
तुला		उत्तर
कर्क	पूर्व	पश्चिम

पाँचवाँ प्रकार-तिथि अनुसार द्वार विचार

श्लोक क्रमांक ११ में तिथि के अनुसार द्वार का विचार किया गया है:-

तिथि	द्वार न बनवाएं
पूर्णिमा से अष्टमी	पूर्व
नवमी से चतुर्दशी	उत्तर

द्वार पक्ष-छटवाँ प्रकार-वर्णानुसार द्वार

श्लोक क्रमांक १२ में वर्णानुसार द्वार का वर्णन है:-ब्राह्मणों के घर का द्वार पश्चिम मुख का, क्षत्रियों के उत्तर मुख का, वैश्यों के पूर्व मुख का, शूद्रों के लिए दक्षिण मुख का द्वार शुभ होता है।

द्वार पक्ष सातवाँ-राशि के वर्णानुसार

श्लोक क्रमांक १३-१५ में राशि के अनुसार द्वार का निर्धारण किया गया है:-

राशि	वर्ण	द्वार
कर्क, वृश्चिक, मीन (४, ८, १२)	ब्राह्मण	पूर्व
मेष, सिंह, धनु (१, ५, ९)	क्षत्रिय	दक्षिण
वृष, मृग (मकर), कन्या (२, १०, ६)	वैश्य	पश्चिम
मिथुन, तुला, कुम्भ (३, ७, ११)	शूद्र	उत्तर

मुहूर्त-द्वार पक्ष-आठवाँ प्रकार-राशि-अनुसार

चन्द्र राशि	द्वार दिशा
धनु, मेष, सिंह	पूर्व
मकर, कन्या, वृष	दक्षिण

तुला, मिथुन, कुम्भ का चन्द्रमा हो तो पश्चिम मुख के द्वार बनवाएं। कर्क, वृश्चिक, मीन राशि का चन्द्रमा हो तो उत्तर दिशा में द्वार बनवाएं।

द्वार पक्ष-नवाँ प्रकार-नक्षत्रानुसार

श्लोक क्रमांक १७ से १९ में नक्षत्रानुसार द्वार का विचार किया गया है:-

पूर्व

कृ तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य
भरणधाराश्लेषा					मघा
अश्विनी					पूर्.फाल्गुनी
रे वती					उ.फाल्गुनी
उ.भाद्रपद					हस्त
पूर्.भाद्रपद					चित्रा
शतभिषा					स्वाती
धनिष्ठा					विशाखा
अभिजित	श्रवण	उ.षाढ़ा	पूर्.षाढ़ा	मूल	ज्येष्ठा
					अनुराधा

सामने के नक्षत्र में चन्द्रमा हो तब द्वार बनवाएँ।

द्वार पक्ष-दसवाँ प्रकार

हे द्विजो। पूर्व आदि दिशाओं में सव्य (वाम) मार्ग से वर्गों की स्थापन करें।

द्वार पक्ष-ग्यारहवाँ प्रकार

सूर्य राशि	दिशा में द्वार न बनवाएँ
सिंह	उत्तर व पश्चिम
मेष	पूर्व व दक्षिण

पीठ पर द्वार न करें और कोणों में तो विशेषकर न करें।

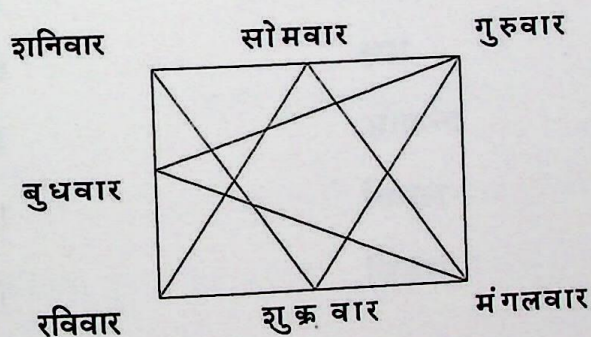
बारहवाँ पक्ष-राहू विचार-मासानुसार

श्लोक क्रमांक २१ से २२ में मासानुसार राहू का विचार किया गया है:-

मास	न बनवाएं (राहू वास)
मार्गशीर्ष, पौष, माघ	पूर्व
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख	दक्षिण
ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण	पश्चिम
भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक	उत्तर

तेरहवाँ प्रकार-राहू विचार-वारानुसार

श्लोक क्रमांक २३ में वार के अनुसार राहू का विचार किया गया है:-



दिशा में जब राहू हो उस दिन गृह (द्वार) व यात्रा वर्जित है (अशुभ है।)



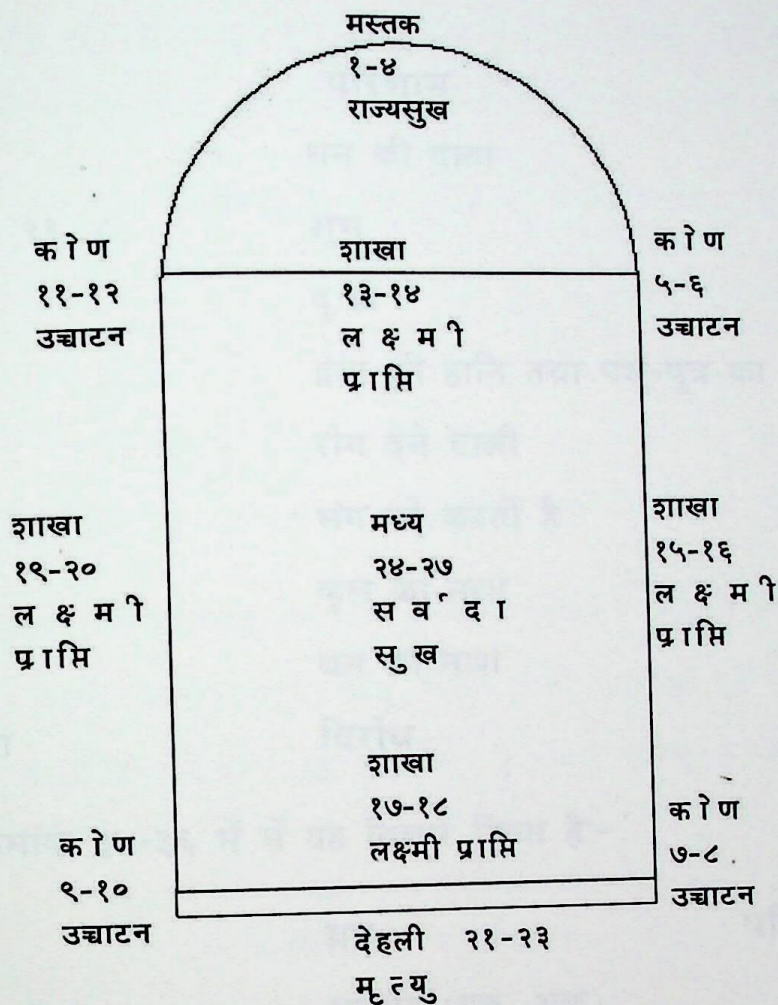
चौदहवाँ प्रकार-द्वार विचार-एक शाल गृह अनुसार

श्लोक क्रमांक २४ से २८ तक एकशाला भवन के द्वार का वर्णन किया है:-

संख्या	शाला-अलिन्द (दिशा)	नाम	परिणाम
	पूदपउ		
१	५५५५	ध्रुव	धन-धान्य
२	१५५५	धान्य	धान्यसुख
३	५१५५	जय	विजय
४	११५५	नन्द	स्त्रीहानि
५	५५१५	खर	सम्पत्तिनाश
६	१५१५	कान्त	पुत्रपौत्रदाता
७	५११५	मनोरम	लक्ष्मीदाता
८	१११५	सुमुख	भोग
९	५५५१	दुर्मुख	दुखदाता
१०	१५५१	उग्र	सभी दुख का दाता
११	५१५१	रिपुद	शत्रुभय
१२	११५१	धनद	धनदाता
१३	५५११	क्षय	सर्वस्वनाश
१४	१५११	आक्रन्द	शोक
१५	५१११	विपुल	प्रचुरता
१६	११११	विजय	विजयदाता

पन्द्रहवाँ प्रकार

श्लोक क्रमांक २९ से ३१ तक में सूर्य नक्षत्र से द्वार स्थापन को बताया है:-



नक्षत्रानुसार द्वार स्थापना

अश्विनी, तीनों उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद), विशाखा, श्रवण, मृगशिरा ये नक्षत्र शुभ हैं। स्वाती, रेवती, रोहिणी नक्षत्र, द्वार शाखा के स्थापन में शुभ होते हैं।

तिथि-विचार

श्लोक क्रमांक ३३ से ४६ तक ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मुहूर्त का विचार किया

है:-

तिथि	परिणाम
पंचमी	धन की दाता
७, १, ६, ११, ८	शुभ
१	दुःख
द्वितीया	द्रव्य की हानि तथा पशु-पुत्र का विनाश
तृतीया	रोग देने वाली
चतुर्थी	भंग को करती है
षष्ठी	कुल का नाश
दशमी	धन का नाश
अमावस्या	विरोध

श्लोक क्रमांक ३५-३६ में में ग्रह विचार किया है:-

भाव	ग्रह	परिणाम
१, ४, ७ व १०	शुभग्रह (गुरु, शुक्र)	शुभ
५, ९	शुभग्रह (गुरु, शुक्र)	शुभ
३, ६, ११	पापग्रह (सूर्य, मंगल, शनि)	शुभ
७, १०	शुभ ग्रह	शुभ

सामान्य नियम:-

सोमवार व कृत्तिका नक्षत्र हो तो द्वार स्थापन न करें।

वास्तुपुरुष, दिक्पाल और क्षेत्रनायक को प्रमाण करके, उसके पश्चात् द्वार शाखा की स्थापना, शुभ शकुन को देखकर स्थापित करें। दीवार छेदकर द्वार न बनवाएं।



दिशा	नक्षत्र
पूर्व	कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, विशाखा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त आर्द्रा
दक्षिण	अनुराधा, विशाखा, रेवती, मूल, भरणी, उत्तराषाढ़ा, अश्विनी, चित्रा
पश्चिम	मघा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, शतभिषा, अश्विनी, हस्त
उत्तर	स्वाती, आश्लेषा, अभिजित, मृगशिरा, धनिष्ठा, श्रवण, भरणी, रोहिणी

जिस दिशा का द्वार बनवाना हो, उस दिशा के नक्षत्र (में चन्द्रमा) हो तब द्वार बनवाएं।

कार्य	नक्षत्र
देहली	अधोमुख नक्षत्र
स्तम्भ व द्वार	तिर्यङ्मुख नक्षत्र

प्रासाद (मंदिर, राजमहल) तथा गृह के लिए हमेशा, पहला स्तम्भ आग्नेय कोण में स्थापित करें। स्तम्भ के ऊपर जब काग, गिद्ध, आदि पक्षियों को देखें और अशुभ शकुनों को देखें तो कर्ता को शुभ नहीं होता है। इसलिए स्तम्भ में रत्न आदि रखकर उसको ढक दें।

दिशासाधन (श्लोक ४७-५५)

प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य के समय दिक्साधन करें।

- १ कृत्तिका नक्षत्र के उगने की दिशा
- २ श्रवण नक्षत्र के उगने की दिशा
- ३ चित्रा और स्वाती के मध्य
- ४ श्रवण व पुष्य का मध्य

५ इसके अतिरिक्त शंकु की सहायता से दिशा ज्ञात करते हैं। १२ अंगुल का शंकु लेकर, समतल भूमि पर मध्य में शंकु को स्थापित करते हैं। दोपहर से पहले तथा दोपहर के बाद शंकु के शीर्ष की छाया को चिह्नित कर लेते हैं तथा उससे पूर्व-पश्चिम दिशा ज्ञात करते हैं।



[Faint, illegible text visible through the paper, likely bleed-through from the reverse side.]

द्वार परिणाम पदानुसार

श्लोक क्रमांक ५६ से ६७ तक पदानुसार द्वार का परिणाम बताया है:-

पद	परिणाम
अग्नि (शिखी)	अग्नि का भय
पर्जन्य	बहुत नारी
जयन्त	बहुत धन
माहेन्द्र	राजा की दया
सूर्य	अत्यन्त क्रोध
सत्य	अनृत (झूठापन)
भृश	अत्यन्त क्रूर स्वभाव
अंतरिक्ष	नित्य चोरों का समागम
वायु	पुत्र का नाश
पूषा	दासभाव
वितथ	नीचता
गृहक्षत	सन्तति (पुत्र-पौत्र की प्राप्ति)
यम	क्षुद्र कर्म करने वाला
गन्धर्व	कर्त्ता का नाश
भृंगराज	धनहीन
मृग	पुत्र का नाश
पितृ	अल्प आयु, अल्प धन
दौवारिक	बहुत भय
सुग्रीव	पुत्र का नाश
पुष्पदन्त	वृद्धि
वरुण	क्रोध और भोग
असुर	राजा का भंग (भय)
शोक	नित्य अति सूखापन
पाप	पाप का संचय
रोग	नित्य रोग और वध

नाग	शत्रु का बहुत भय
मुख्य	धन और पुत्रों की उत्पत्ति
भल्लाट	विपुल (बहुत) लक्ष्मी
सोम	धर्मशीलता
भुजंग	बहुत वैर (शत्रुता)
अदिति	सदैव कन्या दोष (?स्त्री दोष)
दिति	धन क्षय

श्लोक क्रमांक ६८ से ७१ तक में बताया है कि द्वार को भलीभाँति सजाना चाहिए तथा अनेक द्वार होने पर अन्य प्रकार से विचार किया जाता है।

द्वार-वेध

श्लोक क्रमांक ७२ से ८२ तक द्वार वेध का विचार किया गया है:-

मुख्य द्वार रथ्या, वृक्ष से विद्ध न हो।

सरल प्रवेश न हो।

वेध	परिणाम
रथ्या	नानाशोक
वृक्ष	युवा पुत्र का मरण व नाना प्रकार के रोग
मूल में जल स्राव	अनर्थ
मंदिर	बालकों को दुखदाई
मंदिर का द्वार	विनाश
स्तम्भ से वेध	स्त्री का नाश
पत्थर से वेध	स्त्री का नाश
देवस्थान के पास	स्वामी का क्षय
श्मशान की ओर मुख	राक्षसों का भय

श्लोक क्रमांक ८३ से ८९ तक द्वार का मान बताया है:-

सिरा के मध्य द्वार न बनवाएँ। चौंसठ पद वास्तु की कल्पना करके मध्य में द्वार बनवाएँ।

द्वार की ऊँचाई = द्वार की चौड़ाई

शाखा की मोटाई = $\frac{1}{8}$ (स्तम्भ की चौड़ाई)

द्वार की ऊँचाई के १० मान अंगुल में बताएँ है:-

११०, ११६, १००, ८०, १५०, १४०, १३०, २२०, १८०, १९०

द्वार के वेध को तो यत्न से सर्वथा छोड़ दें। घर की ऊँचाई से दोगुना भूमि को छोड़कर बाहरी भाग में दोष स्थित हो तो दोष नहीं लगता है।

इस प्रकार (वेध, द्वार से दोगुना दुरी होने पर) वेध को दोष गृह व गृहस्वामी को नहीं लगता है।

घर का आधा भाग गृहिणी होता है, वह गृह से पूर्व और उत्तर में शुभ होती है। या पश्चिमी होती है। अन्य प्रकार से बनाए घर, सिद्धि के दाता नहीं होते हैं। ९१

द्वार दोष

श्लोक क्रमांक ९२-९५ तक द्वार दोष का वर्णन है:-

मुख के द्वार का जिससे अवरोध (रोक) हो ऐसा पृष्ठ द्वार (पीछे का द्वार) को कदाचित न बनवाएँ।

द्वार दोष

द्वार के मुख का अवरोध

पृष्ठ के द्वार में

स्वयं उद्धाटित

प्रमाण से न्यून

प्रमाण से अधिक

द्वार आधा खण्डित

परिणाम

निश्चित ही कुल का नाश होता है।

सबका नाश (व उन्माद)

अनिष्ट फल

व्यसन

राजा का भय

दल का वेध

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

छिद्र वेध	क्षय
यन्त्र से विद्ध	धन का नाश
स्तम्भ में शब्द	वंश का नाश

त्रिकोण, शकट के समान, सूपड़े के समान, पंखे के समान, मुरजाकर, गोल तथा प्रमाण से हीन द्वार को छोड़ देना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ९६-९७ द्वार आकार व परिणाम बताया है:-

आकार	परिणाम
त्रिकोणकार	नारी को पीड़ा
शकटाकार	स्वामी को भय
सूप के समान	धन का नाश
धनुषाकार	कलह
मुरजाकार	धन का नाश
वर्तुल (गोल)	कन्याओं का जन्म

जो द्वार मध्य भाग से हीन होता है वह नाना शोकरूप फलों को देता है। स्तम्भ के अग्रभाग पर लकड़ी रखें, पत्थर कभी न रखें। ९८

राजा के मंदिर और देवता के घर में पत्थर के ही द्वार और शाखाओं को बनवाएं। राजाओं के घर में द्वार शाखा भी पत्थर से ही बनी हुई होती है। ९९

श्लोक क्रमांक १०० से १०३ तक यह बताया है कि घर का मध्य भाग ब्रह्म भाग होता है, इस स्थान पर कोई भी दीवार न बनवाएं, वहाँ शल्य, अशुद्ध पात्र, राख, कील आदि भी नहीं होना चाहिए।



श्लोक क्रमांक १०४-१०५ में द्वार किस दिशा में भ्रान्त है तो क्या परिणाम होता है यह बताया है:-

द्वारदोष	परिणाम
पीड़ित	पीड़ा
मध्य में पीड़ित	अभाव
बाहर की ओर उठा हुआ	प्रवास
दिग्भ्रान्त	दस्युभय
दोष भ्रान्त दिशा	परिणाम
पूर्व	चोर के भय
आग्नेय	दुर्भाग्य
दक्षिण	मरण
नैऋत्य	रोग
पश्चिम	दरिद्रता
वायव्य	कलह
उत्तर	विरोध
ईशान	धन का नाश।

श्लोक क्रमांक १०६ से ११० तक में वास्तु विन्यास का वर्णन किया गया है।

दिशा	विन्यास
पूर्व	फल वाले वृक्ष
दक्षिण	दूध वाले वृक्ष, तपोवन
पश्चिम	कमल से भूषित जल, लक्ष्मी, बलि
वायव्य	गृहों की पंक्ति
उत्तर	मातृकाओं का घर, यज्ञशाला, निर्माल्य, बलि
ईशान	जल, वापी और जलशायी विष्णु का स्थान

सामने वृष का स्थान तथा शेष कामदेव का स्थान कहा है। चारों ओर परिखा (खाई) और वलय (गोल घेरा) आदि बनवाना चाहिए।

श्लो क्रमांक १११ से ११३ तक यह बताया है कि-

जो व्यक्ति घण्टा, वितान, तोरण, चित्र से युक्त और ध्वजा से चिह्नित और नित्य उत्सव में प्रसन्न मन से युक्त देवता का मंदिर बनवाता है उसको लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती और वह स्वर्ग में पूजित रहता है। इस प्रकार द्वार पूजा की विधि के उपरान्त द्वार बलि व महाध्वजा की स्थापना करना बताया गया है।

विश्लेषण

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में द्वार निर्माण व स्थान को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। द्वार वह स्थान से जहाँ से वास्तु में ऊर्जा (टेलेरिक ऊर्जा) प्रवेश करती है। जो स्थान हमारे शरीर में नासिका का है, वास्तु में वही स्थान द्वार का है। जो वायु नासिका से प्रवेश करती है, वही वायु पूरे शरीर में घूमती है, वही वायु में रहने वाली प्राणवायु (ऑक्सीजन) प्रत्येक सेल (कोशिका) में जाकर बर्न होती है। यही शरीर का प्राण है। इसी प्रकार वास्तुशास्त्र में द्वार के स्थान, निर्माण, मुहूर्त, पदार्थ, वेध आदि को बहुत महत्व दिया है। द्वार चाहे नगर का हो या प्रासाद या मंदिर, जलाशय या वापी का, सभी के लिए स्थान, मुहूर्त, पदार्थ, दिशा, वेध आदि को महत्व दिया है।

द्वार-निर्माण नामक इस अध्याय में सर्वप्रथम द्वार-स्थापना हेतु मुहूर्त का विचार किया गया है। ये मुहूर्त उपयोग पर आधारित हैं। गृह-निर्माण हेतु मुहूर्त, मंदिर, जलाशय व वेदी से पृथक हैं। इस अध्याय में १५ प्रकार से द्वार-निर्धारण के मुहूर्त बताएँ हैं तथा उपयोग के अनुसार ये मुहूर्त पृथक-पृथक हैं।

इस अध्याय में शंकु की सहायता से दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन है। इस विधि में सूर्य की सहायता से दिशा ज्ञात करते हैं, अतः यह विधि पृथ्वी तथा उस स्थान पर स्थित चुम्बकीय प्रदार्थ (विद्युत, लोहा आदि) के चुम्बकीय क्षेत्र से अप्रभावित रहती है। इस विधि की यह विशेषता है कि इससे में शुद्ध पूर्व व उत्तर आदि दिशा ज्ञात करते हैं, जिसके आधार पर वास्तुपदविन्यास किया जाता है। (चुम्बकीय सूई से हम चुम्बकीय उत्तर दिशा ज्ञात करते हैं।)

इसके पश्चात् पद अनुसार द्वार का परिणाम बताया है। जैसा कि हम जानते हैं इक्यासी पदवास्तु में सबसे बाहर की वीथी पैशाच वीथी होती है, इसमें बत्तीस पद होते हैं। इन्हीं पदों में द्वार बनवाया जाता है। हम जानते हैं कि प्रत्येक पद की ऊर्जा,



उस पद के देवता के नाम से अभिव्यक्त की गई है। जिस पद से हम प्रवेश करेंगे, उस पद के अनुसार ऊर्जा निर्मित क्षेत्र में प्रवेश करती है। जैसे ईश या शिखी पद में प्रवेश करने पर अग्निभय बताया है, शिखी देवता अग्नि का द्योतक है, अतः उस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न होता है।

प्रत्येक दिशा में वास्तु के मध्य से बाहर जाते समय बाईं ओर के जो पद हैं, वे द्वार हेतु शुभ हैं। उत्तर दिशा में ये पद मुख्य, भल्लाट व सोम, पूर्व में जयन्त व महेन्द्र, दक्षिण में गृहक्षत तथा पश्चिम दिशा में पुष्पदन्त व वरुण में द्वार बनवाना शुभ होता है।

उसके पश्चात् द्वार वेध का विचार किया गया है। मुख्यद्वार के सामने उपस्थित रुकावट को द्वार-वेध कहा है। जिस प्रकार का द्वार वेध होता है, उसके अनुसार दुष्परिणाम होता है। किसी भी स्थिति में द्वार के सामने रुकावट नहीं होना चाहिए। यह रुकावट, शुभ ऊर्जा के प्रवेश को रोकती है, अतः अशुभ कहा है। साथ ही साथ मुख्य द्वार के सामने अत्यन्ज आदि का स्थान होने पर, सार्वजनिक स्थान मंदिर आदि होने पर भी दोषपूर्ण कहा गया है।

इसके पश्चात् द्वार के मान का वर्णन किया है। द्वार की ऊँचाई, द्वार की चौड़ाई या मंजिल की ऊँचाई के अनुपात में होती है। द्वारशाखा की मोटाई, द्वार की ऊँचाई के अनुपात में होती है। जितना ऊँचा द्वार होता है, उसकी शाखा उतनी ही मोटी होती है जिससे वह उतनी मजबूत हो (उसमें बेन्डींग आदि न हो)। द्वार में किसी भी प्रकार का दोष नहीं होना चाहिए, वह अन्दर या बाहर न झुका हो, टेढ़ा-मेढ़ा न हो, निर्दोष होना चाहिए। किसी प्रकार का दोष मुख्य द्वार में नहीं होना चाहिए। मुख्य द्वार की प्रतिदिन शुभ चिह्न आदि बनाकर पूजा करना चाहिए, जिससे गृह में शुभ ऊर्जा प्रवेश करें।

४.८ अध्याय-८

जलाशय विचार

श्लोक क्रमांक १ से ३ में जलाशय हेतु शुभ आकार बताएँ हैं:

उत्तम:- त्रिकोण, वर्गाकार, गोल

मध्यम:-धनुष, कलश, पद्म

अधम:-सर्प, उरग, ध्वजा

श्लोक क्रमांक ४ व ५ में मासानुसार जलाशय आरंभ फल कहा है:-

मास	फल
चैत्र	कोश
वैशाख	धान्य
ज्येष्ठ	भय
आषाढ़	शोकनाश
श्रावण	सुख
भाद्रपद	भय
आश्विन	रोग
कार्तिक	दुःख
मार्गशीर्ष	कीर्ति
पौष	द्रव्य
माघ	अग्नि का भय
फाल्गुन	यश

श्लोक क्रमांक ६ में जलाशय निर्माण के शुभ नक्षत्र रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुष्य, अनुराधा, शतभिषा, मघा, धनिष्ठा (तथा श्रवण) बताएँ हैं।

श्लोक क्रमांक ७ में सोम, बुध, गुरु व शुक्रवार शुभ हैं, यह बताया है।

श्लोक क्रमांक ८ में तिथियों का वर्णन है।

श्लोक क्रमांक ९ से १४ तक में लग्न आदि भाव में ग्रह स्थिति के आधार पर मुहूर्त का निर्धारण किया गया है:-

लग्न या चर राशि या सातवें भाव में चन्द्रमा हो, सोमवार को जलाशय का आरम्भ करना शुभ होता है।

क्रूर ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) तीसरे, छठवें व ग्यारहवें भाव में शुभ हैं।

सौम्य ग्रह (गुरु, शुक्र) केन्द्र व त्रिकोण में स्थित हों तो शुभ फल प्राप्त होता है।

श्लोक क्रमांक १५ से १७ तक दिशा के अनुसार जल का विचार किया गया है:-

दिशा	जलाशय होने का परिणाम
पूर्व	पुत्र की पीडा
आग्नेय	अग्नि का भय
दक्षिण	विनाश
नैऋत्य	स्त्रियों का कलह
पश्चिम	दुष्टता
वायव्य	धन का नाश
उत्तर	धन वृद्धि
ईशान	पुत्रों की विशेषकर वृद्धि

श्लोक क्रमांक १८ से २२ तक आय का विचार किया गया है:-

जलाशय में विषम आय लेना चाहिए।

श्लोक क्रमांक २३ से २६ तक पुनः लग्न आदि भाव में ग्रह विचार किया गया है:-

४, ८, १२ तथा केन्द्र भाव में चन्द्रमा या क्रूर ग्रह हों तो शुभ नहीं होता है।

श्लोक क्रमांक २७ से २९ शिलान्यास विधि का वर्णन है:-

ईशान आदि क्रम से पूजन कर शिला की स्थापना करना चाहिए।



श्लोक क्रमांक ३० से ३४ तक पुनः मुहूर्त का विचार किया गया है:-

उत्तरायण सूर्य, शुभ तिथि, वार, जलचर राशि में चन्द्रमा, ग्रह उच्च या स्वराशि में, केन्द्र, त्रिकोण में शुभ ग्रह हों तब जलाशय का निर्माण करना शुभ होता है।

विश्लेषण

जलाशय विचार नामक इस अध्याय जलाशय के स्थान, आकार, मुहूर्त तथा शिलान्यास का वर्णन किया है। जलाशय का निर्माण शुभ मुहूर्त में ही करना चाहिए, जब चन्द्रमा जलचर राशि में हो, शुभ ग्रह का वार हो, तब जलाशय बनवाना आरम्भ करना चाहिए। जलाशय नगर या ग्राम की पूर्व, ईशान या उत्तर दिशा में बनवाना शुभ होता है। जलाशय का आकार शुभ चौकोर, त्रिकोण आदि रखना चाहिए। जिस आकार का जलाशय बनवाते हैं, उस आकार के गुण उस जल में आ जाते हैं, इसीलिए जलाशय निर्माण के समय आकार हो महत्व दिया गया है। शुभ आकार में शुभ आय का प्रयोग करना चाहिए। विषम आय जलाशय के लिए शुभ बताई है। अन्य ग्रन्थ में जलाशय के पदार्थ का महत्व भी बताया गया है। शिलान्यास कर जलाशय का निर्माण करना चाहिए।

अध्याय-९

वृक्षछेदन विधि

श्लोक क्रमांक १ से ४ में वर्णानुसार शुभ या उपयुक्त वृक्ष बताएँ हैं:-

वर्ण	उपयुक्त वृक्ष
ब्राह्मण	देवदारु, चन्दन, शमी (छोकर), मधूक (महुआ)
क्षत्रिय	खदिर, बेल, अर्जुन, शीशम, शाल, तुनिका, सरल
वैश्य	खादिर, सिंधु, स्यंदन
शूद्र	तिंदुक, अर्जुन, शाश, वैसर, आम, काँटेवाले दूध वाले
सभी	देवदारु, चन्दन, शमी, शीशम, खदिर (खैर), शाल

श्लोक क्रमांक ५ से ७ मुहूर्त का वर्णन है:-

सूर्य राशि	परिणाम
३, ६, ९, १२	अशुभ

सूर्य से चन्द्रमा का नक्षत्र

२, ४, ६, १०, १३, २०	शुभ
---------------------	-----

श्लोक क्रमांक ८-९ में यह बताया है कि घर में एक ही प्रकार की लकड़ी का प्रयोग करना श्रेष्ठ है, दो या तीन प्रकार की लकड़ी का प्रयोग भी कर सकते हैं, परन्तु तीन से अधिक प्रकार की लकड़ी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक १० से १३ तक निषिद्ध वृक्ष का वर्णन है:-

दूध वाले, फलवाले और काँटेवाले आदि वृक्ष, श्मशान, अग्नि, भूमि से दूषित और जिस वृक्ष पर बिजली गिरी हो, हवा से टूटा हुआ, मार्ग का वृक्ष, लताओं से आच्छादित, चैत्य का वृक्ष, कुल का वृक्ष लगाया हुआ वृक्ष, देवता का वृक्ष, आधा टूटा हुआ, आधा जला हुआ, आधा सूखा हुआ, व्यंग, कुब्ज, काणा, अत्यन्त पुराना, तीन शिर वाले, बहुत शिर वाले, अन्य वृक्ष से भेदित तथा जो वृक्ष स्त्री नाम वाले हैं ये सारे वृक्ष घर के काम में योग्य नहीं है, इन्हें छोड़ देना चाहिए।

श्लोक क्रमांक १४ से २१ तक निषिद्ध वृक्ष तथा उनके परिणाम को बताया है:-

वृक्ष	परिणाम
दूधवाले	दूध को नष्ट करते हैं
फलदार	पुत्रों को नष्ट करते हैं।
काँटेवाले	कलह
काक बैठते हों	धन का क्षय
गीधों का वृक्ष	महारोग
श्मशान के वृक्ष	मरण
जिस पर बिजली गिरी हो	बिजली गिरने का भय
पवन से दूषित	वायु के भय
मार्ग के वृक्ष	कुल ध्वंस
पुरच्छन्न वृक्ष	भयदाता
कुल के वृक्ष	मृत्यु
देववृक्ष	धन का नाश
चैत्य के वृक्ष	गृहस्वामी की मृत्यु
देव के वृक्ष	भय
आधा टूटा	विनाश
आधा सूखा	धन का नाश
व्यंग (तिरछे वृक्ष)	प्रजा (सन्तान) का मरण
कुब्ज (कूबड़े) वृक्ष	कुब्ज सन्तान
काणे वृक्ष	राजभय
अत्यन्त जीर्ण वृक्ष	घर का क्षय
तीन शिर के वृक्ष	गर्भपात
अनेक शिर के वृक्ष	सन्तान का मरण
अन्य वृक्ष से जो भेदित	शत्रु का भय
उद्यान के वृक्ष	आकाश (सम्बन्धी) भय
लताओं से जो ढका	दरिद्रता
पुष्प के वृक्ष	कुल का नाश

सर्प से युक्त वृक्ष	सर्प का भय
देवालय के वृक्ष	नाश
कन्या का जिसमें चिह्न	कन्याओं का जन्म
छिद्रों से जो युक्त वृक्ष	स्वामी को भय

श्लोक क्रमांक २२ से २६ तक वृक्ष काटने हेतु मुहूर्त का विचार किया गया है:-

कृत्तिका आदि पाँच नक्षत्रों में चन्द्रमा हो तब वृक्ष नहीं काटना चाहिए। मासदग्ध, वारदग्ध, तिथिदग्ध, रिक्ता तिथि, अमावस्या, छठ, इनको छोड़ दें। एकार्गल दोष और भद्रा और अन्य जो कुयोग हैं, इन्हें भी छोड़ दें। उत्पाद से दूषित जो नक्षत्र हैं, संक्रान्ति, ग्रहण, वैधृति, व्यतिपात योग को छोड़ देना चाहिए।

मृगशिरा, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मूल, तीनों (दोनों) उत्तरा, स्वाती, श्रवण इन नक्षत्रों में वृक्षों का छेदन (काटना) शुभदाई होता है।

श्लोक क्रमांक २७ से ३४ तक वृक्ष पूजन विधि का वर्णन है:-

समतल भूमि पर उगे हुए शुभ वृक्ष का पूजन कर हवन करें। वस्त्र से ढककर, सूत्र लपेटें। रात्रि विश्राम कर, वृक्ष पर निवास करने वाले जीवों से अन्यत्र जाने की प्रार्थना करें। उसके पश्चात् पुनः वृक्ष की पूजा करें। उसके पश्चात् वृक्ष को काटें।

श्लोक क्रमांक ३५ से वृक्ष काटने की विधि का वर्णन है:- वृक्ष को जल से सींचकर कुल्हाड़ी से वृक्ष को ईशान दिशा से आरम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से काटें।

कटे वृक्ष के गिरने की दिशा	परिणाम
पूर्व	धन-धान्य से युक्त
आग्नेय	आग लगने का भय
दक्षिण	मृत्यु
नैऋत्य	कलह
पश्चिम	पशुओं की वृद्धि
वायव्य	चोर का भय
उत्तर दिशा	धनागम
ईशान	महाश्रेष्ठ और अनेक प्रकार से उत्तम

श्लोक क्रमांक ३९ से ४४ तक किस वृक्ष की लकड़ी का उपयोग करने पर क्या परिणाम होता है, यह बताया है:-

वृक्ष/लकड़ी

भग्न

अन्य वृक्ष के मध्य में जमे हुए वृक्ष

शस्त्र के छेदन लिए लकड़ी

अन्तस्थ काष्ठ

एक भाग का काष्ठ

दो भाग का वृक्ष

तीन भाग का

चार व छः भाग का काष्ठ

पाँच भाग का काष्ठ

जर्जर (जीर्ण) वृक्ष के काष्ठ

मध्य में छिद्र

निष्फल वृक्ष का काष्ठ

सफल वृक्ष का काष्ठ

विरूप

क्षत वृक्ष

अंग हीन वृक्ष

विकट वृक्ष

परिणाम

अशुभ, नारी का मरण

अशुभ

स्वामी का नाश

कर्म के कर्ता के धन का नाश

महाश्रेष्ठ, धन धान्य की वृद्धि,

पुत्र, स्त्री, पशु, अनेक रत्नों प्राप्ति

सफल

दुःख देने वाला

बन्धन देता है।

मृत्यु देता है।

धन का नाश

रोगदायक

निष्फल

सफल

धन का नाश

रोग कारक

दूध का नाश

कन्याओं का जन्म

काष्ठ के प्रवेश में (लाल वस्त्र धारण किये हुए) बालक और तरुण जिस वाणी को कहते हैं, वह उसी प्रकार सत्य होती है।

श्लोक क्रमांक ४५ में लकड़ी सुरक्षित रखने की विधि का वर्णन है:-

यदि काष्ठ को पक्ष भर जल में रखे तो उसे कीड़े नहीं खाते हैं। बुद्धिमान को लकड़ी कृष्ण पक्ष में काटना चाहिए, शुक्ल पक्ष में नहीं काटना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ४६ से तक में वृक्ष काटकर लाते समय होने वाले शुभाशुभ शकुनों का वर्णन किया गया है:-

शकट की पकड़े टूट जाने पर स्वामी का नाश होता है और आरे के टूटने से बल का नाश कहा है। पहिए के टूटने, फटने या अलग हो जाने पर धन का नाश होता है।

काष्ठ रंग

परिणाम

श्वेतकाष्ठ

विजयकारी

पीला

रोग का दाता

अनेक रंग का काष्ठ

जयदाता

लाल काष्ठ

शस्त्र भय

विश्लेषण

वृक्ष की अनेकानेक जातियाँ होती हैं। उनकी लकड़ियों से अलग-अलग प्रकार के विकिरण निकलते हैं, जो मनुष्य पर अपना प्रभाव डालते हैं, इसके अतिरिक्त किसी वृक्ष की टेन्साईल स्ट्रेन्थ अधिक होती है, तो किसी वृक्ष की शियरींग स्ट्रेन्थ अधिक होती है, तो किसी वृक्ष की काम्प्रसिव स्ट्रेन्थ अधिक होती है। जिन वृक्ष की काम्प्रसिव स्ट्रेन्थ अधिक होती है, या भार वहन क्षमता अधिक होती है, उनका उपयोग कॉलम बनाने में किया जाता है। जिन वृक्षों की शियरींग स्ट्रेन्थ अधिक होती है, उनका उपयोग बीम बनाने में किया जाता है।

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति के लिए देवदारु, चन्दन, शमी एवं महुआ की लकड़ी शुभ बताई गई है, तो क्षत्रियों के लिए खैर, बेल, अर्जुन व शिरस शुभ बताई है। वैश्य के लिए खैर, सिन्धु, स्यन्दन शुभ तथा शूद्र के लिए तिन्दुक, अर्जुन, शाशा, बैसर, आम, कंटीले वृक्ष एवं दूध वाले वृक्ष की लकड़ी शुभ कही है।

अर्थात् जो व्यक्ति अध्ययन, मनन, चिन्तन, परोपकार आदि गुणों को धारण करता है, दूसरे शब्दों में कहे तो ब्राह्मण वर्ण का है उसके घर के लिए खिड़की, दरवाजे तथा फर्नीचर, कुर्सी, टेबल इत्यादि देवदारु, चंदन, शमी आदि वृक्ष की लकड़ी से बनवाना चाहिए। क्योंकि इन वृक्ष की

लकड़ियों के निकलने वाला विकिरण उसकी संरचना इस प्रकार की होती है कि वह व्यक्ति में ब्राह्मणोचित गुणों को विकसित करने में सहायक होती है। फिलहाल लकड़ी के बर्तनों का उपयोग लगभग समाप्त हो चुका है, अन्यथा इन्हीं लकड़ियों का भोजन पात्र के रूप में प्रयोग लाया जा सकता है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि अन्य वर्ण के लिए भी विशेष प्रकार की लकड़ियाँ बताई गई हैं।

आज हम बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि अर्जुन वृक्ष की छाल का प्रयोग हृदय रोग में वरदान साबित हो रहा है। वे उसकी छाल की चाय या काढ़ा बनाकर पीते हैं जिससे उन्हें बहुत राहत महसूस होती है।

जब आयुर्वेद की दृष्टि से हम एक-एक वृक्ष के गुण व प्रकृति का अध्ययन करेंगे तो हम पाएंगे कि ये वृक्ष वर्ण के अनुरूप गुणों को विकसित करने में सहायक होते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं, भूमि चयन के हम देख चुके हैं कि जो भूमि ब्राह्मण के लिए उपयुक्त है, वह सभी वर्ण के व्यक्तियों के लिए शुभ होती है। इसे अतिरिक्त हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि ब्राह्मण अपने आचार, विचार, संकल्प, दिनचर्या, कर्मकाण्ड आदि से किसी भी प्रकार की भूमि को सकारात्मक ऊर्जा वाले क्षेत्र में परिवर्तित करने में सक्षम हैं।

देवदारु, चन्दन, शमी, शीशम, खैर, शाल इन वृक्ष की लकड़ियाँ सभी जाति के व्यक्तियों के लिए शुभ बतलाई गई हैं अर्थात् इन वृक्षों की लकड़ियों जैसा जातक, यजमान, गृहस्वामी चाहता है उसी प्रकार के गुणों को विकसित करने में समर्थ है। जिस प्रकार डिस्टीलड वाटर का उपयोग हम निर्बाध रूप से सभी जगह कर सकते हैं, जबकि कुआँ, नदी, तालाब आदि के जल का विशिष्ट उपयोग होता है या यूँ कहे कि सफेद रंग का प्रयोग हम सभी व्यक्तियों के लिए कर सकते हैं जबकि लाल रंग क्षत्रिय व पीला रंग वैश्य के लिए उचित है। यह सफेद रंग हम प्रकार के गुणों को विकसित करने में समर्थ है, ठीक उसी प्रकार यह लकड़ियाँ सभी वर्ण या जाति के लिए शुभ हैं।

अध्याय—१०

गृहप्रवेश विधि

श्लोक क्रमांक १ व २ में नए गृह हेतु मासानुसार मुहूर्त का विचार किया गया

है:-

सूर्य	उत्तरायण
गुरु और शुक्र	बलवान
चैत्र	धन की हानि
वैशाख	धन, धान्य, पशु व पुत्र का लाभ
ज्येष्ठ,	श्रेष्ठ
आषाढ़	मध्यमफल
मार्गशीर्ष	श्रेष्ठ
माघ	धन का लाभ
फाल्गुन	पुत्र और धन का लाभ

श्लोक क्रमांक ३ से ८ नवीन गृहप्रवेश हेतु बलि-पूजन विधि का वर्णन है:-

गृह-प्रवेश के पहले दिन वास्तुपूजा करना चाहिए, दिशाओं में, घर के मूल व ऊपरी भाग में दीपदान कर, भूतों को बलि देना चाहिए। पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से घी, दूध, मांस, लड्डू और शहद की बलि विशेष रूप से दें। चरकी आदि तथा स्कन्द आदि को भी बलि दें। विष्णोरराट् मन्त्र से वास्तु पुरुष का पूजन करें। अन्य देवताओं का गायत्री मन्त्र से पूजन करें।

श्लोक क्रमांक ९ कालशुद्धि का वर्णन किया गया है।

श्लोक क्रमांक १० में बताया है कि द्वन्द (जीर्ण) और पुराने घर में मास का दोष नहीं होता है।

श्लोक क्रमांक ११ से १४ तक प्रवेश संबंधी सामान्य विचार किया गया है:-

बहुत समय तक विदेश में रहने के उपरान्त, सूर्य व चन्द्रमा का विचार कर गृह-प्रवेश करना चाहिए। नवें वर्ष, नवें मास और नवें दिन में प्रवेश न करें और प्रवेश की समय से निर्गम (यात्रा) को भी कदाचित् न करें। गृह के प्रारम्भ के जो दिन, मास,

नक्षत्र, वार हैं उनमें ही गृह प्रवेश करें। गृह-प्रवेश उत्तरायण में करें। तृण के घर में सदा प्रवेश कर सकते हैं।

श्लोक क्रमांक १५ से १८ तक मुहूर्त का सूर्यराशि व चन्द्र नक्षत्र के आधार पर विचार किया गया है:-

सूर्य राशि

कर्क, कन्या, कुम्भ

परिणाम

प्रवेश न करें

चन्द्रनक्षत्र

मृदु, ध्रुव संज्ञक

पुष्य, स्वाती, (धनिष्ठा व शतभिषा)

क्षिप्र व चर

उग्र व दारुण

उग्र

दारुण

विशाखा

कृत्तिका

द्वार के नक्षत्र

अन्य दिशा में स्थित नक्षत्रों में

शुभदाई

जीर्ण (पुराने) घर में प्रवेश शुभ

नवीन गृह-प्रवेश न करें।

कभी प्रवेश न करें।

घर के स्वामी का नाश

बालकों का नाश

स्त्री का नाश

अग्नि से भय

शुभ है।

प्रवेश कदापि न करें।

श्लोक क्रमांक १९ व २० में मुहूर्त का अन्य प्रकार से विचार किया गया है:-

रिक्ता तिथि, मंगलवार और शनिवार, कुयोग, पाप लग्न, चर लग्न व चर नवांश, शुभ कर्म में वर्जित है, वे गृह प्रवेश में भी वर्जित है।

तिथि

दिशा (शुभ)

नन्दा

दक्षिण द्वार

भद्रा

पश्चिम द्वार

जया

उत्तर

पूर्णा

पूर्व के द्वार में प्रवेश करें।

श्लोक क्रमांक २१-२२ में जन्मराशि से गृह-प्रवेश विचार किया है:-

राशि	परिणाम
पहली	व्याधि का नाश
दूसरी	धन का नाश
तीसरी	धन का दाता
चौथी	बन्धुओं का नाश
पाँचवीं	पुत्र का नाश
छठवीं	शत्रु का नाश
सातवीं	स्त्री का नाश
आठवीं	प्राण का नाश
नवीं	पिटक (पटियारी) का दाता,
दसवीं	सिद्धि का दाता
ग्यारहवीं	धन का दाता
बारहवीं	भयकारक।

श्लोक क्रमांक २३-२४ में बताया है कि:-

लग्न में शुभग्रह हों तो शुभ, क्रूर ग्रह हों तो अशुभ होता है। चर राशि (१, ४, ७, १०), चर लग्न, चर राशि के नवांश में प्रवेश न करें।

श्लोक क्रमांक २७ से तक में वास्तुपूजन हेतु नक्षत्र का विचार किया गया है:-

चित्रा, शतभिषा, स्वाती, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा

श्लोक क्रमांक २९ में बताया है कि नित्य की यात्रा, पुराना घर, अन्नप्राशन, वस्त्रों का धारण, वधुप्रवेश और मांगलिक कार्य में गुरु और शुक्र के अस्त का दोष नहीं होता है।

श्लोक क्रमांक ३० से ४४ तक लग्न आदि का विचार किया गया है:-

केन्द्र	सौम्य ग्रह
त्रिकोण	सौम्य ग्रह
शुभ लग्न	स्थिर, द्विस्वभाव
पापग्रह	२, ८, त्रिकोण के अतिरिक्त

अभिजिच्छ्रवणयोर्मध्ये प्रवेशे सूतिकागृहे।

नृपादीनां ब्राह्मणानां नावधेयं कदाचन॥३०॥

अभिजित व श्रवण नक्षत्र के मध्य सूतिका गृह में प्रवेश करें। राजा आदि व ब्राह्मणों को सूतिका गृह में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

श्लोक ३१ अशुभ नक्षत्र-क्रूर ग्रह से युक्त, क्रूर ग्रह से मुक्त तथा जिस पर क्रूर ग्रह जानेवाला हो, लत्ता दोष से आहत हो और जो क्रान्ति साम्य दोष से दूषित हो और ग्रहण से दूषित हो, जिस नक्षत्र को चन्द्रमा ने भोगा हो वह भी श्रेष्ठ नहीं है। जन्म के नक्षत्र से दसवां नक्षत्र कर्म संज्ञक, सोलहवां संघात संज्ञक, अठारहवां समुदाय संज्ञक, तेईसवाँ नक्षत्र विनाशक, पच्चीसवाँ मानस संज्ञक होता है, इनमें शुभ कर्म न करें।

श्लोक क्रमांक ३५-४० में शुभ मुहूर्त बताया है:- गुरु व शुक्र उच्च राशि में, केन्द्र या त्रिकोण में, सूर्य उच्च राशि में लग्न में या छठवें, ग्यारहवें भाव में शुभ होता है।

श्लोक क्रमांक ४१-४४ में बताया है कि अष्टम स्थान में चन्द्रमा अत्यन्त अशुभ फल देता है। क्षीण चन्द्रमा बारहवें, छठवें स्थान, आठवें भाव या लग्न में हो अशुभ होता है।

आठवें, पाँचवे, दूसरे तथा ग्यारहवें भाव से पाँचवें भाव अर्थात् बारहवें, नवें, छठवें एवं तीसरे भाव में सूर्य को हो क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर मुखी घर में प्रवेश करना चाहिए।

गुरुदेवाग्निगोविप्र ऊर्ध्व (ऊर्ध्व) पादैर्घ (र्ध, ध) नक्षयम्।

गुरु, देवता, अग्नि, गो, विप्र इनको वाम भाग में रखें ऊर्ध्वपाद नक्षत्र में धन का नाश होता है।

श्लोक क्रमांक ४६-४८ में शयन विचार किया गया है:-

दिशा	परिणाम
उत्तर	मृत्यु
पश्चिम	प्रबल चिन्ता
पूर्व	विद्या का लाभ
दक्षिण	सुख, संपदाओं की प्राप्ति
वंश आदि पर सिर करके सोने से	रोग व पुत्र को पीड़ा

श्लोक क्रमांक ४९ से ५४ तक लकड़ी कर्म विधि का वर्णन है:-

विषम आय लेना चाहिए। अशन, स्यं(पं)दन, चन्दन, हरिद्रु, देवदारु, तिंदुकी, शाल, काश्मरी, अर्जुन, पद्मक, शाक, आम्र, शीशम-इन वृक्षों की लकड़ी शय्या बनाने में शुभ होती है।

अशुभ वृक्षः अशनि (बिजली), जल, पवन, हाथी से गिराये हुए और जिस वृक्ष पर मधुमक्खी का छत्ता हो, पक्षी निवास हो और चैत्य, श्मशान, मार्ग में उत्पन्न हो, आधा सूखा हुआ हो, लताओं में बन्धा हुआ हो, काँटे वाला हो, जो महानदियों के संगम में उत्पन्न हों, जो देवता के मंदिर में हों, दक्षिण और पश्चिम दिशा में उत्पन्न हुए हों, जो निषिद्ध वृक्ष से उत्पन्न हुए हों। ऐसी लकड़ी का प्रयोग करने पर कुल का नाश, रोग और शत्रु से भय होता है।

श्लोक क्रमांक ५५ से शुकन का विचार किया गया है:-

शुभ शकुन

सफेद फूल, दन्त (हाथी दांत), दही, अक्षत, फल, जल से पूर्ण घड़ा, रत्न तथा अन्य जो मंगल वस्तु



... १५ ...
... १६ ...
... १७ ...
... १८ ...
... १९ ...
... २० ...
... २१ ...
... २२ ...
... २३ ...
... २४ ...
... २५ ...
... २६ ...
... २७ ...
... २८ ...
... २९ ...
... ३० ...
... ३१ ...
... ३२ ...
... ३३ ...
... ३४ ...
... ३५ ...
... ३६ ...
... ३७ ...
... ३८ ...
... ३९ ...
... ४० ...
... ४१ ...
... ४२ ...
... ४३ ...
... ४४ ...
... ४५ ...
... ४६ ...
... ४७ ...
... ४८ ...
... ४९ ...
... ५० ...
... ५१ ...
... ५२ ...
... ५३ ...
... ५४ ...
... ५५ ...
... ५६ ...
... ५७ ...
... ५८ ...
... ५९ ...
... ६० ...
... ६१ ...
... ६२ ...
... ६३ ...
... ६४ ...
... ६५ ...
... ६६ ...
... ६७ ...
... ६८ ...
... ६९ ...
... ७० ...
... ७१ ...
... ७२ ...
... ७३ ...
... ७४ ...
... ७५ ...
... ७६ ...
... ७७ ...
... ७८ ...
... ७९ ...
... ८० ...
... ८१ ...
... ८२ ...
... ८३ ...
... ८४ ...
... ८५ ...
... ८६ ...
... ८७ ...
... ८८ ...
... ८९ ...
... ९० ...
... ९१ ...
... ९२ ...
... ९३ ...
... ९४ ...
... ९५ ...
... ९६ ...
... ९७ ...
... ९८ ...
... ९९ ...
... १०० ...

गुरुदेवाग्निगोविप्र ऊर्ध्व (ऊर्ध्व) पादैर्ध (र्ध, ध) नक्षयम्।

गुरु, देवता, अग्नि, गो, विप्र इनको वाम भाग में रखें ऊर्ध्वपाद नक्षत्र में धन का नाश होता है।

श्लोक क्रमांक ४६-४८ में शयन विचार किया गया है:-

दिशा	परिणाम
उत्तर	मृत्यु
पश्चिम	प्रबल चिन्ता
पूर्व	विद्या का लाभ
दक्षिण	सुख, संपदाओं की प्राप्ति
वंश आदि पर सिर करके सोने से	रोग व पुत्र को पीड़ा

श्लोक क्रमांक ४९ से ५४ तक लकड़ी कर्म विधि का वर्णन है:-

विषम आय लेना चाहिए। अशन, स्यं(पं)दन, चन्दन, हरिद्रु, देवदारु, तिंदुकी, शाल, काश्मरी, अर्जुन, पद्मक, शाक, आम्र, शीशम-इन वृक्षों की लकड़ी शय्या बनाने में शुभ होती है।

अशुभ वृक्षः अशनि (बिजली), जल, पवन, हाथी से गिराये हुए और जिस वृक्ष पर मधुमक्खी का छत्ता हो, पक्षी निवास हो और चैत्य, श्मशान, मार्ग में उत्पन्न हो, आधा सूखा हुआ हो, लताओं में बन्धा हुआ हो, काँटे वाला हो, जो महानदियों के संगम में उत्पन्न हों, जो देवता के मंदिर में हों, दक्षिण और पश्चिम दिशा में उत्पन्न हुए हों, जो निषिद्ध वृक्ष से उत्पन्न हुए हों। ऐसी लकड़ी का प्रयोग करने पर कुल का नाश, रोग और शत्रु से भय होता है।

श्लोक क्रमांक ५५ से शुकन का विचार किया गया है:-

शुभ शकुन

सफेद फूल, दन्त (हाथी दांत), दही, अक्षत, फल, जल से पूर्ण घड़ा, रत्न तथा अन्य जो मंगल वस्तु

श्लोक क्रमांक ५८ से ६३ तक शय्या के मान का विचार किया गया है:-

व्यक्ति	लम्बाई (शय्या)	चौड़ाई पाए - (अंगुल)
चक्रवर्ती राजा	१००	४४ ३३
राजकुमार व मन्त्री	९०	
सेनापति	८२	
पुरोहित	८०	

सभी वर्ण के लिए ८१ अंगुल की लम्बाई शुभ कही गई है।

श्लोक क्रमांक ६४ से ७० तक शय्या की काष्ठ व अलंकरण का विचार किया है:-

काष्ठ	परिणाम
असन	रोगहर्ता
तिंदुकी	पित्तदायक, शुभ
चन्दन	शत्रुनाशक तथा धर्म, आयु व यशदाई
शीशम	महान् समृद्धि
पद्मक	दीर्घायु, लक्ष्मी, सुख, पुत्र, बहुत धनदायक तथा शत्रुओं का नाश
शाल	कल्याणकारक
शुभासन	शुभदाई
देवदारु	शुभदाई
श्रीपर्णी	शुभदाई
साक	शुभदाई
कदम्ब	शुभदाई
हलदु	श्रेष्ठ
आम	प्राण का हरण
असन	दोषदायक (अन्य लकड़ी के साथ)
स्यन्दन	शुभ
फलवाले वृक्ष	फल के दाता



शय्या का अलंकरण के बारे में कहा है कि हाथीदाँत, रत्नजड़ित, जिसके मध्य भाग में सोना लगा हो शुभ होता है।

श्लोक क्रमांक ७१ से ७६ तक शय्या चिह्न का विचार किया है:-

चिह्न	परिणाम
शस्त्र	जय
नन्द्यावर्त	पृथ्वी का लाभ
लोष्ठ	देश की प्राप्ति
श्रीवृश्च और वर्द्धमान	आरोग्य, विजय और धन की वृद्धि
स्त्री	धन का नाश
भांगरा	पुत्र का लाभ
कुंभ	निधि
दंड	यात्रा में विघ्न
कृकलास	दुर्भिक्ष
भुजंग	दुर्भिक्ष
वानर	दुर्भिक्ष
गिद्ध, उल्लू, बाज,	मृत्यु और विपत्ति
काक, वड़े मगर, पाश, कबन्ध	मृत्यु और विपत्ति
खून का बहना, काला शव (मुर्दा)	दुर्गन्धवान

श्लोक क्रमांक ७७-७८ में बताया है कि

शुक्ल, समान, सुगन्ध, चिकने छेद हो तो शुभ होता है। पाए में एक चिह्न हो तो शुभ, तीन या अधिक होने पर क्लेश व बन्धन होता है।

छिद्र/विवर्ण/ग्रन्थिस्थान	परिणाम
पैर या सिर	व्याधि
कुंभ या पाद	मुखरोग
कुंभ के प्रथम भाग या जंघा	जंघा का रोग
उसके नीचे या पाद के नीचे	धन का बहुत नाश
खुर	खुरों में पीडा

श्लोक क्रमांक ८३ से ९० तक में छिद्र के प्रकार व परिणाम एवं काष्ठ का विचार

किया है:-

नाम	विवरण	परिणाम
संकट और निष्कुट	घट के समान	द्रव्य का नाश
कोलाख्य	अपवित्र और नीले रंग	कुल का नाश
(धृ)ष्टि नेत्र	विषम	
शूकर		शस्त्र से भय
वत्सनाभ	विवण	रोग
कोलक	काला	
बन्धुक	दो प्रकार का	कीटों की वृद्धि, शुभदाई
दार और पाप	समान वर्ण	

जो लकड़ी गांठों से भरी हो वह सब कामों में शुभ नहीं होती हैं।

घर में वृक्ष का काष्ठ	परिणाम
एक	धान्य
दो	धन्य
तीन	पुत्रों की वृद्धि
चार	धन और यश
पाँच	मरण
छः, सात	कुल का नाश होता है।

श्लोक क्रमांक ९१ से ९३ शय्या का अन्य विचार किया है:-

वृक्षों के शिर अग्रभाग और मूल पाद कहते हैं।

शय्या के अंग में दोष व परिणाम

शय्या का अंग (दोष)

परिणाम

पाद

मूल का नाश

अरणि

धन का नाश

शिर

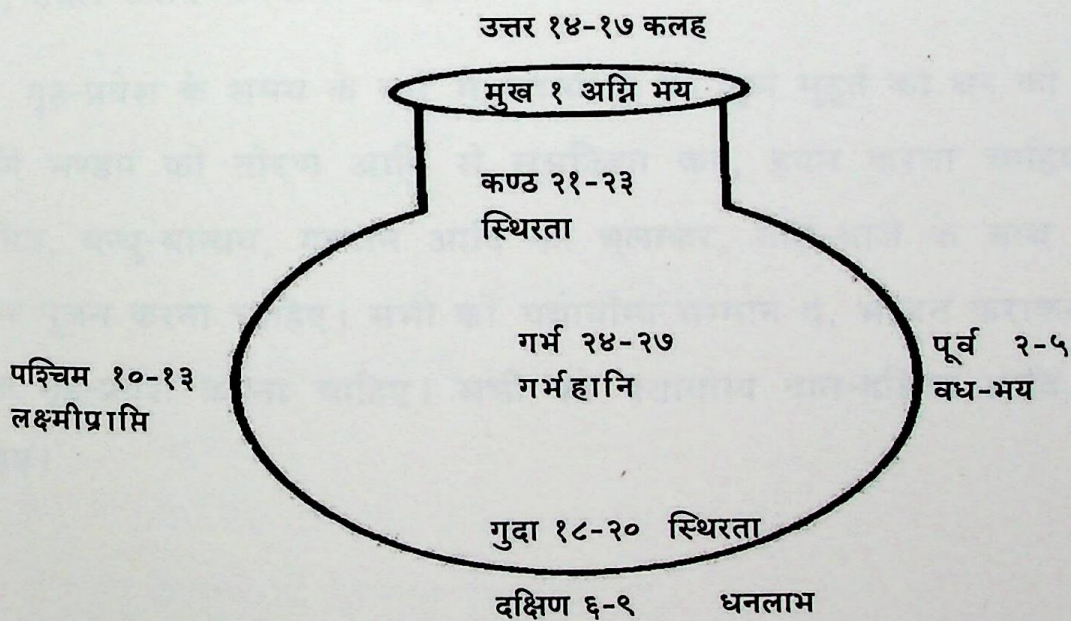
मरण

पाद में छिद्र

महान् हानि

श्लोक क्रमांक ९४ में बताया है कि शय्या को शुभ मुहूर्त में बनवाकर दक्षिण दिशा के कमरे में रखकर, उस पर शयन करें तथा स्वप्न के आधार पर शुभाशुभ का ज्ञान करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ९५ से ९८ तक गृहप्रवेश हेतु कुम्भचक्र का विचार किया गया है, इसमें बताया गया है कि सूर्य के नक्षत्र से क्रम से नक्षत्र को स्थापित करें तथा चित्रानुसार गृहप्रवेश का परिणाम जानें:-



श्लोक क्रमांक ९९ से ११० गृह-प्रवेश विधि का वर्णन किया गया है:-

स्नान करके शुद्ध, निराहार, भूषणों से भूषित, पुत्र, पत्नी, मन्त्री और पुरोहितों सहित यजमान, गन्ध, पुष्प, नवीन वस्त्र को धारण करें। पूरे घर को सुसज्जित करें। पूरे गाजे-बाजे से साथ नगर या ग्राम में जूलूस से साथ प्रदक्षिणा करें (निकलें)। दिग्पाल, क्षेत्रपाल, ग्रामदेवता, षोडशमातृकाओं का पूजन कर प्रवेश करें।

ब्राह्मण, पुरोहित सभी का यथायोग्य पूजन करें। दक्षिणा आदि से भोजन करवाएँ, स्वयं परिवार, इष्टमित्र सहित भोजन कर प्रवेश करें।

विश्लेषण

इस अध्याय में गृहप्रवेश विधि का वर्णन है। यह बताया है कि शुभ मुहूर्त में गृह-प्रवेश करना चाहिए। जिस समय प्रकृति (ऋतु) अनुकूल हो, बहुत अधिक गर्मी या वर्षा न हो उस समय गृह-प्रवेश करना चाहिए। इसके पश्चात् शय्या का विचार किया है। शयन की दिशा बताई है। शय्या की लकड़ी का विचार किया है, यह बताया है कि शय्या निर्दोष होना चाहिए। व्यक्ति दिनभर कार्य करने के उपरान्त रात्रि में शय्या पर ८ से १० घण्टे शयन करता है। वह शय्या उचित काष्ठ की बनी हो, उसमें किसी भी प्रकार का कोई दोष (छिद्र आदि) न हो, उसमें रत्न आदि लगे हों, वह श्रेष्ठ होती है। शय्या बनवाने के पश्चात् उस पर शयन कर स्वप्न विधि द्वारा शुभाशुभ का निर्धारण करना चाहिए। इस अध्याय में लकड़ी के गुण भी बताएँ हैं। उचित काष्ठ से पलंग, कुर्सी, टेबल आदि बनवाना चाहिए।

गृह-प्रवेश के समय के बारे में बताया है कि शुभ मुहूर्त को घर को सजाकर, सामने मण्डप को तोरण आदि से सुसज्जित कर, हवन करना चाहिए। अपने इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव, गुरुजन आदि को बुलाकर, गाजे-बाजे के साथ मंदिर में जाकर पूजन करना चाहिए। सभी को यथायोग्य सम्मान दे, भोजन कराकर परिवार सहित गृह-प्रवेश करना चाहिए। सभी को यथायोग्य दान-दक्षिण आदि भी देना चाहिए।

अध्याय-११

दुर्ग

श्लोक क्रमांक १ से ३ में दुर्ग की महत्ता तथा प्रकार का वर्णन किया गया है।
दुर्ग के प्रकार इस प्रकार हैं:- विषम, दुर्गम, घोर, वक्र (टेढ़ा), भीरु, भयावह, वानर
के शिर के समान, रौद्र, अलक मंदिर।

श्लोक क्रमांक ४ से ६ में दुर्ग के परकोटे का वर्णन है:-

परकोटा क्रमांक	परकोटा
१	मिट्टी
२	जल
३	ग्राम
४	गिरि
५	पर्वतारोह
६	डामर
७	वक्रभूमि
८	विषम

दुर्ग-आकार (श्लोक ६-८)

- चौकोर चार द्वार से युक्त,
- वर्तुल,
- दीर्घ जो दो द्वार से आक्रान्त (युक्त) हो,
- त्रिकोण हो जिसका एक मार्ग हो,
- वृत्त(गोल) दीर्घ (लंबे) जिनके चार द्वार हों,
- जो अर्द्धचन्द्राकार हो,
- गौ के स्तन की तुल्य जिसके चार द्वार हो,
- धनुषाकार,
- मार्गकंटक,
- पद्मपत्र के समान और
- छत्र के आकार



श्लोक क्रमांक ९ विभिन्न प्रकार के दुर्ग का परिणाम बताया है:-

दुर्ग	परिणाम (शत्रु को भय)
मृन्मय दुर्ग	खनन (खोदना) से भीति (भय, डर)
जलदुर्ग	मोक्षबन्धन से भय
ग्रामदुर्ग	अग्नि के दाह से
गह्वर	प्रवेश का भय
पर्वत	स्थान के भेद से
डामर	भूमि के बल से भय
वक्रमान	वियोग से
विषम दुर्ग	स्थाई भय

बल अबल से मैं फिर यम पद को कहता हूँ।

श्लोक क्रमांक १२ से २९ तक दुर्ग निर्माण का क्रम बताया है:-

अतिदुर्ग, काल वर्ण, चक्रावर्त, डिंबर, नालावर्त, पद्याक्ष और सर्वतः (चारों तरफ से) पक्ष भेद इनको राजा पहले बनवाएं, उसके बाद दुर्ग बनवाएं। पहले परकोटा बनवाएं उसके पश्चात् बाहर के स्थान से निर्माण आरम्भ करें। खाई बनवाकर, उससे बाएँ और दाहिने ओर मार्ग बनवाएं। कोण में जो घर बनवाएं, उसमें आना-जाना सरल न हो। खाई के ओर प्रतोली बनवाएं, उस प्रतोली के छिद्रों से योद्धा विभिन्न यन्त्रों के द्वारा तीर आदि चला सकें। विभिन्न यन्त्रों के लिए छिद्र बनवाएँ। अन्दर समतल भूमि पर बड़े-बड़े घर बनवाएँ। शास्त्रानुसार पूजन करें। घरों को चारों ओर से परकोटों से सुरक्षित बनवाएँ। जैसा आकार दुर्ग का हो उसके अनुसार ही घरों का आकार रखें, जैसे धनुष दुर्ग में धनुषाकार, गोस्तन में घर गोस्तन के आकार के रखें। दुर्ग की रचना इस प्रकार करें कि परकोटों पर स्थित धनुर्धारी सभी ओर देख सकें।

कोटचक्र

श्लोक क्रमांक ३० से ३२ में बताया है कि किस समय शान्ति कर्म करना ही

चाहिए:-

- कोट के नक्षत्र में स्वामी का नक्षत्र हो,
- गोचर व अष्टक के भेद से,
- स्तम्भों के छेदन में पूर्वोक्त नक्षत्र एक हो
- मध्य कोट का नक्षत्र पाप ग्रह से आक्रान्त हो,
- जन्म का नक्षत्र ग्रहों से वज्र (बिजली) अस्त्र, अग्नि आदि का दोष हो,

भूकम्प से दूषित हो।

- कोण का नक्षत्र राहु से युक्त हो या ग्रहण, उत्पात से दूषित हो

श्लोक क्रमांक ३३ से शान्तिविधि का वर्णन है:-

उस पुर में पताकाओं से अलंकृत मण्डप को बनवाएं। (घट को) सर्वबीज, पंचरत्न, तीर्थ के जल से भर दें।

आठ कुम्भों सर्वौषधि से युक्त कर रखें।

विभिन्न घट	आवाहन
प्रथम	भूमि
दूसरे घट में	नागराज
तीसरे घट में	कोटपाल
चौथे घट में	स्वामी
पाँच में	वरुण
छठे में	रुद्र
सातवें में	सात मातृकाओं से युक्त देवी
आठवें में	सुरनाथ (इन्द्र) का आवाहन करें।

सबका उनके मन्त्रों से पूजन करें।



श्लोक क्रमांक ३७-३८ में पूजन के पदार्थ का वर्णन है:-गन्ध, पुष्प, धूप, दीपक, कपूर के धूप दीपों से, नैवेद्य, फैनी पूरी, शष्कूली, खजूर, लड्डू और मोदक से पूजन करें।

श्लोक क्रमांक ३९-४० में बताया है कि विभिन्न भाग में विभिन्न देवताओं का पूजन करें:-

स्थान	देवता का पूजन
द्वार के आगे	भैरव
बाह्यदेश	दिक्पाल
मध्य	क्षेत्रपाल, ग्रह

श्लोक क्रमांक ४१-४६ में बताया है कि उसके पश्चात् वास्तुहोम करें, भूमि, भैरवी, भैरव, सिद्धिग्रह, नाग और उपग्रह, जो भैरव के समीप में स्थित हैं उनका यथाविधि पूजन करके विधि से क्षेत्रपाल के मन्त्र से होम करें। होम के अन्त में पाँच बेल या बेल के बीजों से, कोटपाल के नाम से वास्तु होम करें।

श्लोक क्रमांक ४७ में दिशानुसार बलि बताई है:-

दिशा	बलि
पूर्व	पूरी
दक्षिण	खिचड़ी
पश्चिम	खीर
उत्तर	घी व खीर

श्लोक क्रमांक ४८ से ५५ तक पूजन, बलि, मन्त्र जप आदि का वर्णन किया गया है:-

दिक्पाल, क्षेत्रपाल, कोटपाल, कोटस्वामी को बलि दें। विधि से पूर्णाहुति को देकर, अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा दें। फिर ब्राह्मणों को भोजन कराए। इस प्रकार करने से राजा को सिद्धि प्राप्त होती हैं। बारह अंगुल के प्रमाण की खादिर वृक्ष की कील को मृत्युंजय मन्त्र से १००० बार अभिमन्त्रित करके, स्थिर लग्न और स्थिर लग्न के नवांश में, शुभ दिन और शुभ लग्न में दुर्ग के मध्य में रोपण करें (गाड़ दे)



... १०-१२ ...
... १३-१४ ...
... १५-१६ ...

...
...
...
...

... १७-१८ ...
... १९-२० ...
... २१-२२ ...
... २३-२४ ...
... २५-२६ ...

...
...
...
...
...

... २७-२८ ...
... २९-३० ...
... ३१-३२ ...
... ३३-३४ ...
... ३५-३६ ...
... ३७-३८ ...
... ३९-४० ...
... ४१-४२ ...
... ४३-४४ ...
... ४५-४६ ...
... ४७-४८ ...
... ४९-५० ...

ऐसा करने से सिद्धि हो जाती है। सब काल में कोट का स्वामी सुख का भागी होता है।
उष्ट्री मन्त्र का जप हवन करें।

विश्लेषण

सामान्यरूप से दुर्ग का निर्माण शत्रु से सुरक्षित रहने के लिए किया जाता है। स्थान आदि के भेद सात प्रकार के दुर्ग कहे हैं। आकार आदि के भेद से १० प्रकार के दुर्ग का वर्णन इस अध्याय में किया है। सामान्यतः इस प्रकार के आकार का चयन करते हैं जो जीतने में दुर्गम हो, सुगम न हो। दुर्ग की सीमा पर परिखा का निर्माण किया जाता है। अत्यधिक शत्रु से घिरे होने पर या जब शत्रु के आक्रमण की आशंका अधिक हो तो सात प्रकार की परिखा या खाई बनवाई जाती है। इन खाइयों में कीचड़ (दलदल), ज्वलनशील पदार्थ, जल (मगर आदि जीव के साथ) भरा जाता है, जिससे इन खाइयों को पार करना आसान न हो। दुर्ग का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि दुर्ग के अन्दर से ही सुरक्षित रहकर दूर-दूर देखा जा सके, अवसर आने पर दुर्ग के अन्दर से (गोले, आग के गोले, तीर आदि चलाकर) प्रहार किया जा सके। दुर्ग की सीमा की दीवार में इसके लिए छिद्र आदि बनवाए जाते हैं। पहले दुर्ग की सीमा बनवाकर उसके पश्चात् निर्माण करना चाहिए। जैसा दुर्ग का आकार हो, उसके अनुसार ही घर बनवाना चाहिए। विधिविधान से पूजन कर दुर्ग में निवास करना चाहिए।



अध्याय-१२

शल्योद्धार विधि

श्लोक क्रमांक १ व २ में शल्य-ज्ञान:-

इसके पश्चात् पुनः शल्यज्ञान की विधि को कहता हूँ, जिसके ज्ञान मात्र से गृहस्वामी सुख को प्राप्त होता हैं।

गृह आरंभ करते समय गृहस्वामी के जिस अंग में कण्डू (खुजली) पैदा हो, प्रासाद व भवन के उसी अंग में शल्य (दुःख को) जानना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ३ से ७ तक गृहारम्भ के समय गृहस्वामी जिस अंग का स्पर्श करता है उससे शल्य के ज्ञान की विधि का वर्णन है:-

अंग स्पर्श से शल्य ज्ञान

स्पर्श	स्थान	गहराई	शल्य	परिणाम
मस्तक	मस्तक	नीचे		अशुभ
नासिका	नासिका			अल्पदुःख
शिर	सिर	डेढ़ हस्त		अशुभ
मोती			घोड़े का दान्त	महा अशुभ
अन्य के मुख			घोड़े के दान्त	महा अशुभ
हाथ	हाथ में			अशुभ
खट्वांग	एक हस्त			अशुभ

श्लोक क्रमांक ९-१० सूत्रलंघन के द्वारा शल्यज्ञात करने की विधि का वर्णन है:-

उस सूत्र के भलीप्रकार धारणा करने के समय (बांधते समय) यदि कोई (जीव) उस सूत्र का लंघन (उलांघ) करें तो उसकी ही (उस जीव की ही) हड्डी, भूमि के उस भाग में हैं यह जाने, उसे पुरुष के प्रमाण से ही जाने।

प्रश्न से शल्य ज्ञान

श्लोक क्रमांक १२ से २१ में प्रश्न की सहायता से शल्य ज्ञान विधि का वर्णन है:-

नव कोष्ठ किए हुए भूमि के भाग में पूर्व आदि दिशाओं में अ, क, च, त, प, य, श इन वर्णों को क्रम से लिखें।

अक्षर	दिशा	गहराई	शल्य	परिणाम
अ	पूर्व	१.५	मनुष्य की हड्डी	मृत्युदायक
क	अग्नि	दो हस्त	गदहे का शल्य	राजदंड और भय
च	दक्षिण	कमर	मनुष्य का शल्य	मृत्यु (दुःख)
ट	नैऋत्य	डेढ़ हाथ	कुत्ते की हड्डी	गर्भपात
त	पश्चिम	डेढ़ हस्त	लोमड़ी का शल्य	प्रवास
प	वायव्य	चार हस्त	मनुष्य का शल्य	मित्र का नाश
य	उत्तर	४.५ हस्त	गदहे की हड्डी	पशुओं का नाश
श	ईशान	डेढ़ हस्त	गाय का शल्य	गोधन को नष्ट
मध्य कोष्ठ	वक्षः		बाल, कपाल, मनुष्य के हड्डी, लोहे	मृत्युदायक

दिशा की गणना (श्लोक २१)

इसमें सूर्योदय से दिशा की गणना करना चाहिए।

शल्य की प्रभावशील गहराई

- जहाँ जल आ जाए।
- जहाँ पत्थर आ जाए।
- पुरुष के बराबर गहराई तक

श्लोक क्रमांक २४ से ३२ तक गृह में शल्य होने के लक्षण का वर्णन किया गया है:-

- बुरे सपने आते हों।
- हानि या अत्यन्त रोग और धन का नाश होता हो।
- सात दिन तक रात्रि के समय में गौ शब्द करें
- हाथी, अश्व शब्द करें (रोना)



- श्वान शब्द करें।
- वन का मृग निडर होकर प्रविष्ट हो जाएँ
- श्येन, कपोत, व्याघ्र या गीदड़ प्रविष्ट हो जाएँ
- गिद्ध या काला सर्प या जंगली तोता मनुष्य की अस्थि लेकर किसी हेतु से प्रविष्ट हो जाए।

- जो घर बिजली गिरने से दूषित हो,
- जो पवन और अग्नि से दूषित हो,
- यक्ष या राक्षस या पिशाच प्रविष्ट हो जाएँ।
- या रात्रि के समय में काक या भूत को ताड़ना दी जाए।
- जिस घर में रात्रि-दिन कलह हो या (स्त्रियों के झगड़े हों) युद्ध हों। ३२

श्लोक क्रमांक ३३-३६ में बताया है कि शल्योद्धार अवश्य करना चाहिए।

शल्योद्धार विधि

पहिले दिन (एक दिन पहले) विधि से वास्तुपूजा करें। द्विजों में उत्तम शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और चन्द्र तारा के बल से युक्त शुद्ध काल में शल्योद्धार करें।

श्लोक क्रमांक ३७ में शिला एवं आधार शिला का मान बताया गया है:-

लम्बाई एक हस्त, चौड़ाई एक हस्त, मोटाई (१/३) हस्त

श्लोक क्रमांक ३८-४० में वास्तुपुरुष के किस अंग पर किस शिला को स्थापित करना यह बताया है:-

स्थान	शिला
मस्तक	नन्दा
दाहिना हाथ	भद्रा
बायाँ हाथ	रिक्ता शिला
पैर	जया
नाभि	पूर्णा

श्लोक क्रमांक ४१-४४ में बताया है कि शिला की स्थापना, नाभि तक गहराई खोदकर उसमें करना चाहिए। तीन भाग कर स्वस्तिक का आकार बनाकर, ईशान आदि क्रम से नन्दा आदि शिला की स्थापना करें।

श्लोक क्रमांक ४६ में कलश का मान बताया है:-

मान चौरासी पल

गर्भ १ हस्त ४ अंगुल

कण्ठ ६ अंगुल

श्लोक क्रमांक ४७ में बताया है कि आठ कलश को आठ दिशाओं में पदार्थों से पूर्ण कर स्थापित करें।

श्लोक क्रमांक ४८ से ५२ तक कलश में प्रयुक्त सामग्री का वर्णन किया गया है:-

- तीर्थ का जल
- पाँच नदियों का जल
- पंच रत्न, फल और बीज
- कुंकुम, चन्दन, कस्तूरी, कपूर, देवदारु, पद्म और सुरभि (सुगंधि)
अन्य पदार्थ अष्टगंध
- मिट्टी:- बैल के सींग, सिंह के नखों से खोदी गई, वराह (सूअर) और हाथी के दांतों में लगी हुई देवालय के द्वार की मिट्टी,
- मन्त्रित पंचगव्य, पंचामृत, पंचपल्लव, पांच त्वचा और पांच कषाय
- तीन मधु (घी, मिसरी, शहद)
- सप्त धान्य, पारा

श्लोक क्रमांक ५३ से ६० तक पूजन विधि का वर्णन है:-

गणेश, लोकपाल, वरुण, नागों के नायक का आवाहन, पूजन व वास्तु होम कर, शुभ लग्न और मुहूर्त में शिला स्थापन करें।



... १९-१९ ...
...
...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

शिलान्यास (६१-६६)

शिला	फल
नन्दा वशिष्ठ की पुत्री	प्रजा की हितकारिणी, सुखदाता
भद्रा काश्यप की पुत्री	अतुल आयु, आरोग्यदायी
जया भार्गव की पुत्री	प्रजा का हित
रिक्ता	दोषनाशक
पूर्णा अंगिरा की पुत्री	इष्टदायक

इसके पश्चात् तांबे के कुम्भ को गड्ढे में रख दें और शिलादीप को भी उसी में रखकर, गीत और बाजे के शब्द करके उस गड्ढे को मिट्टी से भर दें।

श्लोक क्रमांक ६७ से ७० में वास्तुपुरुष से प्रार्थना की गई है कि आप शल्य का उद्धार करें तथा घर को धन-धान्य से पूर्ण रखें।

श्लोक क्रमांक ७१ से ७४ तक में बताया है कि इस प्रकार बलि सहित शल्य का उद्धार करने तीन प्रकार के भेद, उत्पाद और दारुण ग्रह के उत्पात ये सब नष्ट हो जाते हैं।

श्लोक क्रमांक ७५ से ७९ तक बताया है कि आचार्य, ब्राह्मण, ज्योतिषी, स्थपति को दान-दक्षिणा आदि देकर निवास करें। आचार्य को गौ दें, ऋत्विजों को दक्षिणा दें, दान और मान से ज्योतिषी और स्थपति आदि को यथाशक्ति दक्षिणा आदि देकर सन्तुष्ट करें। दीन, नेत्रहीन, गायक आदि को भी दक्षिणा दें। ब्राह्मणों को भोजन कराकर, बन्धु आदि से साथ भोजन कर निवास करें।

विश्लेषण

शल्योद्धार नामक इस अध्याय में सबसे पहले शल्य ज्ञात करने की छह विधियों का वर्णन है। भूमि के अन्दर स्थित नकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ हड्डी, कोयला, राख, भूसी आदि को शल्य कहा जाता है। ये शल्य भूमि के अन्दर रहने पर उस घर में निवास करने वाले व्यक्ति को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।



इस अध्याय में बताया है कि जिस स्थान पर शल्य हो उसमें बुरे स्वप्न आना, धन-हानि, स्वास्थ्य हानि (रुग्ण रहना) तथा मृत्यु की आशंका रहती है, अतः शल्य को ज्ञात कर, निकालना आवश्यक है। जिस स्थान पर शल्य हो वहाँ पालतू पशु असामान्य रूप से आवाज करते हैं। मृग, कपोत, गीदड़ आदि निर्भर होकर प्रवेश करते हैं। इन लक्षणों से ज्ञात होता है कि उस स्थान पर शल्य है।

भवन के किस भाग या स्थान में शल्य है, इसे ज्ञात करने की विधि बताई है।

शल्य के दोष को दूर करने के लिए शल्योद्धार विधि बताई है। इसमें शिलान्यास किया जाता है। कलश को साकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ, विभिन्न पवित्र नदियों का जल, सात स्थान की मिट्टी, रत्न, फल, बीज, कुंकुम, चन्दन आदि गन्ध, सोना, पारा, धान्य आदि से परिपूर्ण कर नन्दा आदि शिला की विधि विधान से पूजन कर स्थापना की जाती है। इस प्रकार विभिन्न दिशा में स्थापना करने से शल्य का दोष दूर होता है।

अध्याय-१३

गृहवेधनिर्णय

श्लोक क्रमांक १-१० में १६ प्रकार के गृहवेध बताए हैं:-

विवरण	संज्ञा	परिणाम
छिद्रों से हीन हो	अन्धक	बहुत अधिक रोग
दिशाओं में विच्छिद्र	काण	मनुष्य अन्धे पैदा होते हैं
अंग हीन	कुब्जक	कुष्ठ आदि रोग
जिसका द्वार पृथ्वी में हो	बधिर	सब दुःख या मरण
छिद्र, विकीर्ण (जहाँ तहाँ) हों	दिग्वक्र	गर्भ का नाश
जो बराबर पद में न रखा हो	रुधिर	अतिसार भय
ऊँचाई से हीन	चिपिट	नीचों की संगति
जिसमें अनर्थ दिखें	व्यंग	अंगहीनता
बाजू में ऊँचा	मुरज	धन का अभाव
ताल से हीन	कुटिल	नाश
जंघा से हीन	शंखपाल	कुत्सित रूप
दिशाओं में टेढ़ा	विकट	सन्तान का नाश
जिसमें पार्श्वभाग न हो	कंक	शून्यता
जो हल के समान उन्नत हो	कैंकर	स्त्री की हानि और प्रेष्यता
	कुट्टक	भूतदोष
	सुप्त	गृहस्वामी का मरण

गृहवेध परिणाम

लकड़ी के दोष

श्लोक क्रमांक ११ से १३ में लकड़ी के दोष तथा परिणाम का वर्णन है:-

दोष	परिणाम
बिजली से टूटा हुई लकड़ी	मरण
अग्नि से दग्ध	निर्धनता, संतान का नाश

वक्रकाष्ठ
अर्द्धशुष्क
व्यंग
सर्वच्छिद्र

परदेश में वास
स्वामी को भय
घोर रोग भय
मृत्यु का भय

विरूप, जर्जर, अग्रभाग से हीन, अर्द्धनग्न, अंग से हीन, छिद्रहीन, छिद्र से युक्त जो काष्ठ हों उनकी वर्ज दे।

पत्थर के घर का विचार

जो घर पाषाण के अन्तर्गत
गृह के मध्य भाग में स्थित पत्थर

शुभ का दाता, सुखवर्द्धक
सम्पूर्ण दोषों

बाह्यदोष

कोणवेध	घर के कोण के सामने में अन्य घर या कोण हो व्याधि, धन-नाश और शत्रुओं के संग झगड़े
दृग्वेध	प्रधान द्वार के सामने अन्य घर का द्वार हो धन-नाश, मरण
छिद्रवेध	जो समान घरों में एक नीचा हो पशु, धन का नाश
छायावेध	घर में दूसरे या तीसरे पहर में अन्य घर की छाया पड़े रोग, पशु हानि
ऋजुवेध	एक तरफ लंबा और एक तरफ कम हो महान् त्रास
वंशवेध	वंश के आगे वंश हो वंश की हानि
उक्षवेध	भुजा का संयोग, यूप के अग्रभाग में हो जाए विनाश और कलह
उच्चवेध	पूर्वोत्तर की भूमि ऊँची हो शुभदाई नहीं होता है।
संघात वेध	जिस घर में दो घरों की भित्ति एक स्थान में हो शीघ्र ही दोनों स्वामियों का मरण
दन्त वेध	पर्वत से निकाला हुआ पत्थर, दीवार के सामने हो शोक और रोग

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

पञ्चमः अङ्कः

अशुभ गृह

अशुभ गृहों का वर्णन श्लोक क्रमांक ३१ से ३९ तक किया गया है:-

- पर्वत की भूमि के ऊपर हो
- पर्वत के नीचे भाग में हों,
- घर पत्थरों से मिला हो
- पाषाणों से युक्त
- धारा के अग्रभाग में स्थित हो
- पर्वत के मध्य में मिला हो,
- जो नदी के किनारे पर स्थित हो
- शिखर के अर्न्तगत हो
- भित्तियों से भिन्न (अलग हो गए हों)हो,
- जो सदैव जल के समीप हो,
- जिसका द्वार रोता हुआ हो
- जिसमें काक, उल्लुओं का निवास हो,
- जो कपाट और छिद्रों से हीन हा
- जिसमें रात्रि में खरगोश का शब्द हो,
- जिसमें अजगर, सर्प का निवास हो,
- जो वज्र और अग्नि से दूषित हो,
- जो जल के स्नाव (बहाव) से युक्त हो,
- कुब्ज, काणा, बधिर हो,
- जो उपघात (ऊँचाई से गिर कर मृत्यु, लड़ाई में मरण) से युक्त हो,
- ब्रह्म हत्या से युक्त हो,
- जो शाला से रहित हो या शिखा से विहीन हो,
- भित्ति के बाह्य के जो काष्ठ रुधिर संयुक्त हो,,
- जिस घर के चारों कोणों में काँटे हों,
- जो श्मशान से दूषित हो या चैत्य (चबूतरा) पर स्थित हो,
- जो मनुष्यों के वास से हीन हो,
- जिसमें म्लेच्छ, चांडाल बसे हों,

- जो घर गड्डे के अर्न्तगत हो,
- जिसमें गोधा का निवास हो,
- इस पूर्वोक्त सब प्रकार के घर में कर्त्ता न रहे, रहे तो जीवित नहीं रहता हैं।

इसलिए बुद्धिमान मनुष्य इन पूर्वोक्त प्रकार के घरों को वर्ज दें।

अन्य विचार

श्लोक क्रमांक ४१ में बताया है कि अन्यगृह व पुराने गृह का काष्ठ नए घर में न लगवाएँ। इसी प्रकार जो गृहस्थियों के घरों की भित्तियाँ मिले हों, वे भय की दाता और पुत्रों को दुख की दाता होती हैं।

किले (दुर्ग) के लिए विचार

मनुष्य चारदीवार से दूर तक देख सके।

कूप, उद्यान, प्रपा, वापी, तड़ाग और जलाशय, मंदिर, देवस्थान, चैत्य, प्राकार, तोरण इनमें निरन्तर बसता है। उनके मध्य में स्थित घर शुभ होता है।

घर का निर्माण पहले दक्षिण, उसके पश्चात पश्चिम तथा उत्तर में बनवाएं।

घर के दक्षिण भाग में कूप दोष का दाता माना है, हो तो सन्तान की हानि, भूमि का नाश अथवा अद्भुत रोग होता है।

वृक्ष वेध

श्लोक ८५-८८ से में वृक्षवेध का वर्णन किया गया है:-

दिशा	वेध
पूर्व	पीपल, राजवृक्ष
आग्नेय	कदम्ब
दक्षिण	पिलखन, नीम
नैऋत्य	कण्टक
पश्चिम	वट, आम
वायव्य	केला

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

महर्षि उवाच

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

महर्षि उवाच

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

महर्षि उवाच

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

उत्तर	गूलर, केला
ईशान	फलवाले
श्लोक ८९ शत्रु का भय देने वाले वृक्ष:-	
पूर्व	फलवाले वृक्ष
दक्षिण	दूध के वृक्ष
पश्चिम	जल से उत्पन्न वृक्ष हों

श्लोक क्रमांक ९२-९७ में बताया है कि किन परिस्थितियों में वेध का दोष नहीं होता है:-

- मार्ग के मध्य में दोष नहीं होता है
- विदिशाओं में स्थित हो और दूर पर हो तो सदैव वेध नहीं है।
- नीच के स्थान में वेध होता है, कोण में भी वेध होता है।
- भित्ति के मध्य में दोष नहीं और न चैत्य के मध्य में दोष होता है।
- कमलों के मध्य में और बाण घातक में दोष नहीं होता है।
- विकोणों में और न फल के वृक्ष में दोष नहीं होता है।
- नीच जातियों में दोष नहीं है,
- न भग्न (टूटे) मंदिर में दोष नहीं,
- न जीर्ण गृहों के मध्य में दोष होता है।
- अत्यन्त ऊँचा और नीचा और मध्य में विषम लंघन जिसमें हो और
- मध्य में जहाँ जल और पर्वत हों इनमें भी वेध का दोष नहीं होता है।
- जिस मंदिर के अन्तर में बेल, अनार के वृक्ष, केशर लगाए हों

वेध परिणाम (समय अवधि)

श्लोक क्रमांक ९८ में ९९ में वेध दोष का परिणाम बताया है:-

वर्ष	परिणाम
छठवें	स्वामी का निधन
नवें	लक्ष्मी से रहित
चौथे	पुत्र का नाश
आठवें	सर्वनाश

एक पक्ष या एक मास या तीन ऋतुओं या एक वर्ष में घर शुभ व अशुभ फल का ज्ञान बुद्धिमान को हो जाता है। इसके अतिरिक्त कोई विचार नहीं रहता है।

आय आदि विचार

श्लोक क्रमांक १००-१०१ में दिशा व दोष बताएँ हैं:-

दिशा	आय	परिणाम
दक्षिण	गज	मरण, पुत्रों को महान् दोष
पूर्व, पश्चिम या उत्तर	सिंह	मरण, पुत्रों को महान् दोष

दिशा	दोष
पूर्व	वृष (आय)
पश्चिम	ध्वज (आय)
नैऋत्य	कण्ठीरव (गज आय)
ईशान	ध्वज (आय)

शुभ वृक्ष

श्लोक क्रमांक १०२-१०३ में शुभ वृक्ष का वर्णन किया है:-

जंभीर, पुष्प के वृक्ष, पनस, अनार, जाती, चमेली, शतपत्र (कमल), केशर, नारियल, पुष्प और कर्णिकार (कनेर)

पहिले वृक्षों को लगवाकर पश्चात् गृहों को बनवाएं। १०४

पहले नगर का विन्यास उसके पश्चात् गृहों का विन्यास करें।

दिशा अनुसार पताका (ध्वज, झंडी) का रंग

श्लोक क्रमांक १०७-१०८ में पताका का रंग बताया है:-

दिशा	पताका का रंग
पूर्व	पीली
अग्निकोण	कपिल
दक्षिण	काली
नैऋत्य	श्यामा
पश्चिम	शुक्ल
वायव्य	हरी
उत्तर	सफेद
ईशान	धवल
ईशान व पूर्व के मध्य	सफेद
पश्चिम व नैऋत के मध्य	रक्त

किंकणी (झालर) से युक्त सम्पूर्ण (वर्ण) रंग की पताका मध्य में होती है।

पताका का मान

श्लोक क्रमांक १०९-११० में पताका का मान बताया है:-

पताका	भुजा के प्रमाण
स्तम्भ	भुजा के प्रमाण
द्वार मार्ग के पूर्व भाग में ध्वजा	सोलह

Table with 2 columns and 10 rows of text.

(1) ... (2) ... (3) ...

Table with 2 columns and 4 rows of text.

विश्लेषण

इस अध्याय में गृहादि स्थान के आन्तरिक (घर के अन्दर स्थित) दोष तथा बाह्य (घर के बाहर स्थित) दोष का वर्णन किया गया है। समस्त दोषों को एक ही स्थान पर वर्णित करने से सुन्दरता बढ़ती है, अतः इस अध्याय में घर के आन्तरिक व बाह्य दोषों का वर्णन किया है। इसमें घर के अन्दर होने वाले १६ दोषों के नाम तथा परिणाम का वर्णन किया है। इसमें बताया है कि यदि घर के अन्दर स्थित दोषों का ज्ञान एक वास्तुशास्त्री या वास्तुविद को पहले से ही हो, तो वह निर्माण करते समय निर्माण में होने वाले त्रुटि के कारण उत्पन्न होने वाले दोषों का ध्यान रखेगा अर्थात् दोष मुक्त होगा। अन्धक, काण, कुब्जल, रुधिर, तुंगहीन, तल-वेध आदि जो विभिन्न दोष हैं वे सभी निर्माण में त्रुटि के कारण उत्पन्न दोष हैं।

उदाहरण के लिए बताया गया है कि अन्धक वह दोष में जिसमें निर्मित क्षेत्र घर या कमरों में रोशनदान या खिड़की आदि न हों, इस दोष का दुष्परिणाम रोग बताया है। अब यह स्पष्ट ही है कि जिस घर में खिड़की या रोशनदान नहीं होंगे वहाँ प्राणवायु का प्रवेश नहीं होगा जिससे उस गृह में निवास करने वाले रोग-ग्रस्त होंगे।

सामान्य रूप से घर के अन्दर होने वाले समस्त दोष निर्माण से संबंधित होने के कारण यदि संभव हो तो निर्माण को सुधार कर इन दोषों को दूर किया जा सकता है।

इसके पश्चात् इस अध्याय में बाह्य वेध का विचार किया है। बाह्य वेध सामान्य रूप घर की सीमा के बाहर स्थित दोष हैं। एक वास्तुशास्त्री या वास्तुविद् को इन दोष का ज्ञान होने पर ऐसे भूखण्ड जिन पर इन दोषों के उत्पन्न होने की आशंका हो, भूमि चयन के समय ही सावधानी ऐसे भूखण्ड का त्याग किया जा सकता है।

द्वार-वेध, अत्यन्ज के घर का वेध आदि ऐसे दोष हैं, जिनका निराकरण संभव नहीं है, अतः ऐसे भूखण्ड का चयन नहीं करना चाहिए।

उसके पश्चात् दिशानुसार पताका का रंग बताया है।



अध्याय ५

काश्यपशिल्प की विषय वस्तु



अध्याय ५

काश्यपशिल्प की विषय वस्तु

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
५.१	अध्याय ५	१
५.२	अध्याय ५	२
५.३	अध्याय ५	३
५.४	अध्याय ५	४
५.५	अध्याय ५	५
५.६	अध्याय ५	६
५.७	अध्याय ५	७
५.८	अध्याय ५	८
५.९	अध्याय ५	९
५.१०	अध्याय ५	१०
५.११	अध्याय ५	११
५.१२	अध्याय ५	१२
५.१३	अध्याय ५	१३
५.१४	अध्याय ५	१४
५.१५	अध्याय ५	१५
५.१६	अध्याय ५	१६
५.१७	अध्याय ५	१७
५.१८	अध्याय ५	१८
५.१९	अध्याय ५	१९
५.२०	अध्याय ५	२०
५.२१	अध्याय ५	२१
५.२२	अध्याय ५	२२
५.२३	अध्याय ५	२३
५.२४	अध्याय ५	२४
५.२५	अध्याय ५	२५
५.२६	अध्याय ५	२६
५.२७	अध्याय ५	२७
५.२८	अध्याय ५	२८
५.२९	अध्याय ५	२९
५.३०	अध्याय ५	३०

अध्याय ५

काश्यपशिल्प की विषय वस्तु



अध्याय ५

काश्यप-शिल्प की विषय वस्तु

क्रमांक	विषय वस्तु	पृष्ठ क्रमांक
५.१ अध्याय-१	कर्षण	६
५.२ अध्याय २	प्रासाद वास्तु	९
५.३ अध्याय-३	वास्तुहोम	१०
५.४ अध्याय ४	प्रथमेष्टका	११
५.५ अध्याय-५	उपपीठ	१२
५.६ अध्याय ६	अधिष्ठान	१३
५.७ अध्याय ७	नाल प्रतिष्ठा	१३
५.८ अध्याय ८	स्तम्भ	१४
५.९ अध्याय ९	बोधिका	१६
५.१० अध्याय १०	वेदिका लक्षण	१८
५.११ अध्याय ११	जालक लक्षण	१९
५.१२ अध्याय १२	तोरण लक्षण	२०
५.१३ अध्याय १३	वृत्तस्फाटिता के लक्षण	२१
५.१४ अध्याय १४	स्तम्भतोरण	२१
५.१५ अध्याय १५	कुम्भस्थललक्षणम्	२३
५.१६ अध्याय १६	वृत्तस्फाटित का वर्णन	२३
५.१७ अध्याय १७	द्वारविन्यास	२३
५.१८ अध्याय १८	कम्प-द्वार लक्षण	२३
५.१९ अध्याय १९	प्रस्तरलक्षणम्	२४
५.२० अध्याय २०	गल भूषण	२४



क्रमांक	विषय वस्तु	पृष्ठ क्रमांक
५.२१ अध्याय २१	शिखर के लक्षण	२५
५.२२ अध्याय २२	नासिका के लक्षण	२५
५.२३ अध्याय २३	प्रासाद लक्षण	२७
५.२४ अध्याय २४	मानसूत्रादय	२९
५.२५ अध्याय २५	आयादि लक्षण	३०
५.२६ अध्याय २६	गर्भविन्यास	३२
५.२७ अध्याय २७	एक तल विधान	३५
५.२८ अध्याय २८	दो मंजिला भवन	३६
५.२९ अध्याय २९	तीन मंजिला भवन	३६
५.३० अध्याय ३०	चार मंजिला भवन	३६
५.३१ अध्याय ३१	कूट, कोष्ठ व पंजर	३७
५.३२ अध्याय ३२	पाँच मंजिला भवन	३८
५.३३ अध्याय ३३	छह मंजिला भवन	३८
५.३४ अध्याय ३४	सात मंजिला भवन	३८
५.३५ अध्याय ३५	आठ मंजिला भवन	३९
५.३६ अध्याय ३६	नौ भूमि लक्षण	३९
५.३७ अध्याय ३७	दस मंजिला भवन	३९
५.३८ अध्याय ३८	ग्यारह मंजिल भवन	३९
५.३९ अध्याय ३९	बारह मंजिल भवन	४०
५.४० अध्याय ४०	तेरह मंजिला भवन	४०
५.४१ अध्याय ४१	सोलह मंजिला भवन	४०
५.४२ अध्याय ४२	मूर्धनष्टिका	४१
५.४३ अध्याय ४३	प्राकार	४२
५.४४ अध्याय ४४	मंडप	४५
५.४५ अध्याय ४५	गोपुर के लक्षण	४६

अध्याय	श्लोक	अर्थ
१	१	१
२	२	२
३	३	३
४	४	४
५	५	५
६	६	६
७	७	७
८	८	८
९	९	९
१०	१०	१०
११	११	११
१२	१२	१२
१३	१३	१३
१४	१४	१४
१५	१५	१५
१६	१६	१६
१७	१७	१७
१८	१८	१८
१९	१९	१९
२०	२०	२०
२१	२१	२१
२२	२२	२२
२३	२३	२३
२४	२४	२४
२५	२५	२५
२६	२६	२६
२७	२७	२७
२८	२८	२८
२९	२९	२९
३०	३०	३०
३१	३१	३१
३२	३२	३२
३३	३३	३३
३४	३४	३४
३५	३५	३५
३६	३६	३६
३७	३७	३७
३८	३८	३८
३९	३९	३९
४०	४०	४०
४१	४१	४१
४२	४२	४२
४३	४३	४३
४४	४४	४४
४५	४५	४५
४६	४६	४६
४७	४७	४७
४८	४८	४८
४९	४९	४९
५०	५०	५०
५१	५१	५१
५२	५२	५२
५३	५३	५३
५४	५४	५४
५५	५५	५५
५६	५६	५६
५७	५७	५७
५८	५८	५८
५९	५९	५९
६०	६०	६०
६१	६१	६१
६२	६२	६२
६३	६३	६३
६४	६४	६४
६५	६५	६५
६६	६६	६६
६७	६७	६७
६८	६८	६८
६९	६९	६९
७०	७०	७०
७१	७१	७१
७२	७२	७२
७३	७३	७३
७४	७४	७४
७५	७५	७५
७६	७६	७६
७७	७७	७७
७८	७८	७८
७९	७९	७९
८०	८०	८०
८१	८१	८१
८२	८२	८२
८३	८३	८३
८४	८४	८४
८५	८५	८५
८६	८६	८६
८७	८७	८७
८८	८८	८८
८९	८९	८९
९०	९०	९०
९१	९१	९१
९२	९२	९२
९३	९३	९३
९४	९४	९४
९५	९५	९५
९६	९६	९६
९७	९७	९७
९८	९८	९८
९९	९९	९९
१००	१००	१००

क्रमांक	विषय वस्तु	पृष्ठ क्रमांक
५.४६ अध्याय ४६	परिवार	४७
५.४७ अध्याय ४७	विनायक के लक्षण	४९
५.४८ अध्याय ४८	षण्मुख लक्षण	४९
५.४९ अध्याय ४९	लिंग के लक्षण	५०
५.५० अध्याय ५०	प्रतिमा के लक्षण	५१
५.५४ अध्याय ५४	मध्यम नवताल	५३
५.५५ अध्याय ५५	अधम नवताल विधान	५३
५.५६ अध्याय ५६	आठ ताल विधान	५३
५.५७ अध्याय ५७	सातताल विधान	५३
५.५८ अध्याय ५८	पिण्डिका के लक्षण	५३
५.५९ अध्याय ५९	पीठिका लक्षण	५४
५.६० अध्याय ६०	सकल स्थापना विधि	५४
५.६१ अध्याय ६१	सुखासन मूर्ति	५५
५.६२ अध्याय ६२	सोमस्कन्देश्वर	५६
५.६३ अध्याय ६३	चन्द्रशेखर मूर्ति	५६
५.६४ अध्याय ६४	वृषवाहन मूर्ति के लक्षण	५७
५.६५ अध्याय ६५	नृत्तमूर्ति के लक्षण	५७
५.६६ अध्याय ६६	गंगाधर मूर्ति	५९
५.६७ अध्याय ६७	त्रिपुरान्तक मूर्ति के लक्षण	५९
५.६८ अध्याय ६८	कल्याण मूर्ति के लक्षण	६०
५.६९ अध्याय ६९	अर्धनारीश्वर	६०
५.७० अध्याय ७०	गजहामूर्ति	६१
५.७१ अध्याय ७१	पाशुपतमूर्ति	६१
५.७२ अध्याय ७२	कंकाल मूर्ति के लक्षण	६२
५.७३ अध्याय ७३	हरिहर मूर्ति के लक्षण	६३

क्रमांक	विषय वस्तु	पृष्ठ क्रमांक
५.७४ अध्याय ७४ भिक्षाटन मूर्ति के लक्षण		६३
५.७५ अध्याय ७५ चण्डेशानुग्रह मूर्ति के लक्षण		६३
५.७६ अध्याय ७६ दक्षिणामूर्ति		६४
५.७७ अध्याय ७७ कालहा मूर्ति के लक्षण		६५
५.७८ अध्याय ७८ लिंगोद्भवमूर्ति के लक्षण		६५
५.७९ अध्याय ७९ वृक्षसंग्रहण		६६
५.८० अध्याय ८० शूललक्षण		६७
५.८१ अध्याय ८१ शूल की स्थापना		६७
५.८२ अध्याय ८२ रज्जुबन्ध लक्षण		६८
५.८३ अध्याय ८३ मिट्टी का स्थिरीकरण		७०
५.८४ अध्याय ८४ कल्क संस्कार लक्षण		७२
५.८५ अध्याय ८५ वर्णसंस्कार		७४



५.१ अध्याय-१

कर्षण

काश्यप शिल्प के इस पहले अध्याय में कुल ७५ श्लोक हैं। जिसमें कि सर्वप्रथम मंगलाचरण अर्थात् जिसमें कि महादेवजी की स्तुति की गई है। उसके पश्चात् काश्यप महादेव संवाद है जिसमें काश्यप ऋषि भगवान् शंकर से प्रार्थना करते हैं कि जगत के कल्याण के लिए कृपया वास्तुशास्त्र का वर्णन कीजिए।

उसके पश्चात् भूमि जोतने के लिए मुहूर्त गृहारंभ समय विचार में बताया है कि उत्तरायण अथवा दक्षिणायण में आश्विन, श्रावण व कार्तिक के महीने भूमि जोतने के लिए शुभ हैं।

नक्षत्र-पुष्य, हस्त, मघा, स्वाती, सावित्र, चित्रा, अनुराधा, श्रवण नक्षत्र शुभ हैं।

तिथि- उत्तम १, २, ३, ५, ६, ७, १३, १०, (शुक्ल पक्ष)

मध्यम १, १५, २, ५ (कृष्णपक्ष)

कनिष्ठ ६, १० (कृष्णपक्ष)

वार शुक्र, बुध, सोम व गुरु

राशि १, ४, ७, १० व ९ राशि के अतिरिक्त राशि शुभ

चन्द्रमा- उच्च राशि में शुभ, दूसरे भाव में

भाव	शुभ ग्रह	भाव	शुभ ग्रह
१	सौम्य	७	सौम्य
२	सौम्य	८	-
३	सभी	९	सौम्य
४	सौम्य	१०	सौम्य
५	सौम्य	११	सभी
६	-	१२	बुधगुरु

सौम्य-गुरु व शुक्र (पूर्णचन्द्र)

इस प्रकार अनेक रीति से शुभाशुभ समय की परीक्षा आदि कर, जितनी भूमि पर घर का निर्माण करना हो, उतनी भूमि को जोतना चाहिए। इसके पश्चात् चयन की गई भूमि के लिए भूमि परीक्षा करना चाहिए तथा ठोस भूमि पर निर्माण करना चाहिए। वर्णानुसार शुभ भूमि का वर्णन है, जिसमें कि यह बताया गया है, ब्राह्मण के लिए सफेद, क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए पीली, शूद्र के लिए काली रंग की भूमि शुभ है। उसके पश्चात् बलि देकर भूमि का अधिग्रहण करना चाहिए।

उसके पश्चात् युवा, सुन्दर, अलंकृत बैल जोड़ी लाकर भूमि को जोतना चाहिए। उसके पश्चात् अंकुरार्पण कर भूमि की उर्वरता का परीक्षण करना चाहिए। भूमि पर गोवंश को लाकर वहाँ रखना चाहिए इससे भूमि सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होती है। उसके पश्चात् भूमि में कोई शल्य हो तो उसे निकाल देना चाहिए। उसके पश्चात् भूमि को समतल कर दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन है।

शंकु की लम्बाई १५ अंगुल होती है। वह ठोस लकड़ी का बना होता है। भूमि में मध्य में ३० अंगुल की त्रिज्या का वृत्त बनाना चाहिए। उसके मध्य में शंकु को स्थापित करना चाहिए। दोपहर से पूर्व व पश्चात् शंकु के शीर्ष की छाया वृत्त की परिधि पर जहाँ स्पर्श करती है, उसे चिह्नित कर लेना चाहिए, यह पूर्व-पश्चिम रेखा होती है। इसमें मासानुसार अपच्छाया का संशोधन किया जाता है। इस प्रकार भूखण्ड पर दिशा का ज्ञान किया जाता है। उसके पश्चात् भूमि की खुदाई आरम्भ करना चाहिए। ८१ पद वास्तु की रचना करें तथा प्रत्येक देवता को पूजन कर शहद, घी व गुड़ के मिश्रण आहुति दें।

विश्लेषण

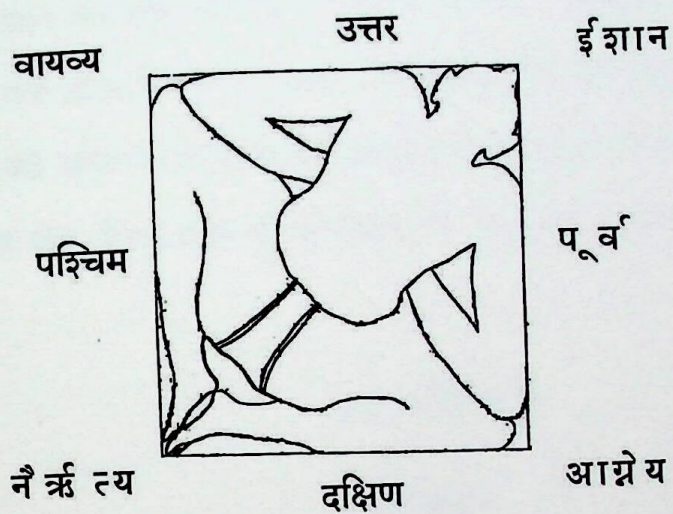
इस प्रकार से हमने देखा कि इस अध्याय में सबसे पहले मंगलाचरण किया गया है। मंगलाचरण में महादेवजी से प्रार्थना की गई है कि वे जगत के कल्याण के लिए वास्तुशास्त्र का कथन करने की कृपा करें। उसके पश्चात् शुभ मुहूर्त का वर्णन है, शुभ मुहूर्त में कार्य आरम्भ करने से प्रकृति का सहयोग प्राप्त होता है। शुभ मुहूर्त के विभिन्न आधार होते हैं जैसे मासानुसार, नक्षत्रानुसार, तिथि अनुसार, वारानुसार, राशि अनुसार तथा कार्य आरम्भ करते समय ग्रहों की स्थिति अनुसार। इनमें अधिकाधिक शुभ होने पर शुभ परिणाम प्राप्त होता है। अतः शुभ मुहूर्त में कार्य का आरम्भ करना चाहिए।

५.२ अध्याय २

प्रासाद वास्तु

इस अध्याय में कुल ३२ श्लोक हैं।

वास्तुपदविन्यास, वास्तुविद्या का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अंग है। जब हम किसी नगर, ग्राम,



वायु	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	ऋक्	अदिति	दिति	ईश
पाप	रुद्र	रुद्रजय	पृथ्वीधर			आप	आपवत्स	पर्जन्य
रोग							जयन्त	
शेष	मित्र		ब्रह्मा			समरी		महेन्द्र
वरुण								आदित्य
पुष्पदन्त								सत्यक
सुग्रीव	इन्द्र	विवस्वान			सावित्र	सवित्र	भृश	
दौवारिक							अन्तरिक्ष	
पितृ	मृग	भृंगराज	गन्धर्व	यम	राक्षस	वितथ	पूषा	अग्नि

कॉलोनी या राजमहल या रहवास, निवास, आवास की प्लानिंग करते हैं, तो सबसे पहला महत्वपूर्ण कार्य वास्तुपदविन्यास करना ही होता है। इसमें प्लॉट को विभिन्न भागों में विभाजित करते हैं। प्रत्येक भाग पद कहलाता है। प्रत्येक पद का एक देवता होता है, जिसे पद देवता कहते हैं। इसमें ९ X ९ अर्थात् ८१ पदविन्यास जिसे परमशायिक पदविन्यास भी कहते हैं, का वर्णन किया गया है। इसमें वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है। वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित विभिन्न देवता का वर्णन है।

इसके पश्चात् वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है:-महाजल से उत्पन्न अत्यन्त विशाल शरीर वाला, भूत के आकार वाले असुर ने देवताओं से युद्ध किया। सभी देवताओं के आयुध से उस प्राणी को जीतना संभव न था। तब सब देवताओं ने उस प्राणी को अधोमुख कर सुलाया। बीस सूत्र से उस भूत को बांधकर एक जगह स्थित कर दिया, वह वास्तुपुरुष कहलाया, वह वास्तुमूर्ति कहा गया। प्रत्येक निर्माण कार्य को आरम्भ करने से पूर्व वास्तुपुरुष का पूजन-बलि करना चाहिए अर्थात् उस स्थान का पदविन्यास कर, जिस भाग में जो देवता है, जो ऊर्जा है उसके अनुकूल निर्माण करना चाहिए।

५.३ अध्याय-३

वास्तुहोम

इस अध्याय में कुल १८ श्लोक हैं। जिसमें कि सर्वप्रथम प्रथम ईंट रखते समय, लिंग, मूर्ति आदि सभी प्रकार की स्थापना में जल से छिड़काव करना चाहिए। इसका वर्णन है, उसके पश्चात् पूर्व या ब्रह्म स्थान में हवन के लिए चौकोर वेदी निर्माण करें पूजन के पश्चात् हवन करें।

विश्लेषण

अध्याय २ व ३ में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है। इसमें यह बताया है कि भूखण्ड पर ऊर्जा के जो क्षेत्र होते हैं, उन्हें वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित देवताओं के नाम से अभिव्यक्त किया है। यह बताया है कि भूखण्ड पर वास्तुपदविन्यास कर विभिन्न देवताओं का क्षेत्र ज्ञात कर उसके अनुकूल निर्माण करना चाहिए, जिससे प्रकृति के अनुकूल निर्माण होता है। इससे कार्य में सफलता प्राप्त होती है। इसे ही वास्तु के अनुरूप निर्माण कहते हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक देवता के लिए हवन कर उस देवता से संबंधित ऊर्जा को बढ़ाने के विधान सांकेतिक रूप से बताएँ हैं।



५.४ अध्याय ४

प्रथमेष्टका

नींव का पत्थर

इस अध्याय में कुल ५० श्लोक हैं। इसमें सर्वप्रथम प्रथम ईंट को रखने के बारे में बताया गया है।

भूमि दो प्रकार की होती है:-

सुस्निग्धः-चिकनी, छोटे पत्थर वाली, खोदने में मुश्किल, जिसमें कम रेत हो

अस्निग्धः-एक अंजली खोदने पर, नमी) से युक्त होने पर तथा खोदने में आसान होने वाली भूमि।

पहले उचित गहराई तक भूमि की खुदाई कर, रेत आदि डालकर, कुटवाकर मजबूत आधार तैयार करें। उसके पश्चात् निर्माण के लिए उपयोगी विभिन्न सूत्रों का वर्णन है। उसके पश्चात् उत्तर दिशा में नौ हस्त लम्बाई व चौड़ाई तथा सोलह स्तम्भ वाला मंडप बनवाकर अलंकृत करें। मण्डप से एक तिहाई वेदिका बनवाएँ। उसके चारों ओर क्रम से चौकोर, वृत्ताकार, पद्माकार व अष्टकोणीय अग्निकुण्ड बनवाएँ। वेदी को सजाकर होम करें।

पत्थर के प्रासाद के लिए पत्थर की प्रथम ईंट रखें।

लकड़ी के प्रासाद के लिए लकड़ी की प्रथम ईंट रखें। सोलह मंजिला भवन के लिए सबसे निचली मंजिल के लिए उनतालीस अंगुल की शिला प्रयोग करें। जैसे-जैसे ऊपर की मंजिल बनवाएंगे तब प्रत्येक मंजिल के लिए दो-दो अंगुल करते हुए शिला (ईंट) का प्रयोग करते हैं इससे सबसे ऊपरी मंजिल के लिए नौ अंगुल की शिला (ईंट) का प्रयोग करने में आएगा। प्रत्येक मंजिल पर ऊपर की ओर जाते समय वजन कम होता जाता है अतः कम मान की शिला या ईंट का प्रयोग उचित है।

उसके पश्चात् शिला चयन की विधि का वर्णन किया है। उसके पश्चात् शिलान्यास विधि का वर्णन है। पवित्र (शिव) ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, पवित्र (शिव) दीक्षा ग्रहण किया हुआ, सर्वलक्षण सम्पन्न व वेदाध्ययन में हमेशा रुचि रखनेवाला, पवित्र आचार्य पानी में अवगाहन करके (डुबकी लगाकर) स्नान करें, उसके पश्चात् भस्म स्नान करें। नए वश पहनकर (सिर पर) साफा बांधकर, सब प्रकार के सुगन्ध वाले अनुलेपन व गन्ध लगाकर, पांच अंग में आभूषण (हार, चूड़ी, अंगूठी,

बाजूबन्ध, कमरपट्टा) पहनकर, (उसके पश्चात कवच महामन्त्र बोलकर) (पदार्थों को इकट्ठा कर) इष्टका (ईंट) को स्वच्छ करे। सोने या कपास के धागे से इष्टका पर अक्षर को लिखकर, उनकी स्थापना करें।

विश्लेषण

इस अध्याय में भूमि चयन के संबंध में बताया है कि निर्माण के लिए उपयुक्त भूमि का चयन कर निर्माण करना चाहिए। नींव खोदने के संदर्भ में कहा है कि जब तक ठोस आधार न आ जाए या जल न आ जाए तब तक खुदाई करना चाहिए। ठोस आधार ही भवन का भार वहन कर सकता है।

सबसे नीचे शिला की स्थापना करते हैं। इस शिला पर पूरे भवन का भार आता है, अतः यह शिला पूर्ण रूप से निर्दोष व दृढ़ होना चाहिए। इसका मान भी भवन की चौड़ाई व ऊँचाई के अनुसार होता है, जिससे वह ऊँचे भवन का भार वहन कर सकें। सभी मंजिल के स्तम्भ, एक के ऊपर एक होते हैं, सरल रेखा में होते हैं, उनका भार इस शिला पर ही स्थानान्तरित होता है। अतः शिला चयन तथा मान का अत्यधिक महत्व होता है। यह सारा कार्य (शिलास्थापना) प्रतिष्ठापूर्वक सावधानी से किया जाता है।

५.५ अध्याय-५

उपपीठ

इस अध्याय में कुल ३० श्लोक हैं। भवन या स्तम्भ का सबसे निचला भाग उपपीठ कहलाता है। इसके ऊपर अधिष्ठान आदि बनाए जाता है। उपपीठ कई प्रकार की होती है। इसकी नक्काशी के अनुसार इसका नाम निर्धारित किया जाता है। अलग-अलग देवताओं के मन्दिर के लिए अलग-अलग प्रकार की उपपीठ का प्रयोग करते हैं।

प्रतिभद्र, प्रतिसुन्दर, सौभद्र, कल्याणिका इन उपपीठों का वर्णन किया है।

भूत, व्याल, सिंह, मकर, पत्रजाति से उपपीठ के गले के भाग सहित सुशोभित करना चाहिए। प्रति के ऊपर मकर, कमल से ढँका मस्तक हो।



५.६ अध्याय ६

अधिष्ठान

इस अध्याय में कुल ११९ श्लोक हैं।

अधिष्ठान, उपपीठ के ऊपर तथा स्तम्भ के नीचे बनवाते हैं। इस अध्याय में सबसे पहले अधिष्ठान के पर्यायवाची शब्द बताए हैं:- धरातल, अधिष्ठान, आधार, धरणी, भुवन, पृथ्वी व भूमि।

उसके पश्चात् प्रतिबन्ध व पादबन्ध, प्रतिवक्त्र, प्रतिक्रम, अम्भोज केसर, पुष्प पुष्कल, श्रीबद्धान्त, मंचबन्ध, श्रेणीबन्ध, अब्जबन्ध, वप्रबन्ध, प्रतिसुन्दर, श्रीकण्ठान्त, कलशबन्ध, श्रीकर (श्रीकान्त), सुन्दरअम्बुज, नलिनकान्त, श्रीसौन्दर्य, स्कन्दकान्त, अम्बुजकान्त अधिष्ठान का वर्णन किया गया है। अधिष्ठान में यह भेद, उस पर किए गए अलंकरण के अनुसार होता है।

विश्लेषण

अध्याय ५ व ६ में उपपीठ व अधिष्ठान का वर्णन किया है। उपपीठ व अधिष्ठान भवन का आधार होते हैं। इसलिए इन्हें पीठ या आसन या जगति कहा जाता है। जिस प्रकार का भवन बनाया जाता है, जैसे नागर, द्राविड़ या वेसर उसके अनुसार तथा जिस वर्ण या देवी-देवता के लिए गृह बनाया जाता है, उसके अनुसार पीठ पर नक्काशी या मोल्डिंग बनाई जाती है। इसी नक्काशी के आधार पर उपपीठ व अधिष्ठान के भेद होते हैं। भवन के सभी अंग अनुपात में बनाते हैं। सामान्य रूप से अधिष्ठान की ऊँचाई, स्तम्भ की ऊँचाई की आधी होती है।

५.७ अध्याय ७

नाल प्रतिष्ठा (नाली की स्थापना)

इस अध्याय में कुल १४ श्लोक हैं। सर्व प्रथम नाली का स्थान बताया गया है:-प्रतिबन्ध में, प्रति के अन्त में, पट्टिका के अन्त में, गले के अन्त में, कुमुद में, वप्र के अन्त में, पादुका के अन्त में छिद्र करें तथा उसके ऊपर गले को बनवाए।

नाली का मान (अंगुल में)

ऊँचाई	१२	१५	१८	२१	२४
चौड़ाई	८	१०	१२	१४	१६

हंस की आकृति, हाथी के ओंठ के समान, वह (नीचे की ओर) लम्बी बनवाए। जैसा सुन्दर दिखे वैसा बनवाए। व्याल, सिंह या भूत इस प्रकार बनवाए, मानो वो नाल को संभाले हों। शुभ मुहूर्त में वारुण सूक्त के साथ शान्तिहोम कर नाली की स्थापना करना चाहिए।

५.८ अध्याय ८

स्तम्भ

इस अध्याय में २९ श्लोक हैं। सर्वप्रथम स्तम्भ के पर्यायवाची शब्द बताएँ हैं:- तलिप, चर, जंगम, स्थाणु, स्थूण व पाद।

लकड़ी के स्तम्भ का मान

स्तम्भ की ऊँचाई = २ अधिष्ठान की ऊँचाई

स्तम्भ के तल (निचले भाग) की चौड़ाई, (स्तम्भ की) ऊँचाई के छह भाग में से एक भाग या अधिक होती है।

स्तम्भ की चौड़ाई = $(१/१०)$ या $(१/९)$ या $(१/८)$ स्तम्भ की ऊँचाई

दीवार के पाद (कुड्य स्तम्भ) का मान

कुड्य स्तम्भ की चौड़ाई = $(१/२)$ या $(२/३)$ या $(३/४)$ लकड़ी के स्तम्भ का मान

विशाल स्तम्भ-प्रति से उत्तर की सीमा के अन्तर तक

निखात स्तम्भ-उपान से उत्तर के अन्त तक

स्तम्भ के मूल की चौड़ाई = $(१/७)$ या $(१/९)$ या $(१/१०)$ या $(१/११)$ या $(१/१२)$ स्तम्भ की ऊँचाई

स्तम्भ की ऊपर के भाग की चौड़ाई = (स्तम्भ के निचले भाग की चौड़ाई से एक भाग कम होती है।

स्तम्भ के प्रकार

ब्रह्मकान्त- मूल से अग्र तक वर्गाकार।

विष्णुकान्त-अष्टकोणिय स्तम्भ।

इन्द्रकान्त-छह कोण वाला।

चन्द्रकान्त-सोलह कोणवाला।

रुद्रकान्त-स्तम्भ के अग्र व मूल वर्गाकार, मध्य अष्टकोणाकार या सोलह कोण वाला या वृत्ताकार हो तथा कुम्भ व मण्ड आदि से संयुक्त हो (या) उससे रहित हो।

शिवच्छन्द-नीचे के भाग में चौकोर, मध्य में अष्टकोण, ऊपर गोल, तीनों भाग (नीचे, मध्य व ऊपर) समान।

व्यालपादुक-पत्र व स्तम्भ के बीच में, व्याल (चीता, बाघ, शेर) बनाए, यह कहलाता है।

गजपाद-जब स्तम्भ का मूल, हाथी के पैर के समान हो।

शुण्डु पाद-लम्बाई में गोल हो, हाथी की सूँड के समान हो, कुम्भ, मण्ड आदि से संयुक्त हो

पिण्डिपाद-उपरोक्त में जब मोतियों की माला से अलंकृत होता हो।

छत्रखण्ड-स्तम्भ के अग्र भाग चौरस हो, उसके नीचे अष्टकोणिय कमल हो, उसके नीचे मण्ड अष्टकोण हो, उसके नीचे कमल हो, उसके नीचे छत्र मूल वर्गाकार हो।

श्रीकण्ठ-उपरोक्तानुसार स्तम्भ में मध्यपट्ट अष्टकोण हो।

श्रीवज्र-मध्यपट्ट सोलह कोण हो।

क्षेपण स्तम्भ-मूल से अग्र तक वर्गाकार, तीन पट्ट क्षेपण सहित हो।

विश्लेषण

भवन के अंगों का वर्णन अध्याय पाँच उपपीठ से आरम्भ हुआ है। उपपीठ, अधिष्ठान, उसके ऊपर स्तम्भ, बोधिका, शिखर आदि अंग होते हैं। जैसा कि हमने देखा कि भवन के उपयोग (मंदिर, गृह आदि) तथा देवी-देवता के भेद से स्तम्भ के आकार (क्राससेक्शन) में भेद होता है। इस अध्याय में स्तम्भ के आकार तथा उस पर की गई नक्काशी के आधार पर स्तम्भ की संज्ञा बताई है।



५.९ अध्याय ९

बोधिका

इस अध्याय में कुल ३७ श्लोक हैं। इस अध्याय में सर्वप्रथम बोधिका के लक्षणों को बताया गया है। उसके बाद उसके भागों का वर्णन किया गया है, उसके पश्चात् बोधिका के आकार के अंलकारों का वर्णन किया गया है। इसके बाद फलिका का वर्णन किया गया है।, इसके बाद घट का वर्णन, घट की ऊँचाई, घट की चौड़ाई व अन्त में बोधिका की ऊँचाई का वर्णन किया गया है।

श्रेष्ठ बोधिका की चौड़ाई = १.२५ स्तम्भ के निचले भाग की चौड़ाई

मध्यम बोधिका की चौड़ाई = १ स्तम्भ के निचले भाग की चौड़ाई

कनिष्ठ बोधिका की चौड़ाई = १.२५ स्तम्भ के अग्र भाग की चौड़ाई

बोधिका की ऊँचाई = बोधिका की चौड़ाई होती है।

बोधिका के अंग

बोधिका के तीन भाग

- अर्धपट्टिक (ऊर्ध्वपट्टिका)
- बीच का भाग तरंग या लता आदि से भूषित
- मुष्टिबन्ध

मुष्टिबन्ध के अग्र भाग में दोनों ओर व्याल आदि को, हाथों से आधार दिया हो, ऐसा बनवाए, या मकर, व्याल, पट्टिका आदि से भूषित करें।

रत्नों की अलग-अलग श्रृंखला, बेल या अलग-अलग चित्रों से भरी पट्टिका के साथ बोधिका के मध्य में तरंग होती है।

चित्रबोधिका- अनेकानेक चित्रों से सुशोभित होती है

पत्र बोधिका-पत्तों से चित्रित होती है।

बोधिका के ऊपर पर चौकोर वीरकण्ठ होता है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई, स्तम्भ के बराबर तथा ऊँचाई, स्तम्भ की पौन भाग होती है।

फलिका

कनिष्ठ-तीन दण्ड चौड़ी फलिका

मध्यम-साढ़े तीन दण्ड मध्यम

उत्तम-चार दण्ड चौड़ी

सभी प्रकार के फलिका की ऊँचाई पौन दण्ड होती है।

उसकी ऊँचाई के तीन भाग

- फलिकासन्धि कहते हैं।
- उसके नीचे एक भाग होकर,
- उसके नीचे एक भाग का कमल या नागपत्र के समान होता है।

फलिका के नीचे घट बनवाए।

घट

	प्रियदर्शन	सौम्य	चन्द्रकान्त	श्रीधर
घट की ऊँचाई	२	१.७५	१.५	१.२५ दण्ड

घट की चौड़ाई = स्तम्भ के कर्ण की चौड़ाई

बोधिका की ऊँचाई:-

स्तम्भ की ऊँचाई	४५
स्तम्भ	२२
बोधिका की ऊँचाई	४
वीरकण्ठ	४
फलिका की ऊँचाई	५
घट की ऊँचाई	४
कंठ	१
मुख की ऊँचाई	१
पद्म	१



क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
१	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	१
२	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	२
३	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	३
४	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	४
५	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	५
६	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	६
७	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	७
८	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	८
९	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	९
१०	भारत के लोग हैं जिनका नाम है भारत	१०

इस अध्याय में स्तम्भ के ऊपर के अंग बोधिका, फलक आदि का वर्णन किया है। इन अंगों पर नक्काशी की जाती है। विशेष प्रकार के चित्रों से इन्हें सजाया जाता है।

५.१० अध्याय १०

वेदिका लक्षण

इस अध्याय में कुल १७ श्लोक हैं। इस अध्याय में सबसे पहले वेदिका के लक्षणों को बताया गया है। उसके पश्चात् वेदिका के मान के बारे में वर्णन किया गया है। एवं श्रेष्ठ, मध्यम व कनिष्ठ वेदिका के तीन प्रकारों का वर्णन किया गया है। और अंत में वेदिका के आकार के बारे में बताया गया है।

अब विशेष रूप से वेदिका के लक्षण का वर्णन करते हैं। वेदिका, अधिष्ठान के ऊपर तथा स्तम्भ के मूल के पास होती है।

वेदिका का मान

उत्तम मध्यम कनिष्ठ

३ २ १.५ दण्ड

वेदिका की ऊँचाई = $(१/६)$ या $(१/७)$ या $(१/८)$ स्तम्भ की ऊँचाई

वेदिका के प्रकार	कम्प	कंठ	या	गल	कमल
श्रेष्ठ	३	३		३.५	२.५
मध्यम	३.५	३.५		४.५	२.५
कनिष्ठ	४	४		५.५	२.५

वेदिका को कमल, पहाड़, भली प्रकार पत्ते से चित्रित करें।



५.११ अध्याय ११

जालक लक्षण

इस अध्याय में कुल १४ श्लोक हैं। सर्वप्रथम अध्याय में जाली के लक्षणों का वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् जाली के मान के बारे में बताया गया है। उसके पश्चात् जाली के प्रकार बताए हैं तथा उनके क्या लक्षण होते हैं।

स्तम्भ के कंठ (गला) में जाली का स्थान होता है। वेदिका के ऊपर जाली की योजना करें। जाली के लिए कभी भी वेदिका में छिद्र नहीं करना चाहिए।

जालक का मान

उत्तम मध्यम कनिष्ठ

जाली की चौड़ाई (दण्ड) ४ ३ २

जाली की ऊँचाई = (१ से २ गुणा) जाली की चौड़ाई

जालक के प्रकार

जाली छह प्रकार की होती है:- गोनेत्र, हस्तिनेत्र, नन्द्यावर्त, ऋजुक्रिया, पुष्पकर्ण

गोनेत्र:-जिसमें लम्बे होते हुए कंठ के पास छिद्र हो

हस्तिनेत्र:-चौकोर होकर कर्ण के पास छिद्र हो

नन्द्यावर्त:-जिसमें छिद्र पंचकोणिय होकर प्रदक्षिण क्रम से नन्द्यावर्त के अनुसार फूलों की

रचना हो

ऋजुक्रिया-दोनों स्तम्भों व कम्प सीधे होकर जाली भी सीधी हो

पुष्पकर्ण-नन्द्यावर्त के समान आकृति होकर छिद्र पुष्पकंठ के समान

सकर्ण-नन्द्यावर्त के समान आकृति होकर छिद्र डठल के समान हो

जालक का स्थान

(जाली) दो स्तम्भ व दरवाजे, दीवार के मध्य होना चाहिए।

सभा आदि की जाली, स्तम्भ की आधी ऊँचाई पर होना चाहिए। लोहा, लकड़ी या ईंट की जाली, दीवार में होना चाहिए।

विश्लेषण:- इस अध्याय में जालक या जाली का वर्णन किया है। निर्मित क्षेत्र में हवा व प्रकाश उचित मात्रा में प्राप्त हो इसलिए जाली का उपयोग किया जाता है। इससे भवन की भव्यता की वृद्धि होती है।

५.१२ अध्याय १२

तोरण लक्षण

इस अध्याय में कुल १३ श्लोक हैं। सर्वप्रथम अध्याय में स्तम्भ व तोरण के मान बताये गये हैं। इसके पश्चात् तोरण के प्रकारों का वर्णन किया गया है।

तोरण का मान

स्तम्भ की ऊँचाई	१०	९
चरण	७	६
झष	३	३

तोरण की चौड़ाई चार प्रकार की स्तम्भ की ऊँचाई (या चौड़ाई) के चार, पांच, छह या सात भाग बाहर होती है।

तोरण-स्थान व प्रकार

प्रासाद, मंडप आदि के मध्य भाग में, दीवार के बाहर तोरण होता है।

तोरण के तीन प्रकार होते हैं पत्र-तोरण, मकर-तोरण व चित्र-तोरण।

पत्र-तोरण-अर्धचन्द्र के आकार वाला तथा पत्तों के हारों से भूषित होता है।

मकर तोरण-पाँच मुँह वाला तथा दोनों ओर मकर के मुँह वाला, बीच में तल (या नदी) तथा विभिन्न फलों व बेलों आदि से अलंकृत गोलाकार होता है।

चित्र-तोरण-ऊपर के अनुसार, मध्य के भाग में तल या नदी होकर, उसके दोनों ओर मगर का मुँह करें। ऐसे ही भूत, विद्याधर, सिंह, व्याल, हँस आदि व मोतियों की माला, अलग-अलग छत्रों, रत्नों से विभूषित होता है।



विश्लेषण

नगर, मंदिर, महल तथा भवन के मुख्य द्वार जिन्हें गोपुर भी कहते हैं, पर तोरण बनाए जाते हैं। ये तोरण प्रवेश द्वार को भव्यता प्रदान करते हैं। समरांगण-सूत्रधार आदि ग्रन्थ का जब हम अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि ये तोरण सदैव ही निर्दोष रहना चाहिए। इनके बनाते समय भी शकुन का ध्यान रखते हैं। इन भंग होने पर नगर में विपत्ति का आशंका रहती है। अन्य ग्रन्थों में इनके भंग होने पर शान्ति के उपाय बताए हैं। इस अध्याय में बताया है कि तोरण को यथाशक्ति सजाना चाहिए, इससे नगर, गृह आदि में प्रवेश करते समय भव्यता, पूर्णता, संतुष्टि आदि का भाव जगता है।

५.१३ अध्याय १३

वृत्तस्फाटिता के लक्षण

इस अध्याय में ८ श्लोक हैं।

वृत्तस्फाटिता मान

	आरम्भ	वृद्धि	तक
छह प्रकार की चौड़ाई (व्यास) (अंगुल) ६		२-२	१६

वृत्तस्फाटित वृत्ताकार व लता से भूषित होता है।

वृत्तस्फाटिता स्थान

वृत्ताकार स्फाटिक स्तम्भ के तोरण, कुम्भलता व हार की चौड़ाई में बनवाना चाहिए।

५.१४ अध्याय १४

स्तम्भतोरण

इस अध्याय में ३५ श्लोक हैं।

स्तम्भतोरण मान

स्तम्भ (की ऊँचाई)	१०	९	८	६
शुद्ध द्वार (की ऊँचाई)	९	८	७	५.५

शुद्धद्वार की चौड़ाई = $(1/2)$ शुद्धद्वार की ऊँचाई $(+/-)$ (१ से ९ अंगुल)

द्वारयोग की चौड़ाई = १ या १.२५ या १.५ (द्वारस्तम्भ की चौड़ाई)

द्वारयोग की मोटाई = $(.७५$ या १ या १.५) द्वारयोग की चौड़ाई

= या $(1/8)$ द्वार योग की ऊँचाई

शुभ मुहूर्त में कार्य करना चाहिए।

स्तम्भतोरण-स्थान

दीवार की चौड़ाई के बारह भाग करें, पांच भाग बाहर, अन्दर के सात भागों की सीमा के पास, योग का मध्य आएगा, योग की चौड़ाई उसके अन्दर या बाहर एक समान होगी।

तोरण

दीवार के स्तम्भ के ऊपर की तोरण बताई गई।

द्वार तोरण

दरवाजे की ऊँचाई व चौड़ाई के बराबर, द्वारतोरण के स्तम्भ की होती है। उत्तर, वाजन या नक्काशी किया हुआ कमल और अष्टमंगल, पांच मुँह वाला फलक पहले कहे अनुसार बनवाए।

दोनों पार्श्व में शूल के साथ आईना, (पानी से भरा) कुम्भ, बैल, चामर (चंवर) की जोड़ी, श्रीवत्स, स्वस्तिक, शंख व दीप ये देव अष्टमंगल है। श्रीवत्स मध्य में करें, शेष दाएँ-बाएँ बनवाए।

लोहा, लकड़ी या पत्थर से द्वारतोरण बनवाए।

स्तम्भतोरण स्थान

स्तम्भतोरण स्थान स्तम्भ के बीच का अन्तराल में, हार के अन्तर के बीच में या कर्ण प्रासाद के मध्य में, शाला के अन्तराल के बीच के भाग में या सब घर में होना चाहिए।

५.१५ अध्याय १५

कुम्भस्थललक्षणम्

इस अध्याय में १५ श्लोक हैं।

कुम्भस्थल मान

स्तम्भ की चौड़ाई के बराबर = इसकी ऊँचाई होती है।

कमल की चौड़ाई = १.२५ स्तम्भ की चौड़ाई

५.१६ अध्याय १६

वृत्तस्फाटित का वर्णन

यह अध्याय, तेरहवें अध्याय के समान है।

५.१७ अध्याय १७

द्वारविन्यास

इस अध्याय में २२ श्लोक हैं।

यह अध्याय १४ के समान है।

५.१८ अध्याय १८

कम्प-द्वार (खिड़की) लक्षण

इस अध्याय में १० श्लोक हैं। कम्प-द्वार चारों दिशाओं या उपदिशा में होता है।

कम्पद्वार खिड़की या उपद्वार को कहते हैं।

मान

दो किवाड़ वाले, पांच (दस) हस्त की चौड़ाई वाली, स्थल से उत्तर तक की ऊँचाई वाला, कम्पद्वार होना चाहिए।



बनाने की विधि

भुवंग, पतंग व योग पहले बताए अनुसार, मोटाई के अन्दर की ओर (खिड़की के अन्दर), मजबूती से बैठाए।

योग के व्यास के समान मोटाई वाला, स्तम्भ की ऊँचाई वाला तथा मूल व अग्र से युक्त तरंग स्तम्भ होना चाहिए।

प्रत्येक कम्पद्धार की योजना, किवाड़ व झरोखें के साथ करें व मजबूत होना चाहिए।

५.१९ अध्याय १९

प्रस्तरलक्षणम्

इस अध्याय में १६ श्लोक हैं।

प्रस्तर या मंच का मान = $(\frac{1}{2})$ स्तम्भ की ऊँचाई

इसके अतिरिक्त इस अध्याय में प्रस्तर के विभिन्न वाजन, कपोत, अन्तरित, प्रति आदि का मान दिया है। सारे मान इस प्रकार होना चाहिए कि वह सुन्दर दिखे। इसे अनेकानेक पत्र, लता, मकरीबन्ध आदि से सुशोभित करना चाहिए।

विश्लेषण

प्रस्तर शब्द का अर्थ फैलाव या प्रस्तार होता है। प्रस्तर शब्द का एक अर्थ शिला या पत्थर होता है। स्तम्भ के ऊपर जो शिलाखण्ड रखा जाता है, जो फैला हुआ होता है उसे प्रस्तर कहते हैं। इस पर विशेष प्रकार की नक्काशी आदि की जाती है। मानसार, मयमत आदि ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन मिलता है।

५.२० अध्याय २०

गल भूषण

इस अध्याय में १३ श्लोक हैं। प्रस्तर के ऊपर तथा शिखर के नीचे के भाग को गल कहते हैं। इस अध्याय में गले के आभूषण या सजावट का वर्णन किया है। यह बताया है कि नागर पद्धति में गला चौकोर, द्राविड़ में अष्टकोण तथा वेसर में गोलाकार होता है।



५.२१ अध्याय २१

शिखर के लक्षण

इस अध्याय में २० श्लोक हैं। इस अध्याय में शिखर के मान आदि का वर्णन किया है। शिखर की ऊँचाई ऊपरी मंजिल के स्तम्भ के बराबर होती है।

शिखर की चौड़ाई को पांच भाग में विभाजित करें तो फलिका की चौड़ाई तीन भाग होती है।

शिखर के ऊपर वलिक स्थान = शिखर की ऊँचाई का पाँचवा भाग होता है।

स्तूपि की ऊँचाई = शिखर की ऊँचाई की आधी या पद्म की ऊँचाई की आधी होती है।

शिखर के आकार के अनुसार कुम्भ, फलिका व कुश्मल होता है।

अनेकानेक पत्र (पत्ते) व लताओं से शिखर को भूषित करना चाहिए।

५.२२ अध्याय २२

नासिका के लक्षण

इस अध्याय में २४ श्लोक हैं। इसमें बताया गया है कि शिखर के ऊपर ललाट नासिका होती है जिसकी शिखर की चौड़ाई के बराबर होती है।

नासिका

नासिका = $(\frac{1}{3})$, या $(\frac{1}{4})$ या $(\frac{1}{5})$ शिखर की चौड़ाई

नासिका की ऊँचाई = $(\frac{2}{3})$ या $(\frac{3}{4})$ शिखर की ऊँचाई

शक्तिध्वज

शक्तिध्वज की ऊँचाई $3 (\frac{1}{2})$ या $(\frac{3}{4})$ या $(\frac{1}{3})$ नासिका की ऊँचाई

शक्तिध्वज की ऊँचाई को तीन भागों में विभाजित करने पर दो भागों में किन्नरी (वृत्त) वक्त्र होता है व उससे शेष) एक भाग गल (कण्ठ) का मान होता है।

(शक्तिध्वज की) के दण्ड की चौड़ाई = गले की चौड़ाई



शक्तिध्वज के ऊपर, पत्र (खड्ग) या शूल होता है।

मुखपट्टी को बेल, मण्डल, छत्र आदि से अलंकृत करना चाहिए।

पत्र-तोरण या चित्र-तोरण या मकर-तोरण होना चाहिए। तोरण के मध्य में (हाथी की सूँड से) जल से अभिषेक होती हुई लक्ष्मी को बनवाना चाहिए।

महानासी

महानासी उत्तर, वाजन, अब्ज व क्षेपण के साथ बनवाना चाहिए।

नासिका के स्तम्भ की चौड़ाई = $(1 \text{ या } 1/2)$ ऊपर की मंजिल के स्तम्भ की चौड़ाई

नासिका के स्तम्भ की ऊँचाई = कंठ की ऊँचाई

स्तम्भ अष्टकोन, गोल, चौकोर या उसके (ऊर्ध्वस्तम्भ) के आकार के समान होते हैं।

नासिका की चौड़ाई = दो या तीन दण्ड होती है।

क्षुद्रनासी

क्षुद्रनासी की चौड़ाई = डेढ़, दो या तीन दण्ड होती है।

क्षुद्रनासी की ऊँचाई = $(2/3)$ क्षुद्रनासी की चौड़ाई

कपोत के आधार से, क्षुद्रनासिका की ऊँचाई गिनना चाहिए।

(क्षुद्रनासी के) शक्तिध्वज की ऊँचाई, प्रतिवाजन की सीमा तक होती है।

कंठ का मान = $(1/3)$ शक्तिध्वज की ऊँचाई

विश्लेषण

अध्याय २०-२३ में शिखर के अंगों का वर्णन है। इस बताया गया है कि शिखर का माप पूरे भवन के अनुपात में कितना होता है। शिखर के विभिन्न अवयव नासिका, कपोत, शक्तिध्वज, दण्ड आदि शिखर के अनुपात में बनाएँ जाते हैं। इससे पूरा भवन या मंदिर एक छन्द या लय में होता है। जिससे भवन सुन्दर दिखता है। यदि मंदिर है तो सभी अंग देवता या देवी के लिए बताए गए अनुपात में होते हैं। हम पहले ही देख चुके हैं कि चौड़ाई व ऊँचाई के अनुपात शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक होते हैं। जैसा भवन बनाना हो, उसके अनुसार सभी अनुपात लिए जाते हैं।

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

॥ अथ चतुर्थः सर्गः ॥

५.२३ अध्याय २३

प्रासाद लक्षण

इस अध्याय में ३४ श्लोक हैं।

सर्वप्रथम पर्यायवाची बताएँ हैं:-प्रासाद, सदन, हर्म्य (महल), धाम, निकेतन, मन्दिर, भवन, वास, गेह, दिव्य विमान, आश्रय, आस्पद (स्थान, जगह), आधार, प्रतिधिष्य।

संख्यावाचक शब्द

एक चन्द्र (चन्द्रमा), जीव, शिवांश, व्योम

दो वृक्ष, पंख, अश्विनी

तीन काल, अनल, शूल, आलेखन, गुण

चार वेद, अब्धि, युग, कोलक

पांच बाण, भूत, इन्द्रिय

छह सार चारमक, ऋतु, कौशिक

सात पाताल, ऋषि व धाता (धातु)

माता, लेक (लोक) व स्मर (कामस्थान) ये सात अंगुल के पर्यायवाची हैं।

आठ हाथी, पर्वत, वसु व मूर्ति

नौ शक्तिद्वार, गृहद्वार, सूत्र, अनन्तघन, आद्य व द्विज हैं।

दस आठ सह नाडिका, धर्म

ग्यारह कंशात (त्रिष्टुप्- ग्यारह अक्षर का छन्द), रुद्र

बारह शब्द, भास्कर, भानू

तेरह चन्द्र, आदित्यशिवांश

पन्द्रह पक्ष, तिथि

सोलह कला, मूर्तिद्वय

इस प्रकार समुद्र तक की संख्या का वर्णन है।

माप की इकाई

आठ परमाणु = एक पिशु

आठ पिशु = बालाग्र

आठ बालाग्र = एक लीख

आठ लीख = एक जूँ

आठ जूँ = एक यव

आठ यव = अंगुल

अंगुल संज्ञा

बारह अंगुल = स्तम्भ (वितस्ति)

चौईस अंगुल = किष्कु

चार हस्त = एक दण्ड

पच्चीस = प्राजापत्य

छब्बीस अंगुल = धनुर्मुष्टि

सत्ताईस = धनुर्ग्रह

अठाईस = प्राच्य

उन्नीस = वैदेह

तीस अंगुल = वैपुल्य

इकतीस = प्रकीर्णक

वर्ण उपयोग

ब्राह्मण धनुर्ग्रह व प्रकीर्णक

क्षत्रिय वैपुल्य व धनुर्मुष्टि

शूद्र प्राजापत्य



हस्त के उपयोग

हस्त

उपयोग

किष्कु

सभी जाति के घरों के लिए, वाहन, पलंग आदि

प्राजापत्य आराम, उद्यान।

धनुर्मुष्टि

ग्राम आदि

धनुर्ग्रह

कुँआ, नदी, उद्यान आदि

विश्लेषण

इस अध्याय में संख्यावाचक शब्द बताएँ हैं। शास्त्र में छन्द की दृष्टि से तथा कभी-कभी सांकेतिक रूप से जब कोई विषय कहना होता है तो संख्या के स्थान पर इनका प्रयोग किया जाता है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि गोपनीय विषय को इस प्रकार कहने की परम्परा शास्त्र में है। इस अध्याय में मान या माप की इकाई का वर्णन किया है। सबसे छोटी इकाई परमाणु बताई है। यह बताया है कि सारा निर्माण व्यक्ति के शरीर के अनुपात (अंगुल या हस्त) में किया जाता है। आगे आयादि सूत्र में अंगुल व हस्त मान का प्रयोग किया जाता है। अंगुल के तीन भेद होते हैं, हस्त आदि भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जितने बड़े क्षेत्र को मापना हो, उतनी बड़ी इकाई का प्रयोग किया जाता है।

५.२४ अध्याय २४

मानसूत्रादय

इस अध्याय में कुल ३५ श्लोक हैं, इस अध्याय में मानसूत्र के लक्षणों को बताया गया है। पाँच से बारह मंजिल के लिए आभास, विकल्प, जाति व छन्द मान का वर्णन है। इनके लिए चौड़ाई व ऊँचाई के शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक मान का वर्णन भी किया गया है।

- प्रासाद की चौड़ाई दीवार के स्तम्भ के बाहर या अन्दर या मध्य भाग से लेना चाहिए।
- ऊँचाई उपान से स्तूपि के शिखर के कोने तक गिनना चाहिए।
- सभा, मण्डप, शाला की चौड़ाई दीवार के मध्य से ले।

इस अध्याय में मानसूत्र, विन्याससूत्र व अवसान का वर्णन किया है।

इसके पश्चात दीवार के लिए मानसूत्र, वाहन व पलंग में और घरों के लिए मानसूत्र बताये हैं, अंत में विन्यास सूत्र, मानसूत्र व अवसान सूत्र इन सूत्रों के बारे में संक्षेप में बताया गया है।

५.२५ अध्याय २५

आयादि लक्षण

इस अध्याय में ५२ श्लोक हैं। आयादि गणित के वे सूत्र हैं, जिनकी सहायता से हम शुभ लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई, गहराई, मोटाई आदि का मान ज्ञात करते हैं।

योनि (शेषफल)	(मान/६) (३/८)
नक्षत्र (शेषफल)	(८/२७) मान
वार (शेषफल)	(९/२७)(परिमिती)
तिथि (शेषफल)	चौड़ाई/३०
आय (शेषफल)	(८/१०) ऊँचाई
व्यय (शेषफल)	(९/१०) ऊँचाई

शुभ योनि:- (१) ध्वज, (३) सिंह, (५) बैल व (७) हाथी।

शुभ वार:- (५) गुरु, (६) शुक्र, (४) बुध व (२) सोम

नक्षत्र:- यजमान के नक्षत्र तथा प्रासाद के नक्षत्र में विरोध नहीं होना चाहिए।

तिथि:- यजमान की जन्म तिथि तथा वास्तु की तिथि में विरोध नहीं होना चाहिए।

आय (शेषफल)	(लम्बाई X चौड़ाई) (८/१२)
व्यय (शेषफल)	(लम्बाई X चौड़ाई) (९/१२)
नक्षत्र (शेषफल)	(लम्बाई = चौड़ाई) (८/२७)
योनि (शेषफल)	(लम्बाई X चौड़ाई) (३/८)
वार (शेषफल)	(परिमिति) (९/७)
तिथि (शेषफल)	(परिमिति) (९/३०)



नागर आदि विमान

देश:-हिमालय से कन्याकुमारी के बीच के भाग को देश कहते हैं।

गुण:-सत्त्व, रज व तम

नागर	द्राविड	वेसर
सात्विक	राजसी	तामसी
हिमालय से विंध्य	विंध्याचल के पास कृष्णा वेण्णा से कन्याकुमारी	
पुलिंग	स्त्रीलिंग	नपुसकलिंग
विष्णु	ब्रह्मा	शंकर
ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य
शान्त	भोग, शौर्य व नृत्य	वाहन, सैनिक
चौकोर	अष्टकोण	गोल

विश्लेषण

इस अध्याय में आयादि सूत्रों को बताया है, ये सूत्र षड्वर्ग भी कहलाते हैं। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में आयादि के भिन्न-भिन्न सूत्र दिए हैं। विश्वकर्मप्रकाश, अग्निपुराण आदि ग्रन्थों में क्षेत्रफल को आधार बनाकर आयादि सूत्र दिए हैं। मनुष्यालय चन्द्रिका में परिधि को आधार बनाकर सूत्र बताएँ हैं। सभी ग्रन्थों में सूत्रों की संज्ञा आय, व्यय, योनि, नक्षत्र, तिथि, वार आदि दी है। आय, व्यय से अधिक होना चाहिए यह बताया है। नक्षत्र शुभ हों, योनि विषम हो। रिक्ता तिथि छोड़कर अन्य तिथि हो, क्रूर ग्रह का वार न हो। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि जब भी किसी भवन का निर्माण करते हैं तो व्यक्ति या देवता के अनुसार ही क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई आदि का निर्धारण किया जाता है। इससे पूरे क्षेत्र एक विशेष प्रभाव उत्पन्न होता है।

इस अध्याय में नागर, द्राविड़ व वेसर शैली का वर्णन है, उसका क्षेत्र बताया है। उनके गुण-धर्म, प्रकृति, व्यवहार बताएँ हैं। यहाँ यह भी संकेत मिलता है कि जिस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना हो तो उस प्रकार का क्षेत्र बनाना चाहिए अर्थात् सात्विक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए नागर शैली में वर्णित आकार आदि का प्रयोग करना चाहिए।

५.२६ अध्याय २६

गर्भविन्यास

इस अध्याय में ५४ श्लोक हैं। इसमें बताया गया है कि गर्भविन्यास करना अत्यन्त आवश्यक

है।

व्यक्ति	गर्भविन्यास का स्थान
ब्राह्मण	अधिष्ठान की प्रति के ऊपर,
राजा	कुमुद के ऊपर तथा
वैश्य	जगती के ऊपर
शूद्र	होम के ऊपर
अन्य के लिए	प्रथम ईष्टिका

पात्र

सोने, चाँदी व ताम्बे का क्रम से उत्तम, मध्यम व अधम होता है अथवा कांसे का पात्र ग्रहण करना चाहिए।

१ से १६ मंजिल के लिए मान

आरम्भ	वृद्धि	तक (अंगुल)
५	१-१	२०

इस प्रकार चौड़ाई व ऊँचाई के मान का वर्णन भी किया गया है।

गर्भविन्यास से पूर्व भवन के सामने एक सुसज्जित मंडप का निर्माण करते हैं। उसके पश्चात् विभिन्न दिशा में अग्निकुण्ड बनाया जाता है।

अग्निकुण्ड

दिशा अग्निकुण्ड आकार
 पूर्व चौकोर
 दक्षिण धनुषाकार
 पश्चिम वर्तुलाकार (गोलाकार)
 उत्तर कमलाकार

कुण्ड तीन मेखला, नाभि व योनि के सहित होना चाहिए।

कुण्ड तथा वेदी के स्थान आड़ने के समान चिकना होना चाहिए।

पूजन

उस स्थान को गाय के गोबर से लीपें वहाँ मण्डल बनाकर उसके ऊपर कलश की स्थापना करें। विधिविधान से पूजन कर हवन करें।

रात्री को जागकर सुबह शुभ मुहूर्त में, शुभ नक्षत्र, शुभ लग्न, शुभ तिथि, व वार में दीवार के आठ भाग करके बाहर के चार भाग छोड़कर बचे भाग में गर्भपात्र को रखें।

पदार्थ

रत्न, सोना, धान्य व फल, मिट्टी, कन्द, स्फटिक, शंख, पुष्पराग, सूर्यकान्त, वैदूर्य, विभिन्न खनिज गर्भपात्र व गर्भस्थान में रखे जाते हैं।

मिट्टी:-तालाब की, नदी की, सफेद में धान्य की, हल के साथ अंगुली के पास, हाथी व बैल के सींगों के पास



स्थान	पदार्थ	
मध्य भाग	कमल का कन्द	
पूर्व	कुमुद का कन्द	साल
दक्षिण	उत्पल का कन्द	चावल
पश्चिम	सौगन्धी का कन्द	कोद्रव
उत्तर	उशीरकन्द	माष
आग्नेय	माष	
नैऋत्य	चावल	
वायव्य	प्रियंगु	
ईशान	कुलित्थ	

इस प्रकार से हृदय मन्त्र पूर्वक गर्भ पात्र गड्ढे में रखें। सभी वाद्यों के साथ नृत्य व गायन करते हुए जय घोष शब्द के साथ, ब्रह्मघोष के साथ, प्रासाद बीज का उच्चारण करते हुए गर्भपात्र की स्थापना करें।

विश्लेषण

गर्भविन्यास नामक इस अध्याय में वर्ण के अनुसार गर्भविन्यास का वर्णन किया है। ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए गर्भ का स्थान बताया है। उसके पश्चात् मंजिला की संख्या के अनुसार गर्भ पात्र का मान बताया है। जितना चौड़ा या ऊँचा भवन होगा, गर्भपात्र भी उसी अनुसार में बड़ा होता है। इसे ही शिलान्यास भी कहते हैं। मानसार, मयमत आदि ग्रन्थों में मंदिर, नगर, जलाशय आदि के लिए गर्भविन्यास का वर्णन मिलता है। जैसा देवी-देवता होता है, उसके अनुसार ही गर्भविन्यास के चिह्न होते हैं। गर्भविन्यास में मिट्टी, धान्य, औषधि, खनिज, गन्ध आदि का प्रयोग किया जाता है, इससे सांकेतिक रूप से दिशा व पदार्थ के संबंध का भी ज्ञान होता है।



संस्कृत

संस्कृतम् । १ । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।
संस्कृतं तस्यैव नाम । अथ संस्कृतस्य लक्षणम् ।

५.२७ अध्याय २७

एक तल विधान

इस अध्याय में ७२ श्लोक हैं। इस अध्याय में बताया गया है कि चौड़ाई व ऊँचाई के विभिन्न अनुपात से भवन शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक ऐसे पाँच प्रकार के होते हैं।

शिखर, नासिका, आकार आदि के भेद से एक मंजिला भवन कई प्रकार के होते हैं:-जयद्वन्द, श्रीभोगान्त, श्रीभद्र, श्रीविशाल, स्वस्तिबन्ध, सुशोभन, श्रीकर, वृत्त केसर, राजकेसर, कल्याण सुन्दर, कौशल

देवता न्यास

दिशा देवता

पूर्व स्कन्द

दक्षिण दक्षिणामूर्ति,

पश्चिम विष्णु या लिंगोद्भव

उत्तर ब्रह्मदेव

देवतान्यास भद्र में (मंडप)

दिशा देवता

दक्षिण सिद्धिविनायक

पूर्व या पश्चिम नृतमूर्ति

उत्तर दिश दुर्गा या क्षेत्रपाल

अधिष्ठान के ऊपर

दिशा देवता

पूर्व स्कन्ध, सफेद हाथी के ऊपर बैठे हुए इन्द्र या कमलासन पर बैठे ब्रह्म

दक्षिण दक्षिणामूर्ति या वीरभद्र

पश्चिम नृसिंह या सौम्य मूर्ति (कुबेर)

उत्तर कमल पर बैठे ब्रह्मदेवता



५.२८ अध्याय २८

दो मंजिला भवन

इस अध्याय में ५४ श्लोक हैं। इस अध्याय में दो मंजिला भवनों का वर्णन है। इसमें शान्तिक आदि अनुपात से ऊँचाई के मान का वर्णन किया है। शिखर, कूट, नासी आदि के भेद से दो मंजिला भवनों के अठारह प्रकार बताएँ हैं:- स्वस्तिक स्वस्तिभद्र श्रीकर, कैलाश, रुद्रकान्त, स्वस्ति बन्ध, कल्याणसुन्दर, पांचाल विष्णुकान्त, गान्धार, मनोहर, शिवकान्त, कुबेरकान्त आदि।

जब भवन होम से स्तूपि तक ईंटों या पत्थरों से बना हुआ हो तो उसे पुरुष भवन कहते हैं। पत्थर व ईंट से बने भवन को संमिश्र कहते हैं।

पत्थर व उसके ऊपर ईंटों से बने, ईंट व लकड़ी के संमिश्रण से बना घर षण्ड कहते हैं।

५.२९ अध्याय २९

तीन मंजिला भवन

इस अध्याय में ७२ श्लोक हैं। इस अध्याय में तीन मंजिला भवनों का वर्णन किया है। इसमें शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक मान के लिए अधिष्ठान, स्तम्भ, मंच आदि के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के तीन मंजिला भवन होते हैं:- स्वस्तिक रुद्रकान्त शिवकान्त विष्णुकान्त शुद्धाभिधान विमानाकृति, ब्रह्मकान्त, हस्तिपृष्ठ, वृत्तकूट, श्रीकण्ठ, सुमंगल, गान्धार, श्रीविशाल, श्रीभोगादय आदि।

५.३० अध्याय ३०

चार मंजिला भवन

इस अध्याय में ६० श्लोक हैं। इस अध्याय में चार मंजिला भवनों का वर्णन किया गया है। इसमें शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक मान के लिए अधिष्ठान, स्तम्भ, मंच आदि के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के चार मंजिला भवन होते हैं:- ब्रह्म, श्रीकण्ठ, श्रीमण्डन, श्री भवन्त, श्रीकान्त, श्रीविशाल, सुखावह, जयावह, धाराकान्त आदि।

५.३१ अध्याय ३१

कूट, कोष्ठ व पंजर

इस अध्याय में ३५ श्लोक हैं। इस अध्याय में कूट, कोष्ठ व पंजर के लक्षण बताएँ हैं।

कर्णकूट की ऊँचाई = प्रस्तर की ऊँचाई के बराबर होती है। कोष्ठ आयताकार होता है, यह दीवार व चार स्तम्भ से युक्त होता है।

कूटकोष्ठ के नीचे स्तम्भ तथा ऊपर प्रस्तर, कंठ व शिखर एवं एक या अनेक स्तूपि होती है। कूट की चारों दिशाओं में चार नासिका तथा एक स्तूपि के साथ बनवाएँ।

शाला के दोनों ओर ललाट नाम की नासिका होती है। वह शाला की चौड़ाई के बराबर चौड़ाई व मुखपट्टी तक उसकी ऊँचाई होती है।

	नागर प्रासाद	द्राविड़	वेसर
स्तूपि कूट व कोष्ठ में स्तूपि की संख्या	३	२ या ३	१ या ४

पद्धति की शाला में स्तूपि होती है पद्धति में शाला में एक या चार स्तूपि होती है।

कूट, कोष्ठ के गल की जगह देवता होते हैं।

पंजर

उपान से उत्तर तक नौ भाग किए जाए तो उपपीठ एक भाग, अधिष्ठान दो भाग, स्तम्भ की ऊँचाई चार भाग, मंच डेढ़ भाग, वेदिका आधा भाग होती है, कपोत के सीमा तक गल की ऊँचाई होती है या प्रतिवाजन के सीमा तक पंजर की ऊँचाई बताते हैं।

पंजर नासिका के आकार के या कूट, कोष्ठ या हस्तिपृष्ठ के आकार के होते हैं।

पंजर की चौड़ाई उ कर्णकूट के बराबर, डेढ़ गुना, पौने दो गुना होती है।

पराक्रमी, गोपान (छप्पर को संभालने के लिए उसके नीचे लगी टेढ़ी बल्ली, वलभी) को आधार देते हुए (टिके हुए), हाथ व पैर दोनों, आँखें फैली हुई तथा जटा बिखरी हुई, रौद्र रूप में, नृत्य की मुद्रा लिए हुए, काजल के समान काले इस प्रकार बनवाए।

या गोपान को हाथों से या पैरों से आधार देते हुए, ऐसे हाथी, हंस, सिंह या बाघ दिखाते हैं।

या गोपान का सिर आधार पर दिया हुआ होता है और हाथ-पैर जहाँ हैं, वैसे ही दिखाएँ। मंच का जो कपोत है, इसी कपोत पर विशिष्ट नक्काशी की गई है, इसे गोपान कहते हैं।

५.३२ अध्याय ३२

पाँच मंजिला भवन

इस अध्याय में ४८ श्लोक हैं। इस अध्याय में पाँच मंजिला भवनों का वर्णन किया गया है। इसमें शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक मान के लिए अधिष्ठान, स्तम्भ, मंच आदि के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के पाँच मंजिला भवन होते हैं:-ब्रह्मकान्त, प्राजापत्य, स्वयंभुव, भद्रकान्त, सर्वतोभद्र, वीरभद्र आदि।

५.३३ अध्याय ३३

छह मंजिला भवन

इस अध्याय में ३० श्लोक हैं। इस अध्याय में छह मंजिला भवनों का वर्णन किया गया है। इसमें शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक मान के लिए अधिष्ठान, स्तम्भ, मंच आदि के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के छह मंजिला भवन होते हैं:-अम्बुजासन, सुशंकर, भद्रलीनक, शिवभद्र, नागेन्द्र आदि।

५.३४ अध्याय ३४

सात मंजिला भवन

इस अध्याय में ३४ श्लोक हैं। इस अध्याय में सात मंजिला भवनों का वर्णन किया गया है। इसमें शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक मान के लिए अधिष्ठान, स्तम्भ, मंच आदि के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के सात मंजिला भवन होते हैं:-

समुज्जवल, श्रीछन्द, श्रीविशाल, श्रीप्रिय, रुद्रकान्त, वृत्तभद्र, सुकृत, शिवभद्र, भद्र या भद्रपंजर, शिव सौख्य, शिवप्रीतिक आदि।



५.३५ अध्याय ३५

आठ मंजिला भवन

इस अध्याय में ३१ श्लोक हैं। इसमें शान्तिक आदि भवन के अनुपात के अनुसार ऊँचाई के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के आठ मंजिला भवन होते हैं:- वागीश, अष्टभाग, पर्वत, कैलास आदि।

५.३६ अध्याय ३६

नौ भूमि लक्षण

इस अध्याय में ३२ श्लोक हैं। इसमें शान्तिक आदि भवन के अनुपात के अनुसार ऊँचाई के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के नौ मंजिला भवन होते हैं:-ललितभद्रक, ब्रह्मकान्त, प्रादेश, श्रीवर्धन, सुपद्म, कृतवर्धन, वृत्तगेह आदि।

५.३७ अध्याय ३७

दस मंजिला घर के लक्षण

इस अध्याय में ३३ श्लोक हैं। इसमें शान्तिक आदि भवन के अनुपात के अनुसार ऊँचाई के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के दस मंजिला भवन होते हैं:- नरकान्त, अत्यन्तकान्त, मन्त्रपूत, कान्त, ईश्वरकान्त आदि।

५.३८ अध्याय ३८

ग्यारह मंजिल भवन

इस अध्याय में ३८ श्लोक हैं। इसमें शान्तिक आदि भवन के अनुपात के अनुसार ऊँचाई के मान का वर्णन किया है। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के दस मंजिला भवन होते हैं:- ब्रह्मकान्त, विजय, सर्वार्हक, इन्द्रकान्त, गणिकाशालक, इन्द्रकान्त, कर्णविशाल आदि।

५.३९ अध्याय ३९

बारह मंजिल भवन

इस अध्याय में ११ श्लोक हैं। कूट, शाला, पंजर, नासिका, अधिष्ठान शिखर आदि के भेद से विभिन्न प्रकार के बारह मंजिला भवन होते हैं।

५.४० अध्याय ४०

तेरह मंजिला भवन

इस अध्याय में ९ श्लोक हैं। इसमें अधिष्ठान, स्तम्भ, प्रस्तर आदि की ऊँचाई के मान का वर्णन किया है।

५.४१ अध्याय ४१

सोलह मंजिला भवन

इस अध्याय में ७१ श्लोक हैं। इस अध्याय में सोलह मंजिला भवन के लिए प्रत्येक मंजिल की चौड़ाई के मान वर्णन किया है। इसी अध्याय में प्रत्येक मंजिल के लिए अधिष्ठान, स्तम्भ, प्रस्तर आदि के मान का वर्णन किया है। शिखर आदि के अनुसार विभिन्न प्रकार के सोलह मंजिला भवन होते हैं:-ब्रह्मकान्त, सारस्वत, प्रादेश, श्रीकर, पार्वती, सुशांभव आदि। इसमें बताया गया है कि विधिपूर्वक घंटा आदि अलंकार, अलिन्द तथा सीढ़ियों के साथ भवन बनवाना चाहिए। उचित प्रकार से मंडप का निर्माण करना चाहिए। मनोहर चित्र बनवाना चाहिए।

उपरोक्तानुसार जो मंदिर का निर्माण करता है वह धनवान, श्रीमान, पुत्र-पौत्र, स्त्रियों, दास-दासी व अन्य के साथ आनन्दित होता है तथा उसकी अनेक पीढ़ियाँ पाप से मुक्त रहती है।

विश्लेषण

अध्याय २७ से ४१ तक में एक से सोलह मंजिल तक के भवन के मान तथा संज्ञा का वर्णन किया है।

इनमें बताया है कि प्रत्येक मंजिल से ऊपर के मंजिल की ऊँचाई तथा चौड़ाई एक निश्चित अनुपात में कम होती जाती है। इससे भवन स्थिर रहता है। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में सामान्य रूप से सोलह मंजिल तक के भवनों का वर्णन मिलता है। भवन के गुण-धर्म उनके नाम से प्रकट होते हैं।



इन अध्यायों में नागर, द्राविड़ व वेसर शैली के भवन शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक अनुपात प्राप्त होते हैं साथ ही जाति, विकल्प, आभास व छन्द प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।

५.४२ अध्याय ४२

मूर्धेनष्टिका

इस अध्याय में ४८ श्लोक हैं। इसमें शिखर की आधी ऊँचाई पर जहाँ महानासी समाप्त होती है वहाँ पर मूर्धेष्टिका स्थापित करने की विधि का वर्णन किया है।

भवन के सामने १६ स्तम्भ का सुसज्जित मंडप बनवाना चाहिए। मंडप के मध्य वेदिका बनवाना चाहिए।

दण्ड व मूर्धेष्टिका भी पंचगव्य से प्रक्षालन करना चाहिए। उनका विधि पूर्वक पूजन कर, हवन करें। रात्रि जागरण करके शुभ प्रभात में आचार्य नए वस्त्र, साफा, भस्म, रुद्राक्ष धारण करें। इसी प्रकार शिल्पी भी आभूषण आदि को धारण कर मण्डप में प्रवेश करें। दण्ड की गन्ध, फूल से पूजा करके मन्त्रों से पूर्णाहुती दें। शुभ मुहूर्त में आचार्य तथा शिल्पी पुण्यवाचन करके मूर्धेष्टिक की स्थापना करें। यथास्थान रत्नों की स्थापना कर पूजन करें। उसके पश्चात् उसे गुड़ के पानी, कराल, चूने आदि से मजबूत करने का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् स्थान को स्वर्ण, चाँदी या ताम्बे से आच्छादित करने का वर्णन है तथा आचार्य व शिल्पी को दान-दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करना चाहिए।

विश्लेषण

भवन की मूर्धा में ईंट स्थापना की विधि मूर्धेनष्टिका कहलाती है। यह कार्य समारोहपूर्वक विधि-विधान से किया जाता है। इसे भवन का निर्माण कार्य पूर्ण होने पर किया जाता है। अन्य ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि वास्तुपुरुष की स्वर्ण में प्रतिमा बनवाकर शिखर के अन्दर स्थापित किया जाता है। शिखर में यन्त्र आदि भी स्थापित किए जाते हैं।



[Faint, illegible text in Devanagari script, likely bleed-through from the reverse side of the page.]

५.४३ अध्याय ४३

प्राकार

इस अध्याय में ९२ श्लोक हैं। प्राकार शाला व प्रासाद की रक्षा के लिए होता है। इसमें विभिन्न प्रकार के परकोटों का वर्णन है।

इसमें अधिष्ठान, स्तम्भ, उत्तर, तुला आदि के मान को भी बताया है। इस अध्याय में विन्यास का वर्णन भी है:-

पद/दिशा

अग्नि पद

नैऋत्य

वायुकोण

ईशान

भृश

आग्नेय व दक्षिण दिशा के बीच

इन्द्र व ईशान के बीच

भृंगराज

नैऋत्य व पश्चिम के बीच

उसके दोनों तरफ उत्तम

सोम व वायव्य के बीच

सोम व ईशान के बीच

उसके पास में पलंग सहित शयन का स्थान होना चाहिए।

पुष्पदन्त या महेन्द्र पद

गृहक्षत

सोम के पास

उपयोग

रसोई घर

शस्त्रागार

शयन स्थान

योगशाला

योग शाला

सूतिकागृह

स्नान घर

अनाज रखने का स्थान

ग्रन्थालय

व्यंजनालय

वस्त्रागार

देवी (गौरी) का मंदिर

पुष्पमण्डप

अनाज भण्डार

कुँआ

दूसरा प्राकार

यहाँ अपने को पद विन्यास कर किस पद में क्या होना चाहिए यह दर्शाना चाहिए ।

इन्द्र व शंकर स्थान (ईशान) के मध्य	विद्यास्थान
शंकर व श्री के बीच	धनस्थान
दक्षिण व आग्नेय के मध्य	पुष्प मंडप
दक्षिण व नैऋत्य के मध्य	स्नान के लिए पानी
नैऋत्य व वारुण के मध्य	पुराण सुनने का मंडप
वारुण व वायव्य के मध्य	शस्त्रागार
वायव्य व उत्तर के मध्य	शयन स्थान
उत्तर व ईशान के मध्य	यज्ञ मंडप
जयन्त पद	स्नान गृह
आग्नेय पद	भोजन गृह

मालिका के चारों ओर शंकर की (अलग-अलग) मूर्तियों की जगह होती है ।

ईशान पद	नृत्यमूर्ति
आग्नेय	वृषवाहन
नैऋत्य	पार्वती व स्कन्द
वायव्य दिशा	कंकाल
जयन्त	भिक्षाटन
सत्य	सुखासन
वितथ	त्रिपुरान्तक
सुग्रीव	हरिहर
गन्धर्व	चन्द्रशेखर
शोष	कामदहन
मुख्य	कालारि
उदिति (अदिति)	अर्धनारीश्वर
महेन्द्र	कल्याणमूर्ति
पर्जन्य	क्षेत्रपाल
दक्षिण	दक्षिणेश्वर



वरुण

उत्तर

पूर्व

पूर्व या उत्तर

दक्षिण

पश्चिम

उत्तर

आग्नेय दिशा

दक्षिण

नैऋत्य

पश्चिम

वायव्य

उत्तर

लिंग

गजहारि

शैव व उनके परिवार

पुजारी

दैवज्ञ (ज्योतिषी), वैद्य

देवपूजा साहित्य बेचने वाले

सभी प्रकार के भक्त के रहने के लिए

महाव्रत का स्थान

पाशुपति

कलामुख (नृत्यशाला)

ऊर्ध्वालय

जैनों के लिए

ब्राह्मण

उसके बाहर ईशान दिशा में बड़ा तालाब करें।

इन्द्र व ईशान पद के बीच

पाठशाला के पीछे

दक्षिण व आग्नेय दिशा के मध्य

पश्चिम व नैऋत्य दिशा के मध्य में

पश्चिम व वायव्य दिशा के मध्य

वायव्य व उत्तर के मध्य

सोम व शंकर (ईशान) के मध्य

विद्यास्थान

वैश्याओं के घर

गोशाला

सूतिका गृह

रोग पीड़ितों के रहने का स्थान

छोटे बच्चों के सीखने के लिए

धान्य के भंडार

उसके बाहर के वृत्त में दासी व गणिका के रहने का स्थान, नृत्य गायन का अभ्यास करने वालों के लिए बाजार करने वाले, सुतार, कुम्हार, माली, मांस, मछली उससे उपजीविका करने वाले, नाचने वाले, शूद्र, शिल्पियों की मदद करने वाले मजदूर, संकर पूर्व दिशा से शुरू होकर ईशान दिशा तक क्रम से योजना करें।

उसके बाहर ईशान भाग में श्मशान करें या दक्षिण अथवा उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए। उसके बाहर धोबियों के घर होना चाहिए। व उसके बाहर एक कोस दूरी पर चण्डालों की बस्ती होना चाहिए।

विश्लेषण

नगर, मंदिर या महल आदि की सीमा, दीवार द्वारा घिरी रहती है। जिसे प्राकार या परकोटा कहते हैं। प्रवेशद्वार को गोपुर कहते हैं। इस अध्याय में विभिन्न परकोटे तथा उसमें नगर या गृहविन्यास को बताया है। किस दिशा या पद में कौन सा कक्ष या कार्य करना चाहिए, इसे बताया है। इसे हम नगर या ग्राम नियोजन के संदर्भ में भी देख सकते हैं। यह ग्रन्थ भगवान शंकर से विशेष रूप से संबंध रखता है। इस अध्याय में बताया है कि सुखासन आदि मूर्ति किस दिशा में स्थापित करना चाहिए।

५.४४ अध्याय ४४

मंडप

इस अध्याय में ९७ श्लोक हैं। सबसे पहले चार प्रकार के मंडप बताएँ हैं:-

पहला	मुख मण्डप
दूसरा	प्रतिमण्डप
तीसरा	स्नानमण्डप
चौथा	नृत्य मण्डप

प्रत्येक मण्डप के मध्यशाला होती है, इसे अन्तराल कहते हैं। इसका मान एक से ग्यारह हस्त तक होता है।

मंडप

	आरम्भ	वृद्धि	हस्त तक
आभास मण्डप	तीन	दो-दो	उन्नीस
विकल्प मंडप	इक्कीस	दो-दो	सैंतीस
छन्द मण्डप	उनतालीस	दो-दो	पचपन
जाति मण्डप	सत्तावन	दो-दो	तेहत्तर

चौड़ाई के बराबर लम्बाई वाला व समकोण वाला मण्डप होता है। (ऊपर का मण्डप चौकोर होता है।)



स्तम्भ

	आरम्भ	वृद्धि	तक
स्तम्भों के बीच का अन्तर डेढ़ हस्त		छह-छह अंगुल	पांच हस्त तक
स्तम्भ की ऊँचाई	ढाई हस्त	छह-छह अंगुल	
स्तम्भ की चौड़ाई	आठ अंगुल	आधा-आधा अंगुल	उत्तीस अंगुल

अधिष्ठान

सामान्यतः सभी मण्डप के लिए अधिष्ठान की ऊँचाई स्तम्भ की ऊँचाई की आधी होती है।

उपपीठ

उपपीठ की ऊँचाई, अधिष्ठान की ऊँचाई के बराबर या उससे दोगुना या तीन गुना होती है।

मंडप

इसमें चौदह प्रकार के वर्गाकार तथा चौदह प्रकार के आयताकार मंडप का वर्णन किया है।

विश्लेषण

इस अध्याय में मंडप के मान का वर्णन है। जाति आदि प्रकार के मंडपों को बताया है। वर्गाकार व आयताकार मंडप के विभिन्न प्रकार का वर्णन किया है। अन्य ग्रन्थों में जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए अलग-अलग प्रकार के मंडप शुभ बताएँ हैं। इन मंडपों का उपयोग विवाह, क्षौर आदि कर्म, अभिषेक आदि के लिए किया जाता है। प्रायः देवालयों में मुख्यमंडप, सभा मंडप विशेष रूप से देखने को मिलते हैं।

५.४५ अध्याय ४५

गोपुर के लक्षण

इस अध्याय में १४४ श्लोक हैं। विभिन्न परकोटों पर स्थित गोपुर के नाम इस प्रकार हैं:- द्वार शोभा, द्वार शाला, द्वारप्रासाद, द्वारहर्म्य व द्वार गोपुर।

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

संस्कृत

गोपुर	मंजिल की संख्या
द्वार शोभा	एक, दो या तीन
द्वारशाला	दो, तीन या चार
द्वारप्रासाद	चार या पांच
द्वारहर्म्य	चार, पांच या छः
द्वारगोपुर	पांच, छः, या सात

इस अध्याय में गोपुर के ४५ प्रकार का वर्णन किया है। इसमें गोपुर की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई के मान का वर्णन किया है।

द्वार की चौड़ाई

आरम्भ	वृद्धि	तक
डेढ़ हस्त	छः छः अंगुल	पांच हस्त
तीन हस्त	छः अंगुल	सात हस्त तक
चार हस्त	छः अंगुल	१५ हस्त तक

गर्भ गृह, अलिन्द, सभी मंजिल के मान आदि का वर्णन है। इसमें शिखर के विभिन्न आकार सभाकार, शालाकार आदि का वर्णन है।

विश्लेषण

परकोटे या सीमा के प्रवेश द्वार को गोपुर कहते हैं। शास्त्र में १ से पाँच परकोटों को वर्णन मिलता है। प्रत्येक परकोटे पर स्थित द्वार की एक संज्ञा द्वार-शाला आदि होती है। सबसे बाहरी द्वार को महागोपुर कहते हैं, जिसकी अधिकतम ऊँचाई सात मंजिल तक होती है। इन्हें भव्य व आकर्षक बनाया जाता है। मीनाक्षी मंदिर का प्रवेश द्वार जगत में प्रसिद्ध है।

५.४६ अध्याय ४६

परिवार

इस अध्याय में ८६ श्लोक हैं। इसमें देवताओं के परिवार का वर्णन किया है। यह बताया है कि परिवार में आठ, सोलह और बत्तीस संख्या होती है। अंतर्मण्डल के सब परिवार की योजना न करें। अन्तर्हार में आठ परिवार देवता होते हैं। मध्यहार में १६ परिवार देवता होते हैं। ३२ परिवार

अथ हि ज्ञानी

१०

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

अथ हि ज्ञानी

देवता हों तो चौथे प्राकार तक उस देवता की योजनाएँ करना चाहिए।

प्राकार के मध्य या प्राकार की दीवार के आश्रय से यह देवता होते हैं।

मध्य भाग में मूल प्रासाद होता है।

आठ परिवार

दिशा	देवता
पूर्व	नंदी
आग्नेय	अग्नि
दक्षिण	अग्निदुग्ध या दक्षिण में सात माता
दक्षिण	वीरभद्र या गणेश
दक्षिण या नैऋत्य	गणेश
पश्चिम	कुमार कार्तिकेय
वायव्य	ज्येष्ठा गौरी
उत्तर	केशव या कात्यायनी
ईशान	सूर्य

सोलह परिवार

१६ परिवार देवता के वर्णन सुनो क्षेत्र के २५ भाग करके, इन्द्रभाग से पूर्व दिशा की तरफ . अनुक्रम से इन्द्र, अश्विनी, अग्नि, पितर, यम, रोहिणी, नैऋति, अप्सरा गण, वरुण, ऋषि, वायु, रुद्र, चंद्र, क्षेत्रपाल, शंकर, सूर्य होते हैं।

बत्तीस परिवार

अनन्त, अभय, भय, मोटिसूक्ष्म, गौरी, विष्णु, ब्रह्मा, शंकर, भृगु, शंकर, कौशिक, एकाक्ष, गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, एकरुद्र, पशुपति, (अष्ट) वसु, महादेव, त्रिमूर्ति, कुबेर, रुद्र, कालाग्नि, श्रीकण्ठ, नाग देवता, भीम, पृथ्वी, शिखण्डी, मरुत, अत्रि व शनैश्चर

जाति प्रकार के प्रासाद में ३२ परिवार देवता की योजना करें।

छन्द प्रकार के प्रासाद के लिए १६ परिवार देवता होंगे।



आभास आदि प्रासाद में आठ परिवार देवता होंगे।

सभी प्रकार के देवालय में सभी प्राकार की आठ, १६ या ३२ परिवार देवता की कल्पना करें।

इसके उपरान्त नन्दी के लक्षण बताएँ हैं। अग्नि देवता को उत्तम दशताल में बनवाना चाहिए। उसके पश्चात् सप्तमातृका ब्राह्मी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी व चामुण्डा के लक्षण का वर्णन किया है। उसके पश्चात् वीरभद्र व विनायक के लक्षण बताएँ हैं।

५.४७ अध्याय ४७

विनायक के लक्षण

इस अध्याय में ३१ श्लोक हैं। उनकी प्रतिमा की ऊँचाई को ६४ भाग में विभाजित कर उचित अनुपात में अंगों के मान का वर्णन है। उनका मुख हाथी के मुख के समान है। वे खड़े या पद्म पीठ पर बैठे हैं, उनके दाहिने हाथ में स्वयं का दाँत व अंकुश है। बाएँ हाथ में पाश, नाग या छोटी अक्षमाला होती है। उनकी तीन आँख है, सोने के समान रंग है वे रेशमी वस्त्र धारण किए हैं। वे आभंग या समभंग मुद्रा में हैं। इस प्रकार गणेशजी को बताया है।

५.४८ अध्याय ४८

षण्मुख लक्षण

इस अध्याय में १६८ श्लोक हैं। इसमें षण्मुख आदि के लक्षण का वर्णन है।

षण्मुख (स्कन्द, कार्तिकेय) की प्रतिमा पाँच ताल में बनवाना चाहिए। उनके दो, चार, छह या बारह हाथ होते हैं। उनके दाहिने हाथ में शक्ति, बाण, खड्ग, चक्र, प्रास तथा बाएँ हाथ में पंख, खड्ग, काकूटक, खेटक, धनुष, दण्ड और हल धारण किया है।

उसके पश्चात् ज्येष्ठा देवी के लक्षण हैं:- अग्नि के समान रंग, लम्बे होंठ, बड़ी व ऊँची नाक, लम्बे व लटके, कमर में नीले व लाल रंग वस्त्र दाहिने हाथ में कमल तथा बायाँ हाथ कटक मुद्रा में होता है।

उसके पश्चात् दुर्गा के लक्षण बताएँ हैं:- उनके चार हाथ, दो आँख, साँवला रंग है। वे पीले वस्त्र पहिने हैं। दाहिना हाथ अभय मुद्रा तथा बाएँ हाथ में कटक है। ऊपर के दाहिने हाथ में चक्र व ऊपर के बाएँ हाथ में शंख धारण किए हैं।

इसके पश्चात् विष्णु, इन्द्र, अश्विनीकुमार, पितर, वैवस्वत, रोहिणी, निर्ऋति, अप्सरा, वरुण, ऋषि, मरुत, रुद्र, चन्द्र, क्षेत्रपाल, ईश, सूर्य, अनन्त, भव, गौरी, शर्व, ब्रह्मा, शिव, भृगु, सरस्वती, लक्ष्मी के लक्षण का वर्णन है।

धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्युष, औष ऐसे आठ वसु का वर्णन है।

उसके पश्चात् कुबेर, कालाग्नि रुद्र, श्रीकण्ठ, नागदेव, भीम, शिखण्डी, मरुदगण, उग्र, शनैश्चर के लक्षण का वर्णन है।

उसके उपरान्त मूर्ति के लिए पीठ का वर्णन है। एक हस्त चौड़ी पीठ सबसे छोटी, दो हस्त की मध्यम तथा तीन हस्त चौड़ी पीठ श्रेष्ठ होती है।

विश्लेषण:- अध्याय ४६-४७ में देवी-देवता के प्रतिमा विज्ञान के लक्षण बताएँ हैं। प्रतिमा-विज्ञान वास्तुविद्या का अभिन्न अंग है। इस सांकेतिक विद्या में देवता किस प्रकार की शक्ति को अभिव्यक्त करते हैं, यह उनके आयुध-परिधान, अस्त्र-शस्त्र आदि के माध्यम से बताया जाता है।

५.४९ अध्याय ४९

लिंग के लक्षण

इस अध्याय में १८५ श्लोक हैं। संसार, विषय, प्राणी व सृष्टि सम्पूर्ण रूप से, जिसमें लय होती है व उसी में से ही उसके पश्चात् से सृष्टि निर्माण होती है, इसलिए उसे लिंग कहते हैं।

संसार में निष्कल, शांत, मन व वचने से अगोचर, मुक्तिदायक, सभी भूतों की आत्मा, जो सबमें व्याप्त एवं गुह्य है। जो सभी लोक का नायक है, उससे सृष्टि जन्म के समय शांति तत्व का उदभव हुआ।

नाद (लिंग) और बिन्दु (पीठ) इनके मिश्रण को शिव कहते हैं।

लिंग तीन प्रकार के प्रसिद्ध हैं:-चल, अचल और चलाचल

इस अध्याय में शिला लाते समय होने वाले शुभ व अशुभ शकुन बताएँ हैं तथा बताया है कि शुभ शकुन में ही शिला लाना चाहिए।

इसके पश्चात् शिला के लक्षण का वर्णन है। शिला सफेद, लाल, पीले और काली रंग की बताई गई है। उसके पश्चात् बताया है कि पवित्र होकर शिला लेने जाएँ, शुभ शिला का चयन करें।



शिला बाला, युवती व वृद्ध होती है। शिला पुलिंग, स्त्रीलिंग व नपुंसक भी होती है। उचित शिला का ग्रहण कर पूजन कर हवन करना चाहिए।

उसके उपरान्त लिंग के माप का वर्णन है। लिंग का मान का निर्धारण गर्भगृह, स्तम्भ, हस्तमान के अनुसार किया जाता है। लिंग के आयादि का प्रयोग कर शुभ मान का निर्धारण करना चाहिए।

लिंग का सबसे नीचे का भाग ब्रह्मा भाग होता है यह चौकोर होता है। लिंग का मध्य का भाग विष्णु भाग कहलाता है, यह अष्टकोणीय होता है। लिंग का सबसे ऊपर का भाग शिव भाग होता है, यह गोलाकार होता है, यह पूजा भाग कहलाता है।

लिंग का शीर्ष छत्राकार, मुर्गी के अण्डे के समान या अर्द्धचन्द्राकार होता है।

लिंग को सोने, चांदी या कपास का धागा लपेटकर प्रातः अच्छे मुहूर्त पर लक्षणोद्धार करना चाहिए।

५.५० अध्याय ५०

प्रतिमा के लक्षण

इस अध्याय में २०४ श्लोक हैं। इस अध्याय में प्रतिमा के लक्षण बताएँ हैं। प्रतिमा तीन प्रकार की होती है:-अचल, चल व चलाचल ऐसे

अचल प्रतिमा:- मिट्टी, बालू रेती व चूना से निर्मित

चलाचल प्रतिमा:-पत्थर, लकड़ी, धातु व रत्न से निर्मित

चल प्रतिमा:- लोहजम्- (कांसा, लोह-ताम्बा, कोई धातु, सोना)

चित्र के तीन प्रकार:-अर्ध चित्र, चित्र और चित्राभास ।

अर्धचित्र:-शरीर का आधा भाग (चूना आदि से निर्मित)

चित्र:- सब अवयव सम्पूर्ण रूप से दिखें, (धातु आदि से निर्मित)

चित्राभास:-वस्त्र पर या दीवार आदि दिखाकर जो बिंब करते हैं

मिट्टी से लकड़ी, लकड़ी से पत्थर, पत्थर से लोहे, लोहे से ताम्बे, ताम्बे से चाँदी, चाँदी से सोने की (प्रतिमा) श्रेष्ठ होती है।

...
...

...
...
...
...
...

...
...

...

...

...
...

...

...

...

...

...

...

...

...

...

इसके पश्चात् शिव की १६ मूर्ति के लक्षण बताएँ हैं:- सुखासन, उमास्कंद, चन्द्रशेखर, वृषवाहन, नृतमूर्ति, गंगाधर, त्रिपुरान्तक, कल्याणसुंदर, अर्द्धनारीश्वर, गजहारी, पाशुपत, कंकालमूर्ति, हरीहरमूर्ति, भिक्षाटन, चण्डेश्वरप्रसाद दक्षिणा मूर्ति व उसके पश्चात् (कालारि) मूर्ति।

उसके उपरान्त लिंग के माप तथा प्रतिमा के लिए आयादि सूत्र का वर्णन है। उसके पश्चात् उत्तम दशताल मान बताएँ हैं। उसके पश्चात् पूजन विधि का वर्णन है, यह एक प्रकार से प्राणप्रतिष्ठा की विधि है।

ताल लक्षण

तालमान (भाग)	प्रतिमा
उत्तम दशताल (१२४)	ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर
मध्यम दशताल (१२०)	उमा, सरस्वती उषा, भूमि, दुर्गा, लक्ष्मी, माता, ज्येष्ठा
कनिष्ठ दशताल (११६)	चन्द्र, सूर्य, अश्विनी, ऋषि, ग्रह, अर्थ, षण्मुख, चण्डेश, क्षेत्रपाल
उत्तम नवताल (११२)	वसु की आठ मूर्ति, विद्येश, लोकपाल और अन्य देवता
कनिष्ठ नवताल (१०८)	यक्ष, अप्सरा गण, अस्त्र मूर्ति, मरुद्गण, विद्याधर गण
सात तल (८४)	पिशाच
छः ताल (७२)	कुबड़ा व्यक्ति
पांच ताल (६०)	कुबेर
चार या तीन ताल	बालक
दो ताल (२४)	किन्नर
एक ताल (१२)	कछुआ

इस प्रकार से विभिन्न ताल मान का वर्णन इस अध्याय में किया है।

५.५४ अध्याय ५४

मध्यम नवताल

मध्यम नवताल में प्रतिमा की ऊँचाई को एक सौ आठ भाग में विभाजित करते हैं तथा प्रत्येक अंग अनुपात में बनाते हैं। इसमें यक्ष, अप्सरा का समुदाय व अशमूर्ति व मरुद्गण की प्रतिमा बनाई जाती है।

५.५५ अध्याय ५५

अधम नवताल विधान

अधम नवताल में प्रतिमा की ऊँचाई को एक सौ चार भाग में विभाजित करते हैं, इसमें विद्याधर के गण, असुर, पितर, सिद्ध, गन्धर्व को बनाते हैं।

५.५६ अध्याय ५६

आठ ताल विधान

आठ ताल में मूर्ति की ऊँचाई को १०० भाग में विभाजित करते हैं।

५.५७ अध्याय ५७

सातताल विधान

सात ताल मान में मूर्ति को ८८ बराबर भागों में विभाजित करते हैं। इसमें पिशाच बनाई जाती है।

५.५८ अध्याय ५८

पिण्डिका के लक्षण

इसमें नागर आदि लिंग की पीठ के लक्षण का वर्णन किया है। इसमें बताया है कि जिस पदार्थ का लिंग हो उसी पदार्थ की पीठ बनवाना चाहिए। पीठ की ऊँचाई लिंग की ऊँचाई के अनुपात में होती है।

इसमें नागर आदि प्रासाद के लिए उपयुक्त पीठ का वर्णन किया है। इसमें पीठ के चार प्रकार बताएँ हैं:- पद्मपीठ, भद्रपीठ, वेदिका (भद्र) और पीठ



इसके अतिरिक्त विभिन्न आकार की पीठ व उसके फल को कहा है:-

आकार	परिणाम
चौरस	पीठ जय देने वाला
योनि	पीठ प्रजा वृद्धि करने वाला
धनुषाकार	पीठ शान्तिकारक
त्रिकोणाकार	पीठ शत्रु का नाश करने वाला
वृत्ताकार	समृद्धिदायक
पंचकोण पीठ	पुष्टि-तुष्टि कारक
षट्कोण पीठ	रोगनाशक

पीठ के जीर्णोद्धार के बारे में बताया है कि पहले के समान ही पीठ बनवाना चाहिए।

५.५९ अध्याय ५९

पीठिका लक्षण

इस अध्याय में ७२ श्लोक हैं। इसमें नागर, द्राविड़, वेसर पद्धति के अनुसार शिला का मान बताया है। पिण्डिका को सावधानीपूर्वक स्थापित कर अष्टबन्ध लेप से दृढ़ करना चाहिए। इसके उपरान्त उसे बिल्कुल चिकना कर समतल करना चाहिए। उसके पश्चात् गाय के गोबर से लीपकर, कुंकुम व गुलाल आदि से अलंकृत करना चाहिए। उसके उपरान्त वेदी बनाकर, पूजन कर हवन करना चाहिए। इस अध्याय में ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए लिंग के प्रमाण बताएँ हैं। उसके उपरान्त लक्षणोद्धार करने की विधि बताई है।

५.६० अध्याय ६०

सकल स्थापना की विधि

इस अध्याय में १३ श्लोक हैं। इस अध्याय में विष्णु की स्थापना विधि का वर्णन है।

पश्चिम या मध्य भाग में विष्णु की मूर्ति स्थापित करना चाहिए। विष्णु के सामने या विष्णु के पास (एक ओर) पूर्व की ओर गरुड़ की मूर्ति स्थापित करना चाहिए। पश्चिम, भृश, यम, इन्द्र, पिशाच, अग्नि, निर्रुति, वायु के पद में विष्णु की मूर्ति की स्थापना कर पूजा करें।

दिशा	देवता का स्थान
नैऋत्य	सोमस्कन्द
वायव्य	कंकाल
जयन्त	भिक्षाटन
सत्य	सुखासन
ब्रह्मा	त्रिपुरान्तक
सुग्रीव	हरिहर
गन्धर्व	चन्द्रशेखर
शेष	चण्डेशानुग्रह
मुख्य	कालारि
अदिति	अर्धनारी
इन्द्र	कल्याणमूर्ति होगी।
पर्जन्य	क्षेत्रपाल
दक्षिण	दक्षिणेश्वर
पश्चिम	लिंगोद्भव
उत्तर	गजहारि

इस प्रकार से मूर्ति विधान बताया है।

५.६१ अध्याय ६१

सुखासन मूर्ति

इस अध्याय में ५९ श्लोक हैं। इस अध्याय में सुखासन मूर्ति का वर्णन है। इसमें सुखासन में बैठी मूर्ति राजस भाव लिए होती है। वे पूरिम, कटिसूत्र, कटक, वलय, केयूर धारण किए हैं। उनके हाथ में परशु व हिरण है। उन्होंने जनेऊ व उपग्रीव धारण कर रखा है।



५.६२ अध्याय ६२

सोमस्कन्देश्वर

इस अध्याय में ३६ श्लोक हैं। देव के साथ देवी बाईं ओर सुखासन पर बैठी हैं। शंकर का चेहरा, देवी की ओर थोड़ा मुड़ा हुआ है। बायाँ हाथ में वरद मुद्रा में है तथा दाएँ हाथ में कमल धारण किया है। देवी सभी आभूषणों से आभूषित हैं। लाल रंग के वस्त्र धारण किए हैं। देवी व देवेश के मध्य स्कन्द की छोटी मूर्ति की स्थापना करना चाहिए। स्कन्द के दाहिने हाथ में फूल या बेलफल या आम का फल होता है।

५.६३ अध्याय ६३

चन्द्रशेखर मूर्ति

इस अध्याय में ६१ श्लोक हैं।

चन्द्रशेखर मूर्ति तीन प्रकार की होती है:-

- केवल शंकर
- शंकर व पार्वती
- गौरी को आलिंगन करते हुए शंकर की मूर्ति।

केवल शंकर की मूर्ति समभंग, त्रिभंग या आभंग मुद्रा बनवाते हैं। मुख पर आर्जवी व राजस भाव रहता है। हाथ कर्तरी मुद्रा में रहते हैं। दाएँ हाथ में टंक तथा बाएँ हाथ में हरिण होता है। जटा मुकुट धारण किए। दाईं या बाईं ओर चन्द्र, तीन नेत्र, सौम्य मुद्रा का, सभी आभूषणों से आभूषित होते हैं।

अन्य मूर्ति

बाईं ओर गौरी होती हैं। वे अलग-अलग आसन पर या एक ही आसन पर होते हैं। देवी-देवी परस्पर (आलिंगनबद्ध) होते हैं।

५.६४ अध्याय ६४

वृषवाहन मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में १६ श्लोक हैं। इस अध्याय वृषवाहन शिव की मूर्ति के लक्षण बताएँ हैं। इस समभंग या अतिभंग मुद्रा में बनवाना चाहिए। उनके बाएँ हाथ की कोहनी नंदी पर टिकी रहती है। जटाएँ खुली या बँधी हो सकती है। सभी आभूषणों को धारण किए, लाल रंग व लाल मुख की यह शंकर मूर्ति होती है। देवी उनके बाईं या दाईं ओर होती हैं।

५.६५ अध्याय ६५

नृत्यमूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में ९७ श्लोक हैं। नृत्य के अठारह प्रकार होते हैं। यहाँ नौ प्रकार की नृत्यमूर्ति का वर्णन किया है। शंकर का उत्साह बढ़ाने के लिए दुर्गा देवी का जन्म हुआ।

नृत्य मूर्ति का उद्देश्य:-सब लोगों के हित के लिए, देवताओं के संकट समाप्त होने के लिए, राजा व राष्ट्र की उन्नति के लिए ऐसे (शंकर) नृत्य करते हैं।

प्रथम नृत्यमूर्ति

सिंदूर से अलंकृत, गले में आठ माला, पूरे शरीर पर भस्म, चेहरा किंचित हंसता हुआ, यज्ञोपवित पहने होता है। शेर के चमड़े के वस्त्र पहने होकर, वह नृत्य की गति के साथ ऊपर गया हुआ होता है व उसकी गाँठ, डोल मुद्रा में के हाथ के पास होती है। पैरों में नुपूर होकर, सब प्रकार के गहनों से आभूषित, हाथ व पैर की सब अंगुलियों में रत्न जटित अंगूठियाँ होती है। बीच की अंगुली छोड़कर सभी अंगुली में अंगूठी होती है। दायाँ पैर झुका हुआ अपस्मार के ऊपर होता है, महेश्वर का पैर तलवे नृत्य से तिरछा होता है। उसे (शंकर) के बाईं ओर पीछे बताए प्रमाण से देवी पार्वती की मूर्ति होगी। ऐसे सब लोकों के कल्याण कारी पहली नृत्यमूर्ति होती है।

दूसरी नृत्यमूर्ति

पहली मूर्ति के समान परन्तु जटा दाईं ओर या एक ओर से गंगा दिखाई देती है। ऐसी यह जाह्नवी के साथ दूसरे प्रकार की नृत्यमूर्ति होती है।

तीसरी नृत्यमूर्ति

दूसरी नृत्यमूर्ति के समान ही परन्तु बायाँ पैर अपस्मार पर रखा होता है तथा दायाँ पैर उठा हुआ होता है।

चौथी मूर्ति

फैला हुआ जटा भार या जटा मुकुट होता है, यह सभी प्राणियों के हित के लिए होती है।

पाँचवी नृत्यमूर्ति

दायाँ हाथ अभय मुद्रा, शूल, पाश व डमरू

बायाँ हाथ कपाल, अग्निपात्र, घंटा

छठवीं नृत्यमूर्ति

सोलह हाथ वाली, बाई ओर गौरी होती हैं।

दाहिना हाथ:-अभय मुद्रा, शूल, पाश, खड्ग, छोटा डमरू, ध्वज, वैताल, सूची हस्त

बायाँ हाथ:-अग्नि, हाथी की सूँड के समान, खेटक, विस्मय मुद्रा, घंटा, कपाल, छुरिका, सूची मुद्रा

यह राजस व राष्ट्र के लिए सुखकारक होती है।

सातवीं नृत्यमूर्ति

तीन आंख, आठ हाथ होकर, मनोहर ऐसा फैला हुआ जटा भाग होता है। बायाँ पैर मुड़ा हुआ, होकर अपस्मार पर रखा हुआ होता है।

दायाँ हाथ- अभय मुद्रा, शूल, पाश, डमरू

बायाँ हाथ:-कपाल, अग्निपात्र, विस्मय मुद्रा व हाथी की सूँड के समान

बाई ओर गौरी होती है। जगत के दुख का नाश करने वाली यह सातवीं नृत्यमूर्ति होती है।



आठवीं मूर्ति

छह हाथ होकर दाहिनी ओर अभय, डमरू, शूल, बाईं ओर कपाल, विस्मय मुद्रा तथा गजहस्त यह आठवीं मूर्ति कही है।

नवीं मूर्ति

चार भुजा, तीन नेत्र या जटामुकुट से मंडित होते दाहिने हाथ अभय मुद्रा व डमरू, बायाँ हाथ अग्निधारण किए और हाथी की सूंड के समान होता है। अपस्मार न होकर, पीठ की ओर झुका बायाँ पैर रखा होता है।

५.६६ अध्याय ६६

गंगाधर मूर्ति

इस अध्याय में ११ श्लोक हैं। इसमें गंगाधर की मूर्ति का वर्णन किया है। दायाँ पैर सीधा होकर, बायाँ पैर झुका हुआ होता है। मुख बाईं ओर थोड़ा झुका हुआ होता है। दाहिनी ओर नीचे का हाथ देवी के स्तन पर रखा हुआ होता है तथा बाँया नीचे के हाथ से देवी का आलिंगन किया हुआ होता है। दाईं ओर ऊपर गंगा हैं। बाएँ हाथ में कृष्ण मृग है। भगवान के बाईं ओर विरहकातर मुखवाली देवी (पार्वती) हैं। उनका बायाँ पैर स्वस्तिक मुद्रा में होकर, दायाँ पैर झुका हुआ है।

५.६७ अध्याय ६७

त्रिपुरान्तक मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में ४८ श्लोक हैं। इसमें बताया गया है कि त्रिपुरान्तक की मूर्ति आभंग, समभंग व अतिभंग ऐसी तीन प्रकार की मुद्रा में बनाई जाती है। इनके माप का वर्णन है। वे धनुष, टंक, काला मृग धारण किए हैं। वे जटा के साथ अलंकृत हैं। उनके बाईं ओर गौरी हैं, बाँया पैर अपस्मार पर रखा है। त्रिपुरान्तक मूर्ति के आठ प्रकार का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

५.६८ अध्याय ६८

कल्याण मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में १७ श्लोक हैं। इस अध्याय में कल्याण मूर्ति के लक्षण का वर्णन किया है। उनका एक हाथ वरद मुद्रा में है। अन्य हाथों में परशु, काला हिरण धारण कर रखा है। उनके साथ सुसज्जित दैवी हैं। उनके हाथ में कमल है तथा दूसरे हाथ से शंकर का हाथ पकड़ रखा है। पार्वती की सखियाँ, श्री व भू भी सभी अलंकारों से युक्त हैं। देव के सामने प्रजापति हैं। प्रजापति की ऊँचाई शंकर के स्तन तक होती है। शंकर की नासिका तक की ऊँचाई की विष्णु की मूर्ति है।

आठ लोकपाल, विद्येश (गणपति), सिद्ध, यक्ष गण, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा व अन्य देवता का भी वर्णन किया है।

५.६९ अध्याय ६९

अर्धनारीश्वर

इस अध्याय में १२ श्लोक हैं। अर्धनारीश्वर का आधा रूप (भाग) शिव तथा आधा भाग पार्वती का है। यह चार, छह व दो हाथ वाली मूर्ति होती है। इस समभंग व स्थानक मुद्रा में बनाते हैं। बाई ओर का आधा भाग पार्वती के रूप में तथा दाहिनी ओर का आधा भाग महादेव के समान होता है।

मुद्रा	अभय मुद्रा
दाहिना हाथ	परशु
बायाँ हाथ	कटक मुद्रा में होकर फूल धारण किए
दो हस्त वाली	मूर्ति दायाँ हाथ वरद मुद्रा
बायाँ हाथ	फूल

दाई ओर की आँख उग्र व बाई ओर की आँख सौम्य शीतल होगी। इस प्रकार अर्धनारीश्वर के लक्षण बताए हैं।



५.७० अध्याय ७०

गजहामूर्ति

इस अध्याय में १४ श्लोक हैं। इसमें मूर्ति के चार पैर या आठ हाथ होते हैं।

चार हाथ

दाहिने हाथ में

पाश व हाथी की चमड़ी

बायाँ हाथ

गजमुख्य व हाथी की चमड़ी

आठ हाथ

दाहिना हाथ

हाथी के मस्तक, पाश, हाथी की चमड़ी

बायाँ हाथ

हाथी के दांत, कवटी, हाथी की चमड़ी व विस्मय

अन्य दाहिने हाथ

शूल, तलवार, हाथी की चमड़ी व दाँत

बायाँ हाथ

कवटी, खेटक, तलवार और हाथी के चमड़ी

शंकर के बाएं ओर उसकी कुक्षी तक आने वाली व डरी हुई पार्वती होती है।

इस मूर्ति के पूजन से राजा को विजय मिलती है।

५.७१ अध्याय ७१

पाशुपतमूर्ति

इस अध्याय में ८ श्लोक हैं। यह समपादस्थानक मुद्रा में होती है।

उत्सव मूर्ति

तीन आंख, चार हाथ, ऊपर पीछे किए हुए बाल होते हैं। (हाथ में) बड़ा धनुष होता है।

दो दाहिने हाथ

अभय मुद्रा व शूल

दो बाएँ हाथ

वरद (मुद्रा) व रुद्राक्ष की माला

आँखें सौम्य व शान्त होती है। चेहरा थोड़ा हंसमुख चेहरा होता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसूक्तम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

विष्णुसूक्तम्

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

शत्रु नाश हेतु मूर्ति

अग्नि के समान तेजस्वी कान्ति, लाल आँख, सर्प के जनेऊ धारण किए हुए, अग्नि की ज्वाला के समान केश, शूल अधोमुख, हाथ वरदमुद्रा के साथ कवटी धारण किए हुए या हाथ अभय मुद्रा में न होकर, उस हाथ में शूल के मूल होता है। दाएँ हाथ वरद मुद्रा में, हाथ में टंक होता है। बाएँ हाथ में तलवार होती है।

५.७२ अध्याय ७२

कंकाल मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में ६७ श्लोक हैं।

पैर में पादुका सहित भिक्षा माँगने वाली कंकाल मूर्ति होती है, इससे रक्षण तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसे लकड़ी, धातु या चूना, मिट्टी व रेतसे बनवाते हैं।

शुभ आयादि का विचार कर मूर्ति बनवाना चाहिए।

बाएँ हाथ में डमरू होकर या बाएँ हाथ में मोर के पंख के साथ, शूल होता है। जटाभार फैला हुआ होता है, या बाल बांधे हुए होते हैं। दाईं ओर चन्द्र को व बाईं ओर गंगा होती है।

उस जटाभार के गांठ के पास कपाल होकर, धतूरे के फूलों के वक्रपक्ष आच्छादित होता है। रुई के फूल व दूर्वासे सिर पर जटाबन्ध आच्छादित होता है। कमर में रुद्राक्ष की माला होती है। कोष्ठ में नाग कंकण होता है व अलग-अलग रत्न से भूषित होता है। शेर की खाल पहने हुए, भंयकर मुख, भस्म चर्चित होकर, तेजस्वी अवयव वाला, थोड़ा हंसमुख ऐसी कंकाल मूर्ति होती है। अनेक मनुष्य, प्राणी व स्त्रियाँ इनकी सेवा के लिए व इनको नमस्कार करते हैं। सोने का बलि पात्र पकड़े हुए, भूत सामने से होकर, उस पात्र में अन्न डालते हुए स्त्री बताई है। कमर के दाईं ओर छोटी सी क्षुरी बांधे, सोने के समान रंग की छोटी क्षुरी उपबन्ध से बांधी हुई होती है। दोनों ओर के हाथ अलग-अलग नागों से भूषित होते हैं।

ऋषि, देव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर इत्यादि सेवा आदि से पूजा करते हैं। ऊपर रास्ता झाड़ते हुए, पानी का छिड़काव करते हुए, स्त्रोत कहने वाला ऋषि व देव, फूलों की बारिश करते हुए, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद जिनकी बार-बार स्तुति करते हैं, चमड़े के वाद्य, कांसे के वाद्य, वीणा, छिद्रवाले वाद्य, शंख या पांच प्रकार के वाद्यों की आवाज आती है। नारद, इत्यादि जय वाद्य

सिद्धि प्राप्त करने के लिए

सिद्धि प्राप्त करने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को अपने मन, शरीर और चित्त को तैयार रखना चाहिए। यह तैयारी केवल शरीरिक अभ्यासों से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रयत्नों से ही संभव है।

सिद्धि प्राप्त करने के लिए

सिद्धि प्राप्त करने के लिए

सिद्धि प्राप्त करने के लिए

सिद्धि प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति को अपने मन, शरीर और चित्त को तैयार रखना चाहिए। यह तैयारी केवल शरीरिक अभ्यासों से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रयत्नों से ही संभव है।

सिद्धि प्राप्त करने के लिए

सिद्धि प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति को अपने मन, शरीर और चित्त को तैयार रखना चाहिए। यह तैयारी केवल शरीरिक अभ्यासों से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रयत्नों से ही संभव है।

सिद्धि प्राप्त करने के लिए

सिद्धि प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति को अपने मन, शरीर और चित्त को तैयार रखना चाहिए। यह तैयारी केवल शरीरिक अभ्यासों से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रयत्नों से ही संभव है।

बजाते हुए, चन्द्र, सूर्य देव इनकी स्त्रियाँ, चामर हिलाते हुए बनवाए।

५.७३ अध्याय ७३

हरिहर मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में ९ श्लोक हैं। यह मूर्ति आर्जव, सुस्थित, स्थानक, व समपाद स्थानक मुद्रा के मध्य होती है।

दायाँ हाथ अभय मुद्रा में है। उन्होंने परशु धारण किया है। जटाधारी हैं, प्रवाल के समान रंग, आँख उग्र, आधी तीसरी आँख तथा दिगम्बर हैं

बाएँ हाथ में पूरिमा के साथ कटक, शंख व आयुध है। मुकुट श्यामल है, आँख सुशीतल तथा सभी वस्त्र धारण किए हैं।

५.७४ अध्याय ७४

भिक्षाटन मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में ११ श्लोक हैं। इस मूर्ति में महेश्वर भिक्षा मांगकर घूमते हुए हैं। पैर पादुका सहित या रहित होते हैं। जटाएँ फैली हुई या बँधी हुई होती हैं। वे नग्न होते हैं। वे नाग से भूषित रहते हैं। दाहिने हाथ में हिरण का मुख बायाँ हाथ वरद मुद्रा में होता है। ऊपर के दाहिने हाथ में डमरू तथा बाएँ हाथ में मोर पंख होता है।

५.७५ अध्याय ७५

चण्डेशानुग्रह मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में ४ श्लोक हैं। मुख बाई ओर होकर, थोड़ा नीचे की ओर झुका होता है। दाहिना हाथ वरद मुद्रा में होता है। बाएँ हाथ में बाजूबन्ध होता है तथा वह चण्ड की मूर्ति पर रखा होता है।

हृदय के पास, भक्तिपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर अञ्जलि मुद्रा किए हुए (शंकर के) आसन के नीचे सुखासन लगाकर बैठा हुआ व सोने के रंग वाला चण्डेश होता है।



५.७६ अध्याय-७६

दक्षिणामूर्ति

इस अध्याय में २८ श्लोक हैं। इस अध्याय में दक्षिणामूर्ति का वर्णन है।

चार हाथ:-

दाहिना हाथ रुद्राक्ष की माला

बायाँ हाथ वरद मुद्रा

जटाएँ फैली हुई या बँधी हुई होती हैं। बाईं ओर धतूरे के फूल व नाग, दाहिनी ओर चन्द्र की किनोर होती है। चेहरा हँसता हुआ होता है। सभी अलंकारों से भूषित हैं। सफेद उत्तरीय वस्त्र और सफेद यज्ञोपवीत, तीन आँख, गौर वर्ण, दाएँ व बाएँ कान में मकर कुण्डल या शंखपत्र या वलयाकार कुण्डल, गले में रुद्राक्ष की माला होती है।

नारद, जमदग्नि, वसिष्ठ व भृगु मूर्ति के दाएँ ओर व भारद्वाज, शुनक और अगस्ति मूर्ति के बाएँ ओर होते हैं। वट-वृक्ष के नीचे, किन्नर आदि नमस्कार करते हैं। पैर के तलुवे अपस्मार के ऊपर है। इस प्रकार धर्म व्याख्यान मूर्ति के लक्षण का वर्णन किया गया है।

वीणाधर

ऊपर के अनुसार परन्तु बायाँ पैर कुटिकासन मुद्रा में होता है। नीचे के दोनों हाथ में युक्ति से वीणा को धारण कर रखा है। अन्य सब पूर्वानुसार इस रीति से वीणाधर मूर्ति करें।

ज्ञानमूर्ति

ऊपर के अनुसार परन्तु नीचे के दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा व अभय मुद्रा होते हैं। दाहिनी ओर ऊपर के हाथ में रुद्राक्ष की माला व बाईं ओर हाथ में कमल होता है। सब अलंकारों सहित यह ज्ञानमूर्ति होता है।

योगमूर्ति

हृदय के पास अन्दर मुड़ा हुआ हाथ ज्ञान मुद्रा में होता है। बायाँ हाथ वरद मुद्रा में होकर मेढ्रपीठ पर रखे। दाहिनी ओर ऊपर हाथ में रुद्राक्ष की माला, बाएँ हाथ में कमल होता है, नासाग्र दृष्टि होकर, शरीर आर्जव मुद्रा में होता है। लम्बी जटा वाले ऋषि, सेवा की ऐसी यह योगमूर्ति होती है। इसका ध्यान दुख की निवृत्ति करते हैं।

योगमूर्ति

दायाँ पैर लम्बा करके, बायाँ पैर कुटिकासन की मुद्रा में होता है। शरीर को व कुटिकामुद्रा वाले पैर को घेरे हुए योगपट्ट होता है। इसे योग मूर्ति कहते हैं। पीछे की ओर वृक्ष होता है। अलग-अलग सांप के भूषित गले में माला, कानों के ऊपर माला व छाती पर दूर्वा शोभित होती है। वट के वृक्ष के नीचे होकर, जिसकी सेवा ऋषि करते हैं। ऐसी यह सब पापों का नाश करने वाली योगमूर्ति प्रसिद्ध है।

अनेक प्रकार के दक्षिणामूर्ति के लक्षण इस प्रकार बताएँ हैं।

५.७७ अध्याय ७७

कालहा मूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में १४ श्लोक हैं।

दाहिने हाथ शूल, परशु वज्र व तलवार
बाएँ हाथ विस्मय मुद्रा, खेटक, पाश व सूची मुद्रा

कालः-करण्ड मुकुट पहने, व खून की धार लगी हुई व बहुत घबराई हुई व छाती के पास हाथ में पाश लेकर नमस्कार करती हुई पैर फैलाए हुए व मुख ऊपर किया हुआ व सोई हुई मूर्ति है।

५.७८ अध्याय ७८

लिंगोद्भवमूर्ति के लक्षण

इस अध्याय में ४ श्लोक हैं। लिंग के मध्य में, चन्द्रशेखर की मूर्ति (शंकर की मूर्ति) होती है। नली से नीचे पैर लिंग में समाया हुआ होता है। (वह दिखाई नहीं देता है।) बाएँ ओर के ऊपर के (शरीर के) भाग में ब्रह्मा हंस रूप से व विष्णु वराह रूप से उस रीति से (नीचे के शरीर के भाग में) दाई ओर होता है। विष्णु दाई ओर व पितामह (ब्रह्मा) बाई ओर नमस्कार करते हुए खड़े होते हैं। लिंग, विष्णु व ब्रह्मा यह अनुक्रम से लाल, काला, व सुनहरे रंग का होता है।



५.७९ अध्याय ७९

वृक्षसंग्रहण

वृक्षलिंग भेद

इस अध्याय में ३२ श्लोक हैं। इसमें देव व दैवी की मूर्ति शूल के लिए लकड़ी के ढाचे के योग्य वृक्ष का वर्णन किया है।

देवी के शूल के लिए उपयुक्त स्त्रीलिंग वृक्षः-मृदु, चिकनी मिट्टी में उगाए हुए, काम करने में बहुत नाजुक, मूल से अग्र तक क्रम से पतले होते हुए, लम्बे फूल वाले, अत्यन्त नाजुक (मार्दव युक्त) व (स्पर्श) में बहुत ठण्डे, तेलीय व रस युक्त।

देव मूर्ति के लिए उपयुक्त पुलिंग वृक्षः-हल्के, चिकनी मिट्टी में उगाए हुए, काम के लिए कठिन, जिसमें सुगन्ध कम हो, फल व फूल होते हैं, जो मजबूत व भरे होते हैं, समशीतोष्ण व दिखने में सुन्दर।

नपुंसकलिंगः-जिनकी जड़, फल व फूल आकार में छोटे होकर अत्यन्त निर्बल होते हैं।

उत्तम वृक्ष

देवी के शूल के लिएः-चन्दन, चम्पक, रक्तचन्दन, शाल, खैर, सोमशीर्ष, तिन्दुक, अर्धनारीशिव, राजा, मयूरक, पद्मक, कुटज, सप्तपर्णी, सत्वक, इनके अन्दर का भाग शूल के लिए लें।

वृक्ष-दोष

जिसके पत्ते जीर्ण-शीर्ण हों, जिसका (नैसर्गिक) वैभव छुटा हुआ हो, जिसका शीर्ष नहीं हो या तीन शिखा वाला हो, स्वयं से ही मुड़ा हुआ, गिरा हुआ वृक्ष, उसके (अपने आप) सूखा हुआ, दुःस्थिति वाला, अत्यन्त कठिन, जिसके आश्रय में पशु-पक्षी हों, राजवाड़े के पास, मजदूरों की बस्ती के पास, आग से जला हुआ, दूसरे काम के लिए प्रयोग में हों।

शुभ मुहूर्त में वन में जाएँ, पूजन कर बलि दें, होम करें। जो वृक्ष उत्तर या पूर्वदिशा में गिरे उसे ही ग्रहण करना चाहिए।

वृक्ष को पंचगव्य, गन्ध जल से स्नान कराकर, अलंकृत करें। उसके पश्चात् सुतार शाला में ले जाएँ। शूल की लम्बाई के अनुसार स्थान बनाएँ तथा लकड़ी को सूखने के लिए १५ दिन रखें।

५.८० अध्याय ८०

शूललक्षण

इस अध्याय में ४३ श्लोक हैं। इस अध्याय में देवी व देवता के लिए शूल व उपशूल का वर्णन किया है।

शूल

दण्ड की लम्बाई = शरीर

दण्ड नाभी तक चौकोर, कन्धे तक अष्टकोनी तथा उसके ऊपर गोल होता है।

वंशदण्ड की लम्बाई ३२ अंगुल

चौड़ाई ६.५ अंगुल

मोटाई (१/२) चौड़ाई

मध्य से किनारे की ओर कम होता जाता है।

वक्षदण्ड के मध्यभाग में छिद्र होते हैं।

कटिदण्ड की लम्बाई १६ अंगुल

चौड़ाई ८ अंगुल

मोटाई ४ अंगुल

कटिदण्ड के मध्य भाग में छिद्र होता है।

कटिदण्ड के ऊपर के भाग में दो वंशदण्ड बनवाना चाहिए। वंशदण्ड वक्षदण्ड को व कटिदण्ड को बंधा हुआ होता है।

शूल व उपशूल को भलीभाँति मजबूती से बैठाना चाहिए।

५.८१ अध्याय ८१

शूल की स्थापना

इस अध्याय में ५३ श्लोक हैं। शूल की स्थापना शुभ मुहूर्त में करना चाहिए। सबसे पहले अंकुरार्पण करके, प्रासाद के सामने १२ या १६ स्तम्भ का सुज्जित चौकोर मंडप बनवाना चाहिए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

अथ

हवनकुण्ड

दिशा	आकार
पूर्व	चौरस
दक्षिण	धनुषाकार
पश्चिम	वृत्ताकार
उत्तर	पद्म

यह अकेले शंकर मूर्ति के लिए ही है। यदि मूर्ति गौरी के साथ हो, तो गौरी जिस ओर है उस ओर योनि कुण्ड होता है। कुण्ड को गोबर से लीपकर अलंकृत करना चाहिए। स्थापना से पहले पूजन कर रात्रि विश्राम करें।

पूजन

लकड़ी की चौकी के मध्य में शूल को पूर्वाभिमुख रख कर पूजन, अभिषेक करें। उसके पश्चात् हवन करें। उसके पश्चात् भस्मस्नान कराए। उसके पश्चात् आचार्य सफेद उत्तरीय वस्त्र पहनकर, सफेद यज्ञोपवीत धारण किए, सफेद माला व गन्ध आदि का लेप लगाकर, पंचांग भूषण धारण किए, पवित्र हाथ से सकलीकृत विग्रह किए, प्रसन्न मुद्रा से गर्भागार में प्रवेश करके, इक्यासी पद बनाए या मण्डूक पद करें या ४९ पद का विन्यास करें। विधिविधान से गर्भविन्यास कर शूल की स्थापना करना चाहिए।

५.८२ अध्याय ८२

रज्जुबन्ध लक्षण

इस अध्याय में २७ श्लोक हैं। इसमें विस्तार से रज्जुबन्ध (शूल को धागा लपेटने की क्रिया) बताता हूँ। शूल के सब बन्ध ताम्बे के पत्र से मढ़कर, निकालना चाहिए। शूल को अष्टबन्ध के लेप (प्रथम) देकर बाद में धागा लपेटे।



अष्टबन्ध

पदार्थ	भाग
श्रीवेष्टक	४
कुन्दुरुष्क	३
गुग्गुल	५
गुड़	१
सर्जक (साल)	८
गेरू	३

इनको घी व तेल में डालकर मिलाए, मिट्टी के बर्तन में रखकर (मंदाग्नी पर) उत्तम प्रकार के मोम जैसा होने तक पकाए।

इस प्रकार से बनाया हुआ अष्टबन्ध से शूल का लेप करने के उपरान्त रज्जुबन्ध की क्रिया करें।

नाड़ी तीन होती हैं:-

मध्य	सुषुम्ना
दाहिनी ओर	पिंगला
बाई ओर	इड़ा

धागे की परिधि दो अंगुल होकर, उसके तीन वर्तिक (लड़ी) का होता है। ये तीनों नाड़ियाँ भ्रूमध्य में इकट्ठा होती हैं।

मूलाधार के पास नाड़ी के मूल से, अलग-अलग अठारह नाड़ी निकलती हैं:-

पिंगला (दाहिने पैर में लपटें):-विमला, घोषिणी, पृथ्वी, वाहिनी, तेजसा, वायव्यी

गगनी, मर्दिनी, घोषिनी, रसवर्ती, मृदंगी, शंसिनी,

इड़ा (बाएँ पैर में लपेटे):- शब्द स्पृशांगी, पूर्णा, सुसिंही, वारिधारिणी, वाहिनी और तामसी

प्रत्येक नाड़ी तीन यव व्यास की व तीन-तीन लड़ी की या दो लड़ी की होती है। पहली छह नाड़ियाँ उरु के मूल के पास होती हैं। सुषुम्ना, इड़ा व पिंगला यह वंश दण्ड से लेकर भ्रूमध्य तक



[Faint, illegible text, likely bleed-through from the reverse side of the page]

एकत्र होती है व पुनः सात अलग-अलग नाड़ियों में विभाजित होती हैं-

कुहू-गुदा तक ३ यव

पुष्पा-दाहिने कान तक ३ यव

गान्धारी- ३ यव

हस्तिजिहवा-हृदय तक ३ यव

यशस्विनी-बाएँ कान तक ४ यव

शंखिनी-नाभि तक ४ यव

अलंबूषा-मेढ्रमूल तक ४ यव

पहली चार नाड़ी तीन यव व्यास की, शेष चार यव व्यास की होती है।

दाहिने हाथ में गगनी, मर्दनी, रोहिणी नाड़ी लपेटें। बाएँ हाथ में रसवती, मृदंगी, शंसिनी लपेटें। बाहूमूल से हथेली तक ये नाड़ियाँ गई हैं। इस प्रकार नाड़ियाँ शूल को लगाकर बाद में उस पर गोलाकार छह यव परिधा की डोरियाँ पक्की बाँधे। हृदय पर डोरियों की आठ पंखुड़ियाँ वाले कमल बाँधे। उस (कमल के) के जड़ नाभि के पास सुषुम्ना में बाँधे। कमल शूल का जीव स्थान होता है। मूल मन्त्र का स्मरण करके उसके बाद रज्जुबन्धन करें।

५.८३ अध्याय ८३

मिट्टी का स्थिरीकरण

इस अध्याय में २६ श्लोक हैं। मिट्टी की जो प्रतिमा बनाना है, मूर्ति बनाना है, उसके लिए मिट्टी तैयार करने की विधि का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

मिट्टी:-

- जांगल-खोदने में कठिन
- अनुप-कम रेती वाली, खोदने में सरल
- संमिश्र (साधारण)-मिश्रित गुण-धर्म वाली

पवित्र व सुन्दर नदी के किनारे या तालाब से बहकर आई हुई सफेद, लाल, पीली या काली मिट्टी इकट्ठा कर उसमें पानी मिलाकर सूखने दें।



सूखने पर, लाख व क्षीर वृक्ष के छाल से तैयार किए गए कथे (क्वाथ) के पानी के साथ उस मिट्टी को बहुत घोटें।

थोड़ा पानी शेष रहने पर उस मिट्टी के गोले बनाए।

कथा (क्वाथ..):- क्षीर वृक्ष की छाल से आठ गुना पानी लेकर उसे उबालें, एक भाग रहने पर, उसे क्वाथ (कथा) कहते हैं।

ऊपर की मिट्टी इतनी घोटें की, उस गोले पर हथेली की रेखा सहज तरीके आ जाए। इस मिट्टी के आठ यव व्यास के गोले बनाएँ।

ग्यारह अंगुल परिधि व व्यास वाले (पत्थर) मुक्ता कहते हैं। रेत व पत्थर को मिट्टी के समान बारीक करें।

उपरोक्त मिट्टी के चार भाग + एक भाग पत्थर व रेत का भस्म + त्रिफला का जल

इसे दस, आठ या सात दिन अच्छी तरह से मिलाए। (मसले)।

यव, गेहूँ, माष, अतसी के पत्ते का चूर्ण मिट्टी में अष्टमांश भाग मिलाए, उसमें नारियल का पानी डालकर इसे दस (आठ, सात) दिन अच्छी तरह से घोटें।

श्रीवेष्टक, गुग्गुल, कुन्दुरुष्क, सर्जरसा का चूर्ण (इनके समभाग मिश्रण) मिट्टी के पन्द्रह भाग में एक भाग डालें। इसे दस (आठ या सात) दिन अच्छी तरह से मर्दन करें।

सौंठ व पिप्पली, काली मिर्च, हल्दी इनका समभाग चूर्ण करके, एक बटा दस भाग से मिट्टी में मिलाए।

शहद, दूध, घी, इनके साथ पात्र में वह मिट्टी खूब हिलाएँ।

कपित्थ, बैल इनका गोंद समभाग में लेकर मिट्टी के एक बटे पन्द्रह भाग में तेल के बराबर मिलाएँ व खूब मिलाएँ व खूब घोटें। उसमें कुष्ठ, गेरु व हरिताल भी मिलाए।

चन्दन, अगरु, कपूर, व गोरोचन, इनके समभाग चूर्ण मिट्टी के तीस अंश में मिलाए। अतसी के तेल साथ, वह मिट्टी खूब घोटें।

सोना, चाँदी, मोती, इनके चूर्ण अलग-अलग दिशाओं के धान्यों की (मिट्टी), समुद्र की, हल के फल की, हाथी के दांत के ऊपर की, बैल के सींग की, विशेषतः गाय व हिरण के सींग की, (इनमें



से) जहाँ मिले वहाँ की, अलग-अलग सुगन्ध वाली मिट्टी, कपित्थ के गोंद के बराबर या मधुका के गोंद के बराबर खूब घोटें।

पाँच रात्रि तक ऐसा करके नारियल की चोटी के डेढ़ से दो अंगुल लम्बाई के टुकड़े करके वह मिट्टी के चौथे भाग के बराबर या आधे भाग के बराबर मिट्टी में मिलाए।

डोरियों से बांधे हुए लकड़ी के ढाँचे पर इस मिट्टी का एक, दो या तीन अंगुल मोटाई का थर (लेयर) करें।

उसके पश्चात् मिट्टी का लेप सुखने दें। मिट्टी के प्रत्येक नया थर पहले के ऊपर, सुखने के बाद, निरीक्षण कर, धीरे-धीरे लगाएँ।

शूल के बाहर की चौड़ाई के चार भाग करके एक भाग अधिक मोटाई का (मिट्टी का) लेयर लगाना योग्य समझे (सूखने के बाद मोटाई एक चौथाई रह जाएगी।)

बाद में दूसरा भाग, व (जो सूखने के बाद) तीसरे भाग तक उस-उस जगह योग्य जितनी मोटाई का मिट्टी का लेप लगाएँ। (मिट्टी के थर की मोटाई कहीं ज्यादा व कहीं कम होती है।)

शेष भाग कुछ समय रहने दें, चौथा भाग का कुछ भाग बल्कल (छाल) से आच्छादित करें व बचा हुआ भाग कपास के धागों के साथ, जो कल्क होता है, उससे पूरा करें।

५.८४ अध्याय ८४

कल्क संस्कार लक्षण

इस अध्याय में १७ श्लोक हैं। इसमें कल्क (एक प्रकार की लेई, पेस्ट) तैयार करने की विधि का वर्णन किया है।

पहला कल्क

- नदी आदि से पानी के साथ बहकर आई हुई मिट्टी,
- बारीक रेत
- थोड़ी सी मोटी रेत वाली

उपरोक्त सामग्री को धोकर, सुखाकर महीन भस्म बना लें।

उसमें त्रिफला का पानी मिलाकर छोटे-छोटे गोले बनाकर सुखाएँ।

से) जहाँ मिले वहाँ की, अलग-अलग सुगन्ध वाली मिट्टी, कपित्थ के गोंद के बराबर या मधुका के गोंद के बराबर खूब घोंटे।

पाँच रात्रि तक ऐसा करके नारियल की चोटी के डेढ़ से दो अंगुल लम्बाई के टुकड़े करके वह मिट्टी के चौथे भाग के बराबर या आधे भाग के बराबर मिट्टी में मिलाए।

डोरियों से बांधे हुए लकड़ी के ढाँचे पर इस मिट्टी का एक, दो या तीन अंगुल मोटाई का थर (लेयर) करें।

उसके पश्चात् मिट्टी का लेप सुखने दें। मिट्टी के प्रत्येक नया थर पहले के ऊपर, सुखने के बाद, निरीक्षण कर, धीरे-धीरे लगाएँ।

शूल के बाहर की चौड़ाई के चार भाग करके एक भाग अधिक मोटाई का (मिट्टी का) लेयर लगाना योग्य समझे (सुखने के बाद मोटाई एक चौथाई रह जाएगी।)

बाद में दूसरा भाग, व (जो सुखने के बाद) तीसरे भाग तक उस-उस जगह योग्य जितनी मोटाई का मिट्टी का लेप लगाएँ। (मिट्टी के थर की मोटाई कहीं ज्यादा व कहीं कम होती है।)

शेष भाग कुछ समय रहने दें, चौथा भाग का कुछ भाग वल्कल (छाल) से आच्छादित करें व बचा हुआ भाग कपास के धागों के साथ, जो कल्क होता है, उससे पूरा करें।

५.८४ अध्याय ८४

कल्क संस्कार लक्षण

इस अध्याय में १७ श्लोक हैं। इसमें कल्क (एक प्रकार की लेई, पेस्ट) तैयार करने की विधि का वर्णन किया है।

पहला कल्क

- नदी आदि से पानी के साथ बहकर आई हुई मिट्टी,
- बारीक रेत
- थोड़ी सी मोटी रेत वाली

उपरोक्त सामग्री को धोकर, सुखाकर महीन भस्म बना लें।

उसमें त्रिफला का पानी मिलाकर छोटे-छोटे गोले बनाकर सुखाएँ।

उसमें तीन गुणा कपित्थ के गोंद मिलाए।

एक भाग गोंद + पाँच भाग जल = (स्वश्च) सूत

एक भाग गोंद + साढ़े पाँच भाग जल = (स्वाचल) स्वच्छ जल

एक भाग गोंद + छह भाग जल = (सैकत) सेक (जल) कहते हैं।

गोले में सूत यह क्रम से मिलाकर उस मिश्रण को मक्खन जितना मुलायम होने तक घोटें।
कपास के तन्तु भी बहुत मुलायम करके उसमें मिला दें।

कर्दली के डण्डे के मध्य में जैसा रेशा दिखता है वैसे ही रेशा कपास का दिखे, तब तक उस मिश्रण का मर्दन करें। यह पहला कल्क है।

दूसरा व तीसरा कल्क

क्रम से स्वच्छ जल व सेकजल मिलाकर घोटने से दूसरे व तीसरे लेयर के लिए कल्क तैयार होता है।

कपित्थ का गोंद + तिगुना या साढ़े तीन या चार गुना (काली मिर्च व त्रिफला) का भस्म =
त्रियव

उपरोक्त त्रियव तथा गोलों को अनुक्रम से सूत, स्वच्छ व सेकजल में पानी में मिलाकर घोटकर निकालें। उसके पश्चात् क्रम से दो या तीन यव मोटाई का कल्क का लेप लगाए।

सावधानी:-लेप कहीं भी छिद्र आदि में न बचने दें। उसके पश्चात् दो या डेढ़ या एक महीने सूखने दें।

उसके पश्चात् नारियल की कूची से उसको घिसकर खुरदरा करें। उसके पश्चात् स्वच्छ जल में कल्क लगाकर, अवयवों के माप पूरे करें।

अंग:- हाथ पैर पेट इत्यादि

उपांग:- (अंगों पर) गहने

प्रत्यंग:-मूर्ति के चिह्न वाहन

इस प्रकार मूर्ति के कल्क संस्कार को बताया है।



५.८५ अध्याय ८५

वर्णसंस्कार

इस अध्याय में ३६ श्लोक हैं।

सृष्टि क्रम

शंकर परम सद्भाव (द्रव्य) चन्द्रमा

महाभूत

शंकर शक्ति (शिव-शक्ति) नाद अग्नि वायु जल पृथ्वी (सफेद, लाल,
पीले व काले)

वर्ण

तत्त्व	रंग	स्वामी
जल	सफेद	विष्णु
अग्नि	लाल	महेश्वर
पृथ्वी (गोल)	पीला	गौरी
आकाश के नीले	काला	रुद्र

सफेद

श्वेत

शुक्ल	शंख के समान
धवल	चांदी के समान, गाय के दूध के समान
अतारक	तारे के समान
सफेद	मोती के समान

सफेद को अतारक कहते हैं।

लाल

लाल रंग के चार प्रकार होते हैं:-

अरुण	अशोक के समान
रक्त	कमल के फूल के समान
शोण	शुकपुष्प (रज) के समान
राक्षस (अग्नि)	पाटल (गुलाब के समान)

पीला

सुनहरा	सोने के समान
हल्का पीला	पुण्ड्रा (कमल का प्रकार) के समान व
पीला	हल्दी के समान
पीला	हरिताल के समान

नीला

नीला	मेघ के समान
साँवला नीला	कमल के समान
काला	मोर के पंख के समान
कृष्ण	भृगुपत्र के समान

रंग भेद

लाल रंग (२ प्रकार)	भूमि पर गिरा हुए रक्त
	जाति लिंग के समान
पीले रंग (दो प्रकार)	हरताल के समान
	अतसी (अलसी) के फूल के समान
साँवला	काले पत्थर के चूर्ण के समान
कृष्ण	दीए की कालिख के समान ।



इन सोलह रंगों को विभिन्न अनुपात में मिलाने पर अनेक प्रकार के रंग बनते हैं।

रंगछटा

पीले रंग + पीला रंग = गहरा पीला रंग

नारियल के पानी + पीला रंग = छाती में खून के समान लाल रंग

नारियल के पानी + चूना = प्रेत का (हल्का सफेद) रंग

राजावर्त व काले रंग का पत्थर, यह चूने का कार्य के लिए उत्तम है।

सफेद + लाल रंग = गौर वर्ण

सफेद + पीला रंग = (गौर रंग का) पूरक रंग

सफेद + कृष्ण = साँवला रंग

सफेद + कृष्ण + पीला रंग = शारच्छवि

सफेद + लाल + पीला रंग = संमिश्रक

लाल + पीला सम प्रमाण = बकुल के फल के समान रंग

यह ज्वाला के समान रंग होकर अग्नि वर्ण के नाम से प्रसिद्ध है।

पीले रंग + दुगुना लाल रंग = गहरा लाल रंग

पीला + लाल दोनों को सम प्रमाण = द्रव्य (विवर्ण)

लाल रंग में दोगुना विष का (काला रंग) = गुड़ का रंग

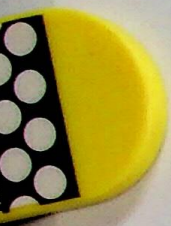
पीले रंग + आधा विष का रंग = कपिल (भूरा) रंग

सफेद + एक चौथाई लाल रंग = खपरेल का रंग

सफेद + एक चौथाई लाल रंग + नीला रंग = धान्य के अंकुर के समान रंग

श्याम + कुंकुम के समान लाल रंग आधा लेकर = जामुन के समान रंग

श्याम + लाख में (लाक्ष रस में) रंग = जामुन के समान रंग



जातिफल के प्रमाण से लाख में जो रस उसे लोहित कहते हैं।

कृष्ण + नीला रंग सम प्रमाण = बालों के समान रंग

धान्य के अनुसार साँवला + लाल रंग = मंजिष्ठ के समान रंग

कृष्ण + पीला रंग सम प्रमाण = शहद का रंग

कृष्ण रंग + दोगुना पीला रंग = मनुष्य जैसा रंग

मनुष्य + लाल रंग ज्यादा मिलाने = हरा रंग

इस प्रकार ये इस अध्याय में रंगों का वर्णन है।

इस प्रकार से हमने काश्यप शिल्प ग्रन्थ की विषय वस्तु को देखा।

१. अथ यज्ञोपवीतं कथं धारयति । अथ यज्ञोपवीतं कथं धारयति ।
यज्ञोपवीतं धारयति । यज्ञोपवीतं धारयति ।
यज्ञोपवीतं धारयति । यज्ञोपवीतं धारयति ।
यज्ञोपवीतं धारयति । यज्ञोपवीतं धारयति ।
यज्ञोपवीतं धारयति । यज्ञोपवीतं धारयति ।
यज्ञोपवीतं धारयति । यज्ञोपवीतं धारयति ।
यज्ञोपवीतं धारयति । यज्ञोपवीतं धारयति ।
यज्ञोपवीतं धारयति । यज्ञोपवीतं धारयति ।

अध्याय ६

विश्वकर्म-प्रकाश

तथा

काश्यप शिल्प

का तुलनात्मक अध्ययन



अध्याय ६
विश्वकर्म-प्रकाश
तथा
काश्यप शिल्प
का तुलनात्मक अध्ययन



अध्याय ६

विश्वकर्म प्रकाश तथा काश्यप शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन

क्रमांक	विषय वस्तु	पृष्ठ क्रमांक
१	ग्रन्थ परिचय	३
२	मंगलाचरण	३
३	ग्रन्थ का उद्देश्य	३
४	वास्तुपुरुष की उत्पत्ति	४
५	वास्तु-पद विन्यास प्रकार	४
६	बलिकर्म	७
७	दिशा ज्ञान	११
८	भूमि चयन	१६
९	भूमि परीक्षा	२०
१०	आयादि	२३
११	गृह विन्यास विचार	२७
१२	शिलान्यास व गर्भविन्यास	३१
१३	द्वार	३९
१४	वृक्षछेदन विधि	४२
१५	पीठलक्षण	४९

संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोश

अंग्रेजी शब्द	संस्कृत शब्द	पृष्ठ संख्या
1	अक्षर	1
2	अक्षर	2
3	अक्षर	3
4	अक्षर	4
5	अक्षर	5
6	अक्षर	6
7	अक्षर	7
8	अक्षर	8
9	अक्षर	9
10	अक्षर	10
11	अक्षर	11
12	अक्षर	12
13	अक्षर	13
14	अक्षर	14
15	अक्षर	15
16	अक्षर	16
17	अक्षर	17
18	अक्षर	18
19	अक्षर	19
20	अक्षर	20
21	अक्षर	21
22	अक्षर	22
23	अक्षर	23
24	अक्षर	24
25	अक्षर	25
26	अक्षर	26
27	अक्षर	27
28	अक्षर	28
29	अक्षर	29
30	अक्षर	30
31	अक्षर	31
32	अक्षर	32
33	अक्षर	33
34	अक्षर	34
35	अक्षर	35
36	अक्षर	36
37	अक्षर	37
38	अक्षर	38
39	अक्षर	39
40	अक्षर	40
41	अक्षर	41
42	अक्षर	42
43	अक्षर	43
44	अक्षर	44
45	अक्षर	45
46	अक्षर	46
47	अक्षर	47
48	अक्षर	48
49	अक्षर	49
50	अक्षर	50
51	अक्षर	51
52	अक्षर	52
53	अक्षर	53
54	अक्षर	54
55	अक्षर	55
56	अक्षर	56
57	अक्षर	57
58	अक्षर	58
59	अक्षर	59
60	अक्षर	60
61	अक्षर	61
62	अक्षर	62
63	अक्षर	63
64	अक्षर	64
65	अक्षर	65
66	अक्षर	66
67	अक्षर	67
68	अक्षर	68
69	अक्षर	69
70	अक्षर	70
71	अक्षर	71
72	अक्षर	72
73	अक्षर	73
74	अक्षर	74
75	अक्षर	75
76	अक्षर	76
77	अक्षर	77
78	अक्षर	78
79	अक्षर	79
80	अक्षर	80
81	अक्षर	81
82	अक्षर	82
83	अक्षर	83
84	अक्षर	84
85	अक्षर	85
86	अक्षर	86
87	अक्षर	87
88	अक्षर	88
89	अक्षर	89
90	अक्षर	90
91	अक्षर	91
92	अक्षर	92
93	अक्षर	93
94	अक्षर	94
95	अक्षर	95
96	अक्षर	96
97	अक्षर	97
98	अक्षर	98
99	अक्षर	99
100	अक्षर	100

अध्याय ६

विश्वकर्म प्रकाश तथा काश्यप शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन

१ ग्रन्थ परिचय

विश्वकर्मप्रकाश:- विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ की रचना विश्वकर्माजी द्वारा की गई है। इस ग्रन्थ में कुल १३ अध्याय तथा १३७४ श्लोक हैं।

काश्यप-शिल्प ग्रन्थ की रचना काश्यप ऋषि द्वारा की गई है। इस ग्रन्थ में ८५ अध्याय तथा लगभग ३३०० श्लोक हैं।

विश्वकर्मप्रकाश ग्रन्थ में वास्तुशास्त्र से संबंधित अनेकानेक पक्ष को उद्घाटित किया है, इसमें मुहूर्त, भूमिचयन, परीक्षण, खनन विधि, द्वार निर्धारण, वृक्षचयन, शल्यज्ञान, वास्तुपदविन्यास, आदि विषयों को विस्तार दिया है।

काश्यप शिल्प ग्रन्थ में मंदिर निर्माण से संबंधित पक्ष गर्भविन्यास, पूजन विधि, विभिन्न देवताओं की प्रतिमा विधान को विस्तार से बताया है।

दोनों ग्रन्थों के मंगलाचरण में भगवान् शिव की आराधना या स्तुति की गई है, इससे प्रतीत होता है कि दोनों ही ग्रन्थ शैव या शिव परम्परा के हैं।

२ मंगलाचरण

विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ के प्रारम्भ में गणेशजी, सरस्वती आदि की वन्दना करने के उपरान्त शिवजी की स्तुति की गई है। इस परम्परा को महादेव से प्रारम्भ बताया गया है अतः ग्रन्थ शिव आरम्भ हुआ माना जा सकता है।

काश्यप-शिल्प ग्रन्थ के आरम्भ में महादेव की वन्दना की गई है तथा ग्रन्थ महादेव व काश्यप ऋषि के संवाद के रूप में आरम्भ हुआ है, अतः यह ग्रन्थ का आरम्भ भी शिवजी से हुआ है।

३ ग्रन्थ का उद्देश्य

विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में बताया गया है कि ग्रन्थ की रचना: लोकानां हितकाम्यया ..., लोक के हित के लिए की। साथ ही कहा:- 'जगतां हिताय' । जगत के भले के लिए शास्त्र की रचना की गई है। ५-६।१।।

काश्यप-शिल्प ग्रन्थ में कहा है-

अल्पायुष्यादिधर्माणां नराणां त्वधिकारिणाम्।

अनुग्रहार्थं त्वेतेषां संक्षेपाद्वद मे प्रभो ॥६॥१॥

सृष्टि के अल्पायुषी (कम आयु वाले) मात्र अधिकारी हैं, ऐसे मनुष्यों के लिए, इन पर अनुग्रह करने के लिए हे प्रभो। वे तन्त्र मुझे संक्षेप में बताइए।

इस प्रकार से हमने देखा कि विश्वकर्म प्रकाश तथा काश्यप शिल्प दोनों ही ग्रन्थ शिव परम्परा के हैं।

४ वास्तुपुरुष की उत्पत्ति

विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में बताया है कि त्रेतायुग के मध्य में एक महाभूत व्यवस्थित हुआ, उसमें अपने शरीर से सम्पूर्ण भुवन को सुला दिया, देवता भयभीत हो इन्द्र की शरण में ब्रह्मा जी के पास गए, ब्रह्माजी के कहे अनुसार उसे पृथ्वी पर अधोमुख गिरा कर वे देवता उसके ऊपर बैठ गए।

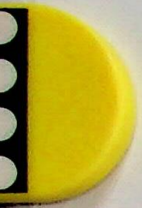
काश्यप शिल्प में वास्तुपुरुष उत्पत्ति के संदर्भ में बताया है कि महाजल से एक अत्यन्त विशाल शरीर वाला भूत बाहर आया तथा उसने देवताओं से युद्ध किया। जब उसे जीतना संभव नहीं था तब उसे देवताओं ने मिलकर अधोमुख गिरा दिया एवं उसके ऊपर बैठ गए।

विश्लेषण:- उपरोक्त वास्तुपुरुष की उत्पत्ति के संबंध में हम विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वास्तुपुरुष त्रेतायुग के मध्य उत्पन्न हुआ तथा चेतना के हास होने पर वास्तु की उत्पत्ति हुई, क्योंकि सतयुग के पश्चात् रजोगुणी चेतना प्रधान होने पर वास्तुपुरुष की उत्पत्ति हुई।

५ वास्तु-पद विन्यास प्रकार

विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में परमशायिक तथा मण्डूक पद विन्यास का वर्णन मिलता है। परमशायिक या एकाशीति पद विन्यास में भूखण्ड को दस आड़ी तथा दस खड़ी रेखाओं के माध्यम से इक्यासी भागों में विभाजित करते हैं, प्रत्येक भाग पद कहलाता है। प्रत्येक पद की ऊर्जा पद देवता के नाम से अभिव्यक्त की गई है।

मण्डूक पद विन्यास में नौ आड़ी व नौ खड़ी रेखाओं के द्वारा चौंसठ भागों में विभाजित करते हैं।



पदविन्यास चित्रानुसार बताया गया है।

इनमें देवताओं का पदों की संख्या में अन्तर है। विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में नाडी-वंश-सिरा आदि के मान को बताया है। मंडल के बाहर स्थित देवताओं का वर्णन है। मर्मस्थान ज्ञात करने की विधि तथा मर्म स्थान के दूषित होने पर परिणाम का उल्लेख किया है। वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित ४५ देवताओं के रंग तथा मन्त्र का उल्लेख भी विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में मिलता है।

वायु	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	ऋक्	अदिति	दिति	ईश
पाप	रुद्र	रुद्रजय	पृथ्वीधर			आप	आपवत्स	पर्जन्य
रोग								जयन्त
शेष	मित्र		ब्रह्मा			समरी		महेन्द्र
वरुण								आदित्य
पुष्पदन्त								सत्यक
सुग्रीव	इन्द्रराज	इन्द्र	विवस्वान			सावित्र	सवित्र	भृश
दौवारिक								अन्तरिक्ष
पितृ	मृग	भृंगराज	गन्धर्व	यम	राक्षस	वितथ	पूषा	अग्नि

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

रोग	नाग						दिति	क्षिणी
पाप	रुद्र	मुख्य	भल्लाट	सोम	सर्प	अदिति	आपवत्स	पर्जन्य
शोष		राजयक्ष्मा	भूधर			अपवत्स	जयन्त	
असुर		मित्र	ब्रह्मा			आर्यमा	कुलिशायुध	
वरुण							सूर्य	
पुष्पदन्त							सत्य	
सुग्रीव		इन्द्र	विवस्वान			सविता	भृश	
दौवारिक	इन्द्रराज						सचित्र	अन्तरिक्ष
पितृ	मृग	भृंगराज	गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वितथ	पूषाण	वायु

६ बलिकर्म

काश्यप शिल्प

बलिकर्म के अवसर (अध्याय ३ श्लोक १)

हर्म्य (घर या भवन) की स्थापना के समय, प्रथम ईंट (अथवा पत्थर) रखते समय, लिंग की स्थापना, सभी प्रकार की स्थापना में, जल से प्रोक्षण (छिड़काव) करें।

स्थान

मंडप या नृतरंग में, बाणलिंग की प्रतिष्ठा करके, सभा में, यज्ञशाला में वास्तुहोम करें।

पूजन-विधि- वेदी निर्माण

पूर्व में या उत्तर दिशा में या ब्रह्म के पद में एक हस्त चौड़ाई का चौकोर यज्ञ वेदी, बनाए।

पूजन

चावल के मध्य में एक कलश गन्ध, स्वर्ण व रत्न रखकर जल से पूर्ण करें। उस कलश के जल से द्वार देवता का पूजन करें। अग्नि कार्य हेतु अग्नि की स्थापना करें।

हवन (बलि)

देवताओं को उनके नाम के साथ गन्ध, पुष्प तथा धूप से पूजन करें। उनके नाम के पहले प्रणव तथा बाद में स्वाहा लगाकर, होम करें।

ब्रह्म की प्रसन्नता के लिए हवन करें। (१०० या) ५० या २५ बार गाय के (दूध से बने) घी से हवन करें।

खीर व चरु (भात, यज्ञ के लिए पकाया हुआ अन्न) से प्रत्येक को १०० आहुती दें।

उसके बाद प्रासाद में मन्त्र पूर्वक प्रोक्षण (जल का छिड़काव) करें।

क्रम से पहले परिस्तरण (वस्त्र पहन कर) करके, बाद में घी उड़ाए। होम समाप्त करके, दण्डवत नमस्कार करके, गलती के लिए क्षमा माँगे।

ब्रह्मस्थान पर उस अग्नि का विसर्जन करें। विद्वान रखे हुए पानी से सर्वत्र प्रोक्षण (छिड़काव) करने के बाद में हव्य मंत्र से वास्तु देव जाने के लिए पर्यग्निकरण करें।



विश्वकर्म प्रकाश

अध्याय ५

श्लोक क्रमांक ४७ से ४९ में शिलान्यास विधि का वर्णन है, इसमें बताया गया है कि गणेशजी, दिक्पाल आदि का पूजन करने के उपरान्त हवन हेतु तीन मेखला वाली योनि के आकार के कुण्ड को बनाना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ५० से ९८ तथा ११६ से १४६ तक वास्तुपुरुष में मंडल में स्थित ४५ देवता तथा मंडल से बाहर स्थित चरकी आदि राक्षसी तथा विभिन्न देवताओं हेतु मन्त्र, स्थान, रंग, पदसंख्या, बलि आदि का वर्णन है:-

वास्तुपुरुष मंडल-देवता व पद

देवता	पद	रंग	बलि
शिखरी	१	लाल	घी व अन्न
पर्जन्य	१	पीला	कमल के साथ घी व अन्न
जयन्त	२	पीला	कमल के साथ घी व अन्न
कुलिशायुध	२	पीला	पांच रत्न तथा पुष्टि के पदार्थ
सूर्य	२	लाल	कुशा, धुएँ व लाल रंग, चंदोवा व मालपूआ
सत्य	२	सफेद	घी व गेहूँ
भृश	२	काला	मछली व अन्न
अन्तरिक्ष	१	काला	पूड़ी, पक्षी के मांस
वायु	१		सत्तु
पूषा	१	लाल	लाजा
वितथ	२	सफेद	चने व अन्न
गृहक्षत	२	पीला	शहद व अन्न
यम	२	काला	मांस
गन्धर्व	२	लाल	गन्ध व चावल
भृंगराज	२	कृष्ण	भेड़ की जीभ

मृग	१	पीला	नीलपद व जौ
पितृ	१	लाल	खिचड़ी
दौवारिक	१	लाल	खिचड़ी
सुग्रीव	२	सफेद	दन्तकाष्ठ, काला आटा, दन्तधावन पूड़ी व जौ
पुष्पदन्त	२	लाल	खीर
वरुण	२	सफेद	यम (?) को कुशा का स्तम्भ पीठी व सोने
असुर	२	पीला-लाल	मदिरा
शोष	२	काला	घी व ओदन (भात)
पाप	१	पीला	गोह (गोधा)
रोग	१	लाल	घी व भात
सर्प	१ (२)	लाल	फल-फूल व नागकेसर
मुख्य	२	लाल	घी, गेहूँ
भल्लाट	२	कृष्ण	मूँग व भात
सोम	२	सफेद	खीर व घी
सर्प	२	कृष्ण	पौष्टिक पदार्थ व शालि (चावल)
अदिति	२	पीले	रोटियों
दिति	१	पीले	पूरियों
आप		सफेद	खीर व घी
आर्यमा	३	काले	शक्कर के साथ खीर
सविता	३	लाल	कुश व भात
विवस्वान	३	सफेद	लाल चन्दन व खीर
इन्द्र	१	लाल	घी सहित हरिताल व भात
जय (इन्द्रजय)		सफेद	लड्डू, मिर्च, घी व चन्दन
मित्र	३	सफेद	घी, भात, कच्चा मांस व शहद
रुद्र		लाल	खीर व गुड़ अर्यमा को , सवित्र को गुड़ व
मालपुआ			



राज्यक्ष्मा	१	लाल	मांस व कूष्मांस
पृथ्वीधर	३	लाल	मांस व कूष्मांस
ब्रह्मा	९	पीला-सफेद	पंचगव्यं, जौ, तिल, अक्षत व दही
आपवत्स		सफेद	
सावित्र		सफेद	

पदमंडल के बाहरी देवी (राक्षसी)

नाम	स्थान	वर्ण	बलि पदार्थ
चरकी	ईशान के बाहर	धूम्र	उड़द का भात तथा घी के साथ पद्मकेशर
विदारिका			लाल चितान, माषभक्त तथा हल्दी
पूतना		हरित-पीले	माषभक्त, रक्त, अस्थि
पापराक्षसी		काला	मछली के मांस, शराब व आसव
स्कन्ध	पूर्व	लाल-काला	रक्त व शराब
अर्यम्णा	दक्षिण	काला	मांस (उड़द)
जृम्भक	पश्चिम	लाल	मांस व रक्त
पिलिपिच्छक		पीला	रक्त
भीमरूप	ईशान कोण	लाल	कबूतर, शराब, वसा, रक्त, मांस व
खिचड़ी			
त्रिपुरारि	अग्नि कोण	काला	
अग्निजिह्व	नैऋत्य कोण	पीला	दूध व सेंधा नमक
कराला			लाल पक्का मांस, रक्त व सेंधा नमक व दूध
हेतुक	पूर्व	काला	खीर व रक्त
अग्निवेताल	दक्षिण	काला	रक्त व मांस
काल	पश्चिम		मांस व भात
एकपाद	उत्तर		पीले खिचड़ी
गन्धमाल्य	ईशान व पूर्व	पीला	
ज्वालास्य	नैऋत्य व बुद्धि के मध्य	श्वेत	

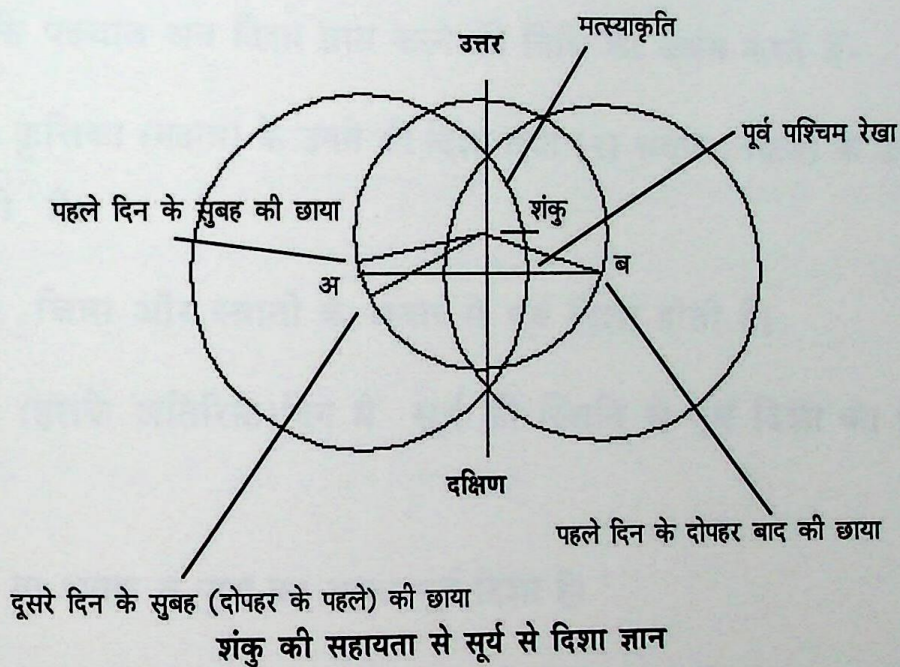
७ दिशा ज्ञान

काश्यप शिल्प ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में दिशा ज्ञान विधि का वर्णन मिलता है।

शंकु की लम्बाई सोलह अंगुल बताई गई है। शंकु के अग्र भाग की मोटाई, मूल की मोटाई से आठ भाग कम होती है। शंकु मजबूत लकड़ी का व सुवृत्त होता है।

भूमि के मध्य में शंकु की लम्बाई से दोगुना त्रिज्या को वृत्त खींचकर, उसके बीच में शंकु को रखना चाहिए।

दोपहर से पहले तथा दोपहर के बाद शंकु के अग्र भाग (आगे के भाग) की छाया वृत्त को जिन दो बिन्दु पर स्पर्श करें, वहाँ चिन्ह लगाए। इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने पर पूर्व-पश्चिम रेखा मिलती है।



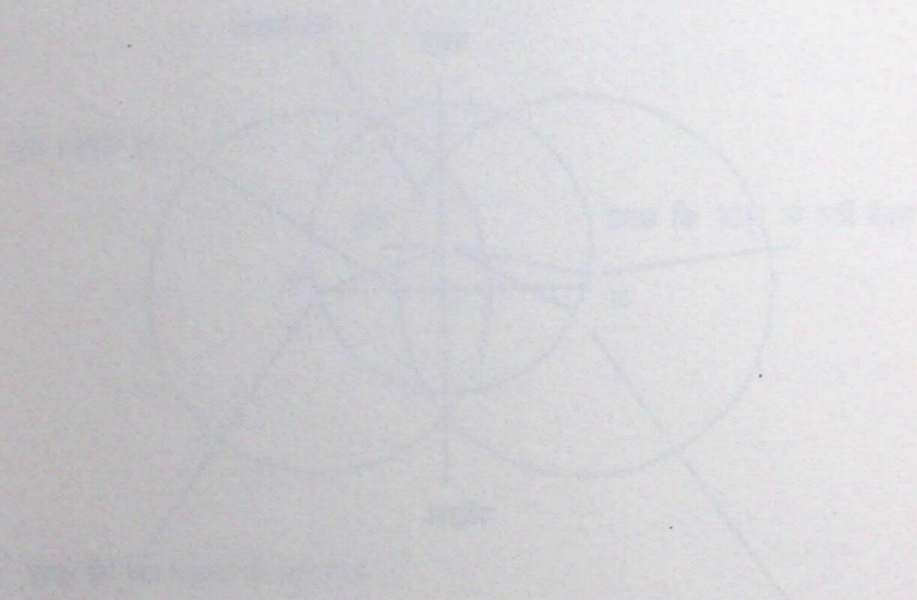
विश्वकर्मप्रकाश

भूखण्ड के बीच में एक चौकोर स्थान पर जमीन को समतल करके, उसके मध्य में वृत्त बनाकर दिशा का साधन करें। १४/२

दिवसाधनं च कर्तव्यं शिलाद्वारावरोपणम्॥४७॥

स्तम्भे च वास्तुविन्यासे तथा च गृहकर्मणि।

प्रासादे वा तथा यज्ञे मण्डपे बलिकर्मसु॥४८॥



शिला व द्वार के स्थापन में दिशा का साधन करें। स्तंभ, वास्तुपुरुष की स्थापना, गृहकर्म, प्रासाद, यज्ञमण्डप तथा बलिकर्म में दिक्साधन करें।

व्याख्या-यहाँ दिक्साधान (दिशा ज्ञात करने की विधि) का महत्व बताया है। वास्तु के सभी कार्य प्रारम्भ करते समय दिशा ज्ञात करना आवश्यक है। महत्वपूर्ण कार्य के समय दिशा पुनः देखना चाहिए। शिला स्थापना के समय, द्वार लगाते समय, वास्तुपुरुष की स्थापना, भवन, मंदिर आदि की प्लानिंग के समय, यज्ञमंडप आदि सभी कार्य में दिशा का बड़ा महत्व है, अतः दिशा साधन करें। उदाहरण के लिए जैसा शिला स्थापित करना है तो कौन सी शिला किस दिशा में स्थापित होगी, उसका मुख किधर होगा आदि-आदि बातों का विचार, दिशा के अनुसार ही किया जाएगा। उसी प्रकार वास्तुपूजन करते समय विभिन्न देवता की स्थापना, उनके पद दिशा ज्ञात करने के बाद की कर सकते हैं।

इसके पश्चात अब दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन करते हैं-

(१) कृत्तिका (नक्षत्र) के उगने की दिशा तथा (२) श्रवण (नक्षत्र) के उगने की दिशा, पूर्व होती है।

(३) चित्रा और स्वाती के अन्तर में पूर्व दिशा होती है।

(४) (इसके अतिरिक्त) दिन में सूर्य की स्थिति से पूर्व दिशा का निर्णय करना चाहिए।

(५) या श्रवण व पुष्य का अन्तर पूर्व दिशा है।^१

व्याख्या-यहाँ शंकु के द्वारा दिशा ज्ञान की विधि का वर्णन किया गया है। उस विधि की प्रारम्भिक तैयारी के रूप में कहा है कि जहाँ शंकु को स्थापित करना है, उस भूमि को पहले समतल कर लो, लीप लो, ताकि बाद में जो चिह्न बनाएँगे वे चिह्न स्पष्ट दिखेंगे।

‘कृत्तिकोदयतः प्राची प्राची स्याच्छ्रवणोदये।

चित्रास्वात्यंतरे प्राची दिनप्राची रवेः स्थिता॥४९॥

यदि वा श्रवणं पुष्यं(य) चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।

इष्टशंकुप्रमाणेन सममण्डलमालिखेत्।
 तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कु वृत्तं कृत्वा द्विरेखिकम्॥५२॥
 द्युतिप्रवेशाय गमस्थाने चिह्नं प्रकल्पयेत्।
 अपरेऽहि च तन्मध्ये शंकुमारोपयेत्ततः॥
 तत्र चिह्नं च तन्मानं मानयोर्यदनन्तरम्।
 तेनानुमानेन विषुवद्विवसान्तं च साधयेत्॥५३॥
 यावन्तो व्यवहियन्ते तावद्धृत्ते विनिक्षिपेत्।
 शोधयेद्योजयेद्वापि दक्षिणोत्तरयोर्द्वयोः॥५४॥
 क्रान्त्योर्यदवशिष्येत तत्प्राची समुदाहृता॥५५॥

इष्ट शंकु के प्रमाण से समान मण्डल को लिखे (बनाए), उसके बीच में शंकु को स्थापित करें। शंकु के शीर्ष की छाया का वृत्त में प्रवेश व निर्गम, पूर्वाह्न व अपराह्न में, चिह्नित करें।

(दूसरे दिन भी उसी प्रकार शंकु को रखें। पुनः छाया प्रवेश का चिह्न लगाए।) दोनों के अन्तर के अनुमान से विषुवद दिन का साधन करें। जितना अन्तर आए, उतना वृत्त में छोड़ दे या जोड़ दे। क्रान्ति के अनुसार दक्षिणोत्तर (दक्षिणायण व उत्तरायण) के क्रम से घटाने या जोड़ने से जो बिन्दु आए वही पूर्व दिशा होती है। क्रान्तियों के मध्य में जो शेष रहे वही प्राची दिशा कही है।

विश्लेषण

इन श्लोकों में दिशा ज्ञान की विधि का वर्णन मिलता है। वास्तु विद्या में, दिशा ज्ञान एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। ठीक-ठीक दिशा ज्ञात करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि बिना सही दिशा का ज्ञान प्राप्त किए, किसी प्लॉट का ठीक-ठीक पदविन्यास करना तथा उस पर दिशा के अनुसार कमरे बनाना व आय आदि देना संभव नहीं है।

यह दिशा ज्ञान पृथ्वी पर उपस्थित किसी भी प्रकार के रेडिएशन से अप्रभावित होना चाहिए। जैसे यदि पृथ्वी के उस भाग पर यदि कोई ऐसा पदार्थ है, जो चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करता है (भूमि के नीचे लोहा इत्यादि), तब तो चुम्बकीय सुई के द्वारा ठीक-ठीक दिशा ज्ञान संभव नहीं है, क्योंकि इस पदार्थ के कारण चुम्बकीय सुई प्रभावित होगी तथा ठीक-ठीक दिशा ज्ञान नहीं दे पाएगी। अतः वास्तुविद्या के ग्रन्थों में शंकु स्थापन विधि के द्वारा दिशा ज्ञान विधि का वर्णन मिलता है।

इसमें एक शंकु बताया गया है। जो की लकड़ी का बना होता है। यह लकड़ी भी वर्ण के अनुसार होती है।

मानसार ग्रन्थ के अनुसार शंकु की लकड़ी खदिड़, तिन्दुक, सफेद दूधवाले वृक्ष या शुभदन्त, कृतमाल, शमी, चन्दन या रक्त चन्दन की हो सकती है तथा शंकु की लम्बाई भी वर्ण के अनुसार अलग-अलग होती है।

इसकी लम्बाई २४, १८, १२ या ९ अंगुल हो सकती है। मानसार के अनुसार, शंकु का मूल पाँच अंगुल तथा शीर्ष एक अंगुल का होता है।

मानसार के अनुसार, शंकु का मूल पाँच अंगुल तथा शीर्ष एक अंगुल का होता है।

मनुष्यालय चन्द्रिका के अनुसार, इसकी लम्बाई आधा हस्त तथा मूल (नीचे) पर व्यास (डायमीटर) २ अंगुल होता है, यह व्यास, क्रमशः ऊपर की ओर कम होता जाता है तथा ऊपरी सिरे पर व्यास १ अंगुल होता है।

विधि:- सबसे पहले भूमि को समतल करे तथा उसके बीच में, एक हस्त त्रिज्या (रेडियस) का एक वृत्त खींचे। उस वृत्त के केन्द्र में शंकु को स्थापित करे।

जब सूर्य पूर्व दिशा में उदित होता है, तब उस शंकु के शीर्ष (टिप) की छाया दूर पश्चिम दिशा में पड़ती है। जैसे-जैसे सूर्य ऊपर की ओर चढ़ता है, शंकु के शीर्ष की छाया शंकु के पास आती जाती है, (बनाए गए वृत्त की ओर अग्रसर होती है।) दोपहर के पहले एक ऐसी स्थिति आती है, जब शंकु के शीर्ष की छाया उस वृत्त की परिधि को स्पर्श (टच) करती है, उस समय उस स्थान को चिह्नित कर ले। (निशान लगा ले।)

धीरे-धीरे जैसे-जैसे समय बीतता है, दोपहर के बाद, सूर्य पश्चिम दिशा की ओर अग्रसर होता है, शंकु के शीर्ष की छाया, पूर्व दिशा की ओर बढ़ती जाती है, इस प्रकार से बढ़ते हुए छाया वृत्त में से होकर जब बाहर निकलती है उस स्थान को भी चिह्नित कर ले। इस प्रकार से वृत्त पर दो बिन्दु मिलते हैं।

अगले दिन, पुनः दोपहर से पहले, पश्चिम दिशा में शंकु के शीर्ष की छाया को चिह्नित कर ले। इस प्रकार पश्चिम दिशा में वृत्त पर दो बिन्दु प्राप्त होते हैं। इन दोनों बिन्दुओं के बीच की दूरी को तीन भागों में विभाजित करे तथा पहले दिन वाले बिन्दु से एक भाग दूरी वाले भाग से, पूर्व दिशा वाले बिन्दु को मिला दे। इस प्रकार जो रेखा प्राप्त होती है, वह पूर्व-पश्चिम रेखा होती है।



अब उत्तर-दक्षिण दिशा प्राप्त करने के लिए, जो पूर्व-पश्चिम रेखा के दो सिरे हैं, वहाँ से रेखा की लम्बाई के आधे से अधिक लम्बाई की त्रिज्या लेकर, रेखा के दोनों ओर, ऊपर तथा नीचे चाप (आर्क) खींचें। जहाँ दोनों चाप एक-दूसरे को काटते हैं उन बिन्दुओं को मिलाने से उत्तर-दक्षिण रेखा प्राप्त होती है।

इस प्रकार हमें पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण रेखा प्राप्त होती है।

अब ईशान आदि कोण निकालने की विधि:-

पूर्व-पश्चिम व उत्तर-दक्षिण रेखा के सिरों से समान त्रिज्या लेकर, वृत्त बनाए।

जहाँ चारों वृत्त एक-दूसरे को काटते हैं, उन बिन्दुओं को मिलाने से ईशान-नैऋत्य तथा वायव्य-आग्नेय रेखा प्राप्त होती है।

इन चारों बिन्दुओं को मिलाने से एक वर्ग बनता है।

वास्तु में यदि प्लॉट वर्गाकार न हो, तो उसे ब्रह्मसूत्र (पूर्व-पश्चिम रेखा) व यम सूत्र (उत्तर-दक्षिण रेखा) को आधार (coordinate axis) बनाकर वर्गाकार करें।

८ भूमि चयन

विश्वकर्म प्रकाश

शुभ आकार

वृषभाकार

वृत्ताकार

भद्रपीठ

त्रिशूल

लिङ्ग

महल के झण्डे के समान

घड़ा

अशुभ आकार

त्रिकोणाकार

गाड़ी के समान आकार

सूपड़े के समान

पंखे के समान

मृदंग के समान

सर्प के समान

मेढक के समान

गधे के समान

अजगर के समान

चिमटे के समान

कौवे के समान

उल्लू के समान

साँप के समान

बाँस के समान

परिणाम

पशु की वृद्धि

धनदायी

धनदायी

वीरों की उत्पत्ति, धन व सुख देने वाली

साधुओं के लिए शुभ

पदोन्नति

धन को बढ़ाने वाली

परिणाम

पुत्र हानि

सुखहानि

धनहानि

धर्म की हानि

वंशहानि

भय

डर देने वाली

गरीबी

मृत्यु देने वाली

पुरुषार्थ से हीन करने वाली

दुख, शोक, व डर

दुख, शोक, व डर

पुत्र-पौत्र का नाश

वंश नाश

सुअर, ऊँट, बकरे के समान कमजोर, मूर्ख व ब्रह्म का नाश करने वाले पुत्र
 गिरगिट व मुर्दे के समान पुत्र नाश, धनहानि व पीड़ा
 कुत्ते व सियार के समान भयानक पुत्र

भूमि फल अन्य विचार

मनोरम भूमि	पुत्रदायक
दृढा भूमि	धन
उत्तर व ईशान में झुकीभूमि	पुत्र व धन
गम्भीर आवाज वाली भूमि	गम्भीर पुत्र
ऊँची भूमि	उच्च पदस्थ पुत्र
समतल भूमि	सौभाग्य
विकट भूमि	शूद्रों, किले में रहने वालों व चोरों के

लिए शुभ

कुश-काश से युक्त हो,	ब्रह्म तेज के समान पुत्र
दूर्वा से युक्त भूमि	वीरों को उत्पन्न करने वाली
फल से युक्त भूमि	धन व पुत्र
नदी के कटाव पर घर	मूर्ख तथा मृत सन्तान
जिस भूमि के बीच में पत्थर हो	दरिद्रता
जो भूमि गड्ढे में हो	मिथ्यावादी पुत्र
विवर से युक्त भूमि	पशु व पुत्र को दुख
आड़ी-टेड़ी भूमि	विद्या-हीन पुत्र
डरावनी भूमि	डर
जहाँ हवा का प्रकोप हो	हवा से उत्पन्न डर
जिस भूमि पर रीछ आते हों	पशु हानि
भयंकर भूमि	भयंकर पुत्र
कुत्ते व सियार के समान	भयंकर पुत्र
रुखी भूमि	बुरे वचन कहने वाली सन्तान



भूमि में दीमक के घर हों	विपत्ति
धूर्त के घर के पास	निश्चित रूप के मरण
जो भूमि चौराहे पर	कीर्ति का नाश
मंदिर के पास	उद्वेग
मन्त्री के पास	धन हानि
जिस भूमि में गड्ढा हो	विपत्ति
छिद्र वाली भूमि	प्यास अधिक लगती है
कछुए के समान पर	धन नाश

भूमि चयन के समय शुभाशुभ शकुन

श्लोक क्रमांक ७२ से ८० भूमि चयन करते समय के शुभ व अशुभ शकुन का वर्णन किया गया है। यह बताया है कि भूमि पर प्रवेश करते समय पुण्याहवाचन, शंख की आवाज, पढने के शब्द, पानी से भरा घड़ा, ब्राह्मण, वीणा, क्षेत्र की आवाज, पुत्र की माता, गुरु, मृदंग की ध्वनि वाद्य यन्त्रों की आवाज, भेरी की आवाज सुनाई देना शुभ होता है। स्वच्छ कपड़ों को पहने हुए कन्या, सुस्वाद व सुगन्धित मिट्टी, फूल, सोना, चांदी, मोती, मूँगा तथा अच्छे खाने की चीजों का दिखना शुभ होता है। हिरण, सुरमा, बंधा हुआ पशु, पगड़ी, चन्दन, शीशा, पंखा तथा वर्धमान के दर्शन होना (दिखना) शुभ होता है। मांस, दही, दूध, पालकी, छत्र, मछलियाँ, मिथुन इनका दिखाई देना आयु व स्वास्थ्य की वृद्धि करने वाला होता है। साफ सुथरा कमल का फूल, गाने की आवाज, सफेद बैल, हिरण, ब्राह्मण इनका गृह कार्य में आते जाते समय दिखाई देना शुभ होता है। हाथी, घोड़ा, सौभाग्यवती महिला, श्रेष्ठ स्त्री का दिखाई देना धन, पुत्र, सुख व स्वास्थ्य को बढ़ाता है। वेश्या, अंकुश, दीपक की माला, आभूषण पहने हुए कन्या, तथा बारिश का होना घर को बनाना शुरू करते समय शुभ होता है।

अशुभ शकुन

बुरे शब्द, शत्रु की आवाज, शराब, चमड़ा, हड्डी, घास, भूसी, सर्प चर्म, कोयला (का दिखना अशुभ होता है।) कपास, लवण, कीचड़, नपुंसक, तैल, दवाई, मल, काले अनाज, बीमार, जिसने उबटन लगाया हो (ऐसा व्यक्ति दिखाई देना अशुभ होता है।) पतित, जटाधारी, उन्मत्त, गंजा, नंगे सिर वाला, ईंधन, रोने या विलाप करने का शब्द, पक्षी, मृग या मनुष्य एक साथ (इनका दिखाई देना अशुभ होता है।)

ज्वाला, दग्धा तथा धूम दिशा को ओर मुख करके यदि भूमि में प्रवेश करें तो मृत्यु होती है तथा उस भूमि में शल्य होता है।

जिस वस्तु का अपशकुन होता है, उस वस्तु का शल्य उस घर में होता है। जिस भूमि में शल्य हो उस भूमि में घर नहीं बनवाना चाहिए तथा रहना भी नहीं चाहिए।

स्वप्न विधि

अध्याय २ श्लोक क्रमांक १ से १३ तक स्वप्न विधि का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि पहले जिस स्थान पर निर्माण कार्य करना हो तो उस स्थान की भूमि को साफ-सुथरा करें। गृहस्वामी स्वच्छ रेशमी वस्त्र आदि को धारण कर, माला आदि से सुशोभित हो, जितेन्द्रिय रहकर, अल्पाहार रहकर भगवान शंकर का पूजन आदि करें। रुद्राध्यायी का पाठ करें। स्थान पर जाकर गणपति, भूमि, दिक्पाल, लक्ष्मी आदि का पूजन करें, चारों दिशाओं में नवीन कलश को स्थापित करें, वे जल, रत्न, गन्ध, सोना आदि से पूर्ण हों। भली प्रकार से शयन को बिछाकर उस पर दाहिनी करवट सोए, रात्रि के अन्तिम प्रहर में दिखने वाले स्वप्न के आधार पर भूमि के शुभाशुभ का निर्धारण किया जाता है।

काश्यप शिल्प

१ भूमि परीक्षा (अध्याय १)

भूमि के मध्य में एक हस्त का गड्ढा खोदकर, उसे पुनः खोदी गई मिट्टी से भर दे यदि मिट्टी बच जाए तो भूमि उत्तम है यह जाने।

यदि गड्ढा भर जाने पर, मिट्टी शेष न रहे जो मध्यम तथा मिट्टी कम पड़ जाए तो भूमि को अधम जाने।

वर्णानुसार शुभ भूमि

श्वेत, लाल (ताम्बे के रंग), पीली (सुनहरा) तथा काली भूमि क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के लिए शुभ है।

कनिष्ठ (निम्न) वर्ग के लिए सभी प्रकार की भूमि शुभ है, परन्तु श्रेष्ठ वर्ग के लिए कनिष्ठ भूमि शुभ नहीं है। इस प्रकार से मनुष्यों के घरों के लिए वर्णानुसार भूमि को ग्रहण करना चाहिए।

वर्ण	रंग
ब्राह्मण	श्वेत
क्षत्रिय	लाल (ताम्बे के रंग)
वैश्य	पीली
शूद्र	काली

नागर आदि विमान

देशः-हिमालय से कन्याकुमारी के बीच के भाग को देश कहते हैं।

गुणः-सत्व, रज व तम

नागर	द्राविड	वेसर
ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य
सात्विक	राजसी	तामसी
हिमालय से विंध्य	विंध्याचल के पास	कृष्णा वेण्णा से कन्याकुमारी
पुलिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसकलिंग
विष्णु	ब्रह्मा	शंकर

आर्य समाज

१. आर्य समाज की स्थापना

आर्य समाज की स्थापना १८५६ ई. में श्री १०८ श्री गुरुदेव श्री कृष्णदास जी महाराज द्वारा की गई थी।
। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
कि आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग

२. आर्य समाज के सिद्धांत

१. आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
२. आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
३. आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग

आर्य	समाज
१८५६	स्थापना
(१८५६ ई. में)	स्थापना
श्री १०८	श्री गुरुदेव
श्री कृष्णदास	जी महाराज

आर्य समाज के सिद्धांत

१. आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग

आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग

आर्य	समाज	स्थापना
१८५६	स्थापना	स्थापना
श्री १०८	श्री गुरुदेव	श्री कृष्णदास
श्री कृष्णदास	जी महाराज	स्थापना
आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग	। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग	आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग	। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग	आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग
आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग	। जिसका उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग	आर्य समाज का उद्देश्य था कि आर्य समाज में आने वाले लोग

शान्त

चौकोर

भोग, शौर्य व नृत्य

अष्टकोण

वाहन, सैनिक

गोल

पुनः भूमि परीक्षा

आचार्य का पूजन कर, दोनों हलों के मध्य औषधियों को बोना चाहिए। यदि अंकुरण तीन रात्रि में हो तो भूमि श्रेष्ठ, चार रात्रि में अंकुरण होने पर भूमि मध्यम तथा पाँच रात्रि में अंकुरण होने पर भूमि को अधम समझना चाहिए तथा छोड़ देना चाहिए (अधम भूमि को)।

भूमि दो प्रकार की होती है:-स्निग्ध व अस्निग्ध।

चिकनी, छोटे पत्थर वाली, खोदने में मुश्किल, जिसमें कम रेत हो, ऐसी मिट्टी सुस्निग्ध नाम से प्रसिद्ध है।

एक अंजली (पुरुष के हाथ जोड़ने की मुद्रा) खोदने पर, पानी (नमी) से युक्त होने पर तथा खोदने में आसान होने वाली भूमि अस्निग्ध बताई है।

भूमि परीक्षण

हे ब्राह्मण, यदि भूमि सुस्निग्ध प्रकार की हो तो प्रासाद की चौड़ाई के प्रत्येक दो हाथ के लिए, भूमि की (नींव की गहराई) एक हाथ तक खुदाई करें।

(प्रासाद ५० हाथ की चौड़ाई के लिए २५ हाथ भूमि की खुदाई करें।)

अस्निग्ध, उसी प्रकार स्निग्ध भूमि के लिए, जिस गहराई पर पानी आए, उस गहराई तक नींव खोदे। यह गड्ढा पानी के साथ, मोटी बालू रेती से भर कर, हाथी के पैर के समान सिर के आकार वाले बड़े धुम्मस से बालू रेती में बहुत पानी डालकर खूब कूटें। उसके बाद पानी की सहायता से भूमि को समतल करें।

शकुन (अध्याय ४९)

शिला लाते समय शकुन

बाएं तरफ से दाएं तरफ चलने वाला कौआ, उसी प्रकार बाज एवं बाएं तरफ से दक्षिण की तरफ मांस के साथ गिद्ध, कुमारी कन्या, गाय, दही से पूरा भरा हुआ कुंभ, दूध का कुंभ, फूल ले जाने वाला पुत्र के साथ फूल पहने युवा स्त्रियाँ, अन्न और मांस (ले जाने वाला) शिव भक्त परायण

(मनुष्य), मशाल व दीया और पानी से भरा मटका, सूअर, हाथी, वेणी पहने हुए व अत्यन्त सुंदर स्त्री दिखना, यह शुभ शकुन हैं, इससे विपरीत होने पर अशुभ जानें।

बाल खुले छोड़े हुए, उसी प्रकार से $i\grave{e}\grave{o}\pm\acute{E}\grave{a}$ हुए (अस्त-व्यस्त) बाल वाला मनुष्य, तेल मालिश किया हुआ (बहुत तेल लगाया हुआ), नग्न और भगवा वश धारण किया हुआ, मिट्टी के खाली बर्तन, तेल का बर्तन

छोटे नाक की कुमारी, कम, ज्यादा अवयव (शरीर के अंग) वाली, बंध्य (बाँझ) स्त्री, विधवा स्त्री, खूब खाने वाली स्त्री अशुभ शकुन बताएँ हैं।

अशुभ शकुन होने पर, अग्नि फैलाकर, शंकर को १०० आहुति दें। समिधा, घी व भात, नाग व नागभूषण करें। शंकर को नमस्कार करें। (श्लोक २५-२९)

१० आयादि

काश्यपशिल्प ग्रन्थ के अध्याय २५ में आयादि सूत्र का वर्णन किया है। आयादि गणित के वे सूत्र हैं, जिनकी सहायता से हम शुभ लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई, गहराई, मोटाई आदि का मान ज्ञात करते हैं।

वे इस प्रकार हैं-

योनि (शेषफल)	(मान/६) (३/८)
नक्षत्र (शेषफल)	(८/२७) मान
वार (शेषफल)	(९/२७)(परिमिती)
तिथि (शेषफल)	चौड़ाई/३०
आय (शेषफल)	(८/१०) ऊँचाई
व्यय (शेषफल)	(९/१०) ऊँचाई

शुभ योनि:- (१) ध्वज, (३) सिंह, (५) बैल व (७) हाथी।

शुभ वार:- (५) गुरु, (६) शुक्र, (४) बुध व (२) सोम

नक्षत्र:- यजमान के नक्षत्र तथा प्रासाद के नक्षत्र में विरोध नहीं होना चाहिए।

तिथि:- यजमान की जन्म तिथि तथा वास्तु की तिथि में विरोध नहीं होना चाहिए।

आय (शेषफल)	(लम्बाई X चौड़ाई) (८/१२)
व्यय (शेषफल)	(लम्बाई X चौड़ाई) (९/१२)
नक्षत्र (शेषफल)	(लम्बाई X चौड़ाई) (८/२७)
योनि (शेषफल)	(लम्बाई X चौड़ाई) (३/८)
वार (शेषफल)	(परिमिति) (९/७)
तिथि (शेषफल)	(परिमिति) (९/३०)

श्रीगणेशाय नमः

इति श्रीगणेशाय नमः । इति श्रीगणेशाय नमः । इति श्रीगणेशाय नमः । इति श्रीगणेशाय नमः । इति श्रीगणेशाय नमः ।

(१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)

। श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः ।

। श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः ।

। श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्रीगणेशाय नमः ।

(१/१) (१/१) x (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१) x (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१) x (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१) x (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)
(१/१) (१/१) (१/१)	(१/१) (१/१)

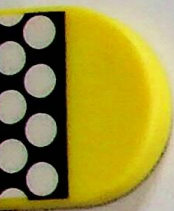
विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में आयादि सूत्र का वर्णन इस प्रकार है-

यह बताया है कि लम्बाई में चौड़ाई का जो गुणनफल आए उसमें आठ का भाग देने पर जो शेष रहता है उसे आय कहते हैं।

शेषफल १ से ८ (०) हो सकता है उसी के आधार पर आय के नाम व दिशा होती है:-

शेष	आय	वर्ण के अनुसार शुभ	परिणाम
१	ध्वज	ब्राह्मण	सभी कार्यों में सफलता
२	धूम		शोक व दुःख
३	सिंह	क्षत्रिय	शुभ, परन्तु क्रोध व कम सन्तान
४	श्वान		शोक व दुःख
५	वृष	वैश्य	पशुओं की वृद्धि
६	खर		शोक व दुःख
७	गज	शूद्र	सम्पत्ति की वृद्धि
८ (०)	काक		शोक व दुःख

शेष	आय	दिशा	उपयोग
१	ध्वज	पूर्व	छत्र, प्रासाद, पुर, हाथी, घोड़ा, ऊँट, अमत्र
२	धूम	आग्नेय	अग्नि, वस्त्र व्यवसाय
३	सिंह	दक्षिण	आसन, प्रासाद, पुर, घर, पीठ, खड़ाऊँ
४	श्वान	नैऋत्य	म्लेच्छ
५	वृष	पश्चिम	भोजन पात्र, पुर, घर, घोड़े, शय्या, छत्र, वस्त्र
६	खर	वायव्य	वैश्य, घोड़े
७	गज	उत्तर	शयन, गज, वापी, कुँआ, तालाब
८ (०)	काक (ध्वांक्ष)	ईशान	शेष कुटी (सन्यासी की कुटिया)



श्लोक क्रमांक ६६ से ९३ तक आयादि के नौ सूत्रों का विचार किया गया है। इन सूत्रों के आधार पर प्लाट या भूखण्ड, बने हुए हिस्से कमरे आदि, उपकरण, पलंग, दरवाजा खिड़की आदि का उचित मान ज्ञात किया जाता है। इस में क्षेत्रफल को आधार बनाकर आय आदि नौ सूत्र का उल्लेख है:-

$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ९}{८}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	आय
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ९}{७}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	वार
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ९}{६}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	अंश
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{१२}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	द्रव्य
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ३}{८}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	ऋण
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{२७}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	नक्षत्र
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{१५}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	तिथि
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ४}{२७}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	योग
$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times ८}{१२०}$	$\xrightarrow{\text{शेषफल}}$	आयु

आय, ऋण के बराबर या अधिक होना चाहिए।

वार की गणना रविवार (शेषफल १) से आरम्भ होती है। रविवार, मंगलवार व शनिवार शुभ नहीं होते हैं।

तिथि में ४, ९ व १४ शुभ नहीं हैं।

नक्षत्र में गृहस्वामी के जन्म नक्षत्र से गृह का नक्षत्र (शेषफल का नक्षत्र) ३ रा, ५ वाँ, ७ वाँ, १२वाँ, १४ वाँ, १६वाँ, २३वाँ, २५वाँ व २७वाँ नहीं होना चाहिए।

योग में विष्कुम्भ आदि २७ योग का नाम के अनुसार ही फल होता है यह जानना चाहिए।

सूर्य आदि ९ ग्रह के नौ अंश होते हैं, इनमें क्रूर ग्रह (सूर्य, मंगल, शनि, राहु व केतू के अंश शुभ नहीं होते हैं।

द्रव्य में वस्त्र, शत्रु, पुस्तक, द्रव्य, धान्य, पृथ्वी, कुटुम्ब, विद्या, पशु, वाटिका, भाण्ड-भूषण व धन आदि १२ द्रव्य होते हैं, जैसा कार्य हो उसके अनुसार द्रव्य का चयन करना चाहिए।

जिस प्रकार विवाह के पूर्व वर व कन्या के गुण का मिलान नक्षत्र के चरण के आधार पर किया जाता है, उसी प्रकार गृहस्वामी व गृह के नक्षत्र के चरण के अनुसार मिलान किया जाता है। मिलान के आठ बिन्दु होते हैं:- राशि, वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रह, गण, नाड़ी। कुल गुण ३६ होते हैं, इनमें से १८ गुण मिलने पर शुभ है ऐसा माना जाता है। इसमें भी यह विचार करते हैं कि गृह स्वामी की राशि से घर की राशि ४, ८ या १२ नहीं होना चाहिए।

माप की इकाई हस्त व अंगुल होती है।

११ से अधिक तथा ३२ हस्त से कम यदि गृह का मान हो तो ही आयादि का विचार किया जाता है।

११ गृह विन्यास विचार

विश्वकर्म प्रकाश:-

अध्याय २ श्लोक क्रमांक ९४ से ९९ तक गृहविन्यास का विचार किया है कि किस दिशा में कौन सा कक्ष बनवाना चाहिए:-

काश्यप शिल्प ग्रन्थ के विभिन्न अध्याय ४३ में विन्यास संबंधी विवरण इस प्रकार दिया है-

पद/दिशा	उपयोग
अग्नि पद	रसोई घर
नैऋत्य	शस्त्रागार
वायुकोण	शयन स्थान
ईशान	योगशाला
भृश	योग शाला
आग्नेय व दक्षिण दिशा के बीच	सूतिकागृह
इन्द्र व ईशान के बीच	स्नान घर
भृंगराज	अनाज रखने का स्थान
नैऋत्य व पश्चिम के बीच	ग्रन्थालय
उसके दोनों तरफ उत्तम	व्यंजनालय
सोम व वायव्य के बीच	वस्त्रागार
सोम व ईशान के बीच	देवी (गौरी) का मंदिर
उसके पास में पलंग सहित शयन का स्थान होना चाहिए।	
पुष्पदन्त या महेन्द्र पद	पुष्पमण्डप
गृहक्षत	अनाज भण्डार
सोम के पास	कुँआ

दूसरा प्राकार

यहाँ अपने को पद विन्यास कर किस पद में क्या होना चाहिए यह दर्शाना चाहिए।

इन्द्र व शंकर स्थान (ईशान) के मध्य	विद्यास्थान
शंकर व श्री के बीच	धनस्थान
दक्षिण व आग्नेय के मध्य	पुष्प मंडप
दक्षिण व नैऋत्य के मध्य	स्नान के लिए पानी
नैऋत्य व वारुण के मध्य	पुराण सुनने का मंडप
वारुण व वायव्य के मध्य	शस्त्रागार
वायव्य व उत्तर के मध्य	शयन स्थान
उत्तर व ईशान के मध्य	यज्ञ मंडप
जयन्त पद	स्नान गृह
आग्नेय पद	भोजन गृह

मालिका के चारों ओर शंकर की (अलग-अलग) मूर्तियों की जगह होती है।

ईशान पद	नृत्यमूर्ति
आग्नेय	वृषवाहन
नैऋत्य	पार्वती व स्कन्द
वायव्य दिशा	कंकाल
जयन्त	भिक्षाटन
सत्य	सुखासन
वितथ	त्रिपुरान्तक
सुग्रीव	हरिहर
गन्धर्व	चन्द्रशेखर
शोष	कामदहन
मुख्य	कालारि
उदिति (अदिति)	अर्धनारीश्वर



महेन्द्र	कल्याणमूर्ति
पर्जन्य	क्षेत्रपाल
दक्षिण	दक्षिणेश्वर
वरुण	लिंग
उत्तर	गजहारि
पूर्व	शैव व उनके परिवार
पूर्व या उत्तर	पुजारी
दक्षिण	दैवज्ञ (ज्योतिषी), वैद्य
पश्चिम	देवपूजा साहित्य बेचने वाले
उत्तर	सभी प्रकार के भक्त के रहने के लिए
आग्नेय दिशा	महाव्रत का स्थान
दक्षिण	पाशुपति
नैऋत्य	कलामुख (नृत्यशाला)
पश्चिम	ऊर्ध्वालय
वायव्य	जैनों के लिए
उत्तर	ब्राह्मण
उसके बाहर ईशान दिशा में बड़ा तालाब करे ।	
इन्द्र व ईशान पद के बीच	विद्यास्थान
पाठशाला के पीछे	वैश्याओं के घर
दक्षिण व आग्नेय दिशा के मध्य	गोशाला
पश्चिम व नैऋत्य दिशा के मध्य में	सूतिका गृह
पश्चिम व वायव्य दिशा के मध्य	रोग पीड़ितों के रहने का स्थान
वायव्य व उत्तर के मध्य	छोटे बच्चों के सीखने के लिए
सोम व शंकर (ईशान) के मध्य	धान्य के भंडार

उसके बाहर के वृत्त में दासी व गणिका के रहने का स्थान, नृत्य गायन का अभ्यास करने वालों के लिए बाजार करने वाले, सुतार, कुम्हार, माली, मांस, मछली उससे उपजीविका करने वाले, नाचने वाले, शूद्र, शिल्पियों की मदद करने वाले मजदूर, संकर पूर्व दिशा से शुरू होकर ईशान दिशा तक क्रम से योजना करें।

उसके बाहर ईशान भाग में श्मशान करें या दक्षिण अथवा उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए। उसके बाहर धोबियों के घर होना चाहिए। व उसके बाहर एक कोस दूरी पर चण्डालों की बस्ती होना चाहिए।

इस ग्रन्थ अध्याय ४६ में परिवार विधान को बताया है-

आठ परिवार

दिशा	देवता
पूर्व	नंदी
आग्नेय	अग्नि
दक्षिण	अग्निदुग्ध या दक्षिण में सात माता
दक्षिण	वीरभद्र या गणेश
दक्षिण या नैऋत्य	गणेश
पश्चिम	कुमार कार्तिकेय
वायव्य	ज्येष्ठा गौरी
उत्तर	केशव या कात्यायनी
ईशान	सूर्य

सोलह परिवार

१६ परिवार देवता के वर्णन सुनो क्षेत्र के २५ भाग करके, इन्द्रभाग से पूर्व दिशा की तरफ अनुक्रम से इन्द्र, अश्विनी, अग्नि, पितर, यम, रोहिणी, नैऋति, अप्सरा गण, वरुण, ऋषि, वायु, रुद्र, चंद्र, क्षेत्रपाल, शंकर, सूर्य होते हैं।



१२ शिलान्यास व गर्भविन्यास

शिलाचयन, मान, खुदाई की गहराई, पदार्थ, शुभ चिह्न, कलश के पदार्थ, उपयोग के अनुसार शिलान्यास की भिन्नता (जलाशय, मंदिर आदि)

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के अध्याय ४ गृह व शयन विचार, अध्याय ५ वास्तुपदविन्यास, अध्याय ६ प्रासाद विधान तथा अध्याय १२ शल्योद्धार विधि में शिलान्यास का वर्णन मिलता है।

इनमें बताया गया है कि नींव में सबसे नीचे जिस पत्थर की स्थापना की जाती है, उसे शिला कहते हैं। मुख्य से रूप से चार विदिशा (आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य व ईशान) में चार शिला (नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता) तथा मध्य में पूर्णा शिला की स्थापना की जाती है। सामान्य रूप से जब शिला की स्थापना करते हैं तो सबसे नीचे आधार शिला की स्थापना की जाती है उसके ऊपर कलश रख कर शिला की स्थापना की जाती है।

शिलान्यास के लिए शिला का चयन अत्यन्त सावधानी से किया जाता है। शिला टूटी-फूटी, कटी-फटी न हो, वह सभी प्रकार से दोषरहित रहित होकर, शुभ लक्षणों से युक्त होना चाहिए।

वर्णानुसार शिला का मान

वर्ण	शिला का मान	चौड़ाई	मोटाई (अंगुल)
ब्राह्मण	२१	१०.५	५.२५
क्षत्रिय	१७	८.५	४.२५
वैश्य	१३	६.५	३.२५
शूद्र	९	४.५	२.२५
दिशा	शिला	चिह्न	
ईशान	शुक्ला	वृष	
आग्नेय	सुभगा	घोड़ा	
नैऋत्य	सुमंगली	पुरुष	
वायव्य	भद्रं करी	सर्प	

शिला के मध्य में कूर्म (कछुआ), शेषनाग, जनार्दन (विष्णु) तथा श्री ध्रुव का चिह्न होता है।

संस्कृत-संज्ञा-संग्रहः ११

संज्ञा-संग्रहः ११
(संज्ञा-संग्रहः ११)

संज्ञा-संग्रहः ११
(संज्ञा-संग्रहः ११)

संज्ञा-संग्रहः ११
(संज्ञा-संग्रहः ११)

संज्ञा-संग्रहः ११
(संज्ञा-संग्रहः ११)

संज्ञा-संग्रहः ११

संज्ञा-संग्रहः	संज्ञा-संग्रहः	संज्ञा-संग्रहः	संज्ञा-संग्रहः
११.१	११.१	११	संज्ञा-संग्रहः
११.२	११.२	११	संज्ञा-संग्रहः
११.३	११.३	११	संज्ञा-संग्रहः
११.४	११.४	११	संज्ञा-संग्रहः
११.५	११.५	११	संज्ञा-संग्रहः
११.६	११.६	११	संज्ञा-संग्रहः
११.७	११.७	११	संज्ञा-संग्रहः
११.८	११.८	११	संज्ञा-संग्रहः
११.९	११.९	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१०	११.१०	११	संज्ञा-संग्रहः
११.११	११.११	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१२	११.१२	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१३	११.१३	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१४	११.१४	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१५	११.१५	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१६	११.१६	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१७	११.१७	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१८	११.१८	११	संज्ञा-संग्रहः
११.१९	११.१९	११	संज्ञा-संग्रहः
११.२०	११.२०	११	संज्ञा-संग्रहः

संज्ञा-संग्रहः ११
(संज्ञा-संग्रहः ११)

श्लोक क्रमांक २३९-२४८/५ तक शिला की प्रार्थना की गई तथा उनके गुण बताएँ हैं:-

प्रार्थना - दिशाओं के गुण

शिला	कलश	गुण
नन्दा	पद्म	आनन्ददाई, कामना की पूर्ति, लक्ष्मी
भद्रा	महापद्म	लोक का भला, आयु, कामना व सुखदायक
जया	शंख	जय व भूमिदाई
भद्रा	विजय	रिक्त दोषनाशक, सिद्धि व भोगदेने वाली
पूर्णा	सर्वतोभद्र	आयु, कामना, धन व पुत्रदाई

दिशाओं में ईशान से प्रारम्भ कर सभी प्रकार की सफलता के लिए प्रदक्षिण क्रम से करें। कोई विद्वान कहते हैं कि आग्नेय आदि शिला की स्थापना आग्नेय दिशा से प्रारंभ करके करना चाहिए।

शिलान्यास ६१-६६/१२

शिला	फल
नन्दा वशिष्ठ की पुत्री	प्रजा की हितकारिणी, सुखदाता
भद्रा काश्यप की पुत्री	अतुल आयु, आरोग्यदायी
जया भार्गव की पुत्री	प्रजा का हित
रिक्ता	दोषनाशक
पूर्णा अंगिरा की पुत्री	इष्टदायक

आधार शिला के ऊपर कलश की स्थापना की जाती है। कलश में निम्न पदार्थों को रखा जाता है:-जल, चावल, ब्रीही पञ्चगव्य, मधु, घी, रत्न, सोना, चाँदी, सभी बीज, सभी गन्ध, शर, कुश, फूल, सफेद सरसों, मधु, गोरोचन, अध्याय ५ श्लोक क्रमांक ९९ से १०९ सभी बीज, सभी औषधि, सभी रत्न, सभी गन्ध, पांच प्रकार के पत्ते, पांच कषाय, मिट्टी तथा (या) शुद्ध पानी से भरें। सर्वौषधि (मुरा, जटामोसी, वच, कूट (कूट), चन्दन, दोनों प्रकार की हल्दी, शूठी (सोंठ), चम्पक, नागरमोथा), पंचपल्लव (पीपल, गूलर, पिलखन, आम, वट वृक्ष), पंचकषाय तुलसी, सहदेवी, विष्णुकान्ता

तथा शतावरी की जड़), को इनके न मिलने पर विशेष रूप से बरगद, गूलर, बैत, पीपल तथा मूल ये पंच की जड़ लें, यह पंचकषाय, मिट्टी (घोड़े के स्थान की, हाथी के स्थान की, दीमक के स्थान की, दो नदी के संगम की, राजद्वार के प्रवेश की मिट्टी, जल(सभी समुद्र, नदी, तालाब तथा जल देने वाले नद),

(सभी देवताओं का पूजन) वेद के मन्त्रों से या प्रणव (ॐ) आदि से युक्त व्याहृति से करना चाहिए।

शिलान्यास के समय शुभाशुभ शकुन

श्लोक क्रमांक १९७ से २०२ तक अपशकुन का वर्णन किया है:-

यदि सूत्र टूट जाए तो मृत्यु, कील अधोमुख हो जाए तो रोग, कन्धे से गिर जाए तो सिर में रोग, हाथ से गिर जाए तो घर के मालिक का क्षय (हानि, मृत्यु) होती है।

गृहस्वामी, स्थपति (वास्तुविद्या का निपुण व्यक्ति) की याददास्त (स्मरण शक्ति) का लोप हो जाए (भूलना) तो मृत्यु होती है। यदि विसर्जन के पहले कलश टूट जाए तो कुल की कीर्ति का क्षय होता है।

सूत्र फैलाते समय यदि गधा आवाज करें तो उस स्थान पर शल्य (दोष, हड्डी आदि) जानना चाहिए। कुत्ता, शृगाल जिस स्थान से सूत्र को उलाघ जाए उस स्थान पर शल्य जानना चाहिए।

सूर्य से दीप्त दिशा में यदि कठोर शब्द हो तो सूत्र शरीर के जिस भाग से छू रहा हो उस भाग में शल्य जानना चाहिए।

शिलास्थापना के समय यदि हाथी शब्द (आवाज) करें तो वास्तुपुरुष की देह में (प्लॉट में) शल्य जानना चाहिए।

सूत्र रखते समय कुबड़ा, ठिगना (नाटा), भिक्षु, वैद्य, रोगी का दिखना अशुभ होता है। लक्ष्मी को चाहने वाले (धनाभिलाषी) पुरुष इस अवसर का त्याग करें। २०२

शुभ शकुन

श्लोक क्रमांक २०३ से २०८ तक शुभ शकुन का वर्णन है:-

हुलहुल का शब्द, मेघों की गर्जना, सिंह के शब्द ये सभी धन देने वाले होते हैं।

सूत्र फैलाते समय यदि जलती हुई आग दिखाई दें, घोड़े पर चढ़ा हुआ पुरुष दिखाई दें तो निष्कण्टक (बगैर कोई बाधा के) राज्य होता है। शंख, तूर्य आदि वाद्य के शब्द होने पर घर वस्तुओं से भरा रहता है। युवा स्त्री व कन्या का खेलते हुए दिखना धन की वृद्धि करता है। ये शुभ शकुन घर आरंभ करते समय शुभ तथा घर छाबते (बनवाते हुए) मृत्यु व रोग को देते हैं। स्तम्भ रखते समय मध्यम फल देते हैं। स्तम्भ रखते समय मध्यम फल देते हैं। घर में (पूर्ण होने के बाद) प्रवेश करते समय बारिश होना शुभ है। लकड़ी का छेदन करते समय दुख, शोक व रोग को देती है, भूमि की परीक्षा करते समय भी ये सुखदाई नहीं होते हैं। छत्र, ध्वज, पताका का दर्शन सूत्र रखते समय होना, धन-प्राप्ति की संभावना को दर्शाता है। पूर्ण कलश का दिखना (भरे हुए घड़े का दिखना) प्राप्ति को दर्शाता है। कलकल आवाज सुनाई पड़ने पर स्थिरता होती है। २०८

शिलान्यास

श्लोक क्रमांक २०९ से २३८ तक शिलान्यास विधि का वर्णन है:-

ईशान आदि दिशा में प्रदक्षिण क्रम से एकाग्र चित्त हो शिला का विन्यास करें।

शिला	चिह्न
नन्दा	पद्म (कमल),
भद्रा	सिंहासन
जया	तोरण
रिक्ता	छत्र व कछुआ
पूर्णा	चारभुजा वाले विष्णु

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईशान व सदाशिव का आवाहन करें, इनमें पाँचों पुनः भूतों का आवाहन करें। शिला को पाँच कलशों के जल से स्नान कराए।

मन्त्र	स्नान कराएँ
अग्निर्मूर्ध्नेति च मृदा यज्ञायज्ञे (यज्ञेनयज्ञ)	जल से
अश्वत्थ मन्त्र	पाँच कषाय व पत्ते के जल से
गायत्री	गोमूत्र

गन्धद्वारा
 आप्यायस्व
 दधिक्राव्ण
 घृतवर्ती
 मधुवाता
 पयः पृथिव्यां.
 देवस्यत्वा.
 काण्डात् काण्डात्.
 गन्धद्वारा
 औषधीः
 फलिनी.
 नमस्ते
 धान्यमसि
 आजिघ्नकलशम्
 ओषधय,
 यवोऽसि.
 तिलोऽसि.
 पंचनद्य.
 स्योनापृथिवी.
 हिरण्यगर्भ.
 रूपेणव.
 पदस्याय.

गोबर
 दूध
 दही
 घी
 शहद
 पंचगव्य
 कुशाओं
 दूर्वा के जल
 गन्ध व पंचगव्य
 औषधी के जल
 फल के जल
 बैल के सींग की मिट्टी
 धान्य आदि के जल से
 कलश के जल
 अक्षत के जल
 यव के जल
 तिलों के जल
 नदी के जल
 हल तथा शहद मिली हुई मिट्टी
 सोने के जल
 चांदी के जल से,
 वस्त्र, तीर्थ के जल से स्नान कराए

उसके बाद शुद्ध जल से स्नान कराए। उसके बाद सफेद वस्त्र से मार्जन करके सभी अंगों पर गन्ध का लेपन कर वास्तुमण्डल के मध्य में ब्रह्मा आदि देवताओं का नाम लेकर मन्त्रों के साथ षोडशोपचार पूजन करें। उनको सोना (स्वर्ण), वस्त्र व आभूषण देकर, पुण्याहवाचन करके शिला की स्थापना करें। सर्वोषधि, जल, पारा,

घी, रत्न व शहद से युक्त कलश को रखें। श्रेष्ठ लग्न के समय पांच प्रकार के वाद्य यन्त्रों को बजाए। नन्दा नाम वाली शिला का ग्रहण कर (लेकर), आधार शिला की स्थापना करें।

शल्योद्धार विधि

श्लोक क्रमांक ४८ से ५२ तक कलश में प्रयुक्त सामग्री का वर्णन किया गया है:-

- तीर्थ का जल
- पाँच नदियों का जल
- पंच रत्न, फल और बीज
- कुंकुम, चन्दन, कस्तूरी, कपूर, देवदारु, पद्म और सुरभि (सुगंधि)

अन्य पदार्थ अष्टगंध

- मिट्टी:- बैल के सींग, सिंह के नखों से खोदी गई, वराह (सूअर) और हाथी के दांतों में लगी हुई देवालय के द्वार की मिट्टी,
- मन्त्रित पंचगव्य, पंचामृत, पंचपल्लव, पांच त्वचा और पांच कषाय
- तीन मधु (घी, मिसरी, शहद)
- सप्त धान्य, पारा

श्लोक क्रमांक ५३ से ६० तक पूजन विधि का वर्णन है:-

गणेश, लोकपाल, वरुण, नागों के नायक का आवाहन, पूजन व वास्तु होम कर, शुभ लग्न और मुहुर्त में शिला स्थापन करें।

इसके पश्चात् तांबे के कुम्भ को गड्ढे में रख दें और शिलादीप को भी उसी में रखकर, गीत और बाजे के शब्द करके उस गड्ढे को मिट्टी से भर दें।

काश्यप शिल्प

अध्याय ४ प्रथमेष्टका नींव का पत्थर

सबसे नीचे शिला की स्थापना करते हैं। इस शिला पर पूरे भवन का भार आता है, अतः यह शिला पूर्ण रूप से निर्दोष व दृढ़ होना चाहिए। इसका मान भी भवन की चौड़ाई व ऊँचाई के अनुसार होता है, जिससे वह ऊँचे भवन का भार वहन कर सकें। सभी मंजिल के स्तम्भ, एक के ऊपर एक

होते हैं, सरल रेखा में होते हैं, उनका भार इस शिला पर ही स्थानान्तरित होता है। अतः शिला चयन तथा मान का अत्यधिक महत्व होता है। यह सारा कार्य (शिलास्थापना) प्रतिष्ठापूर्वक सावधानी से किया जाता है।

गर्भविन्यास (अध्याय २६)

स्थान

व्यक्ति	गर्भविन्यास का स्थान
ब्राह्मण	अधिष्ठान की प्रति के ऊपर,
राजा	कुमुद के ऊपर तथा
वैश्य	जगती के ऊपर
शूद्र	होम के ऊपर
अन्य के लिए	प्रथम ईष्टिका

पात्र

सोने, चाँदी व ताम्बे का क्रम से उत्तम, मध्यम व अधम होता है अथवा कांसे का पात्र ग्रहण करना चाहिए।

१ से १६ मंजिल के लिए मान

आरम्भ	वृद्धि	तक (अंगुल)
५	१-१	२०

इस प्रकार चौड़ाई व ऊँचाई के मान का वर्णन भी किया गया है।

पदार्थ

रत्न, सोना, धान्य व फल, मिट्टी, कन्द, स्फटिक, शंख, पुष्पराग, सूर्यकान्त, वैदूर्य, विभिन्न खनिज गर्भपात्र व गर्भस्थान में रखे जाते हैं।

मिट्टी:-तालाब की, नदी की, सफेद में धान्य की, हल के साथ अंगुली के पास, हाथी व बैल के सींगों के पास

स्थान	पदार्थ	
मध्य भाग	कमल का कन्द	
पूर्व	कुमुद का कन्द	साल
दक्षिण	उत्पल का कन्द	चावल
पश्चिम	सौगन्धी का कन्द	कोद्रव
उत्तर	उशीरकन्द	माष
आग्नेय	माष	
नैऋत्य	चावल	
वायव्य	प्रियंगु	
ईशान	कुलित्थ	

इस प्रकार से हृदय मन्त्र पूर्वक गर्भ पात्र गृहे में रखें। सभी वाद्यों के साथ नृत्य व गायन करते हुए जय घोष शब्द के साथ, ब्रह्मघोष के साथ, प्रासाद बीज का उच्चारण करते हुए गर्भपात्र की स्थापना करें।

विश्लेषण:- गर्भविन्यास नामक इस अध्याय में वर्ण के अनुसार गर्भविन्यास का वर्णन किया है। ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए गर्भ का स्थान बताया है। उसके पश्चात् मंजिला की संख्या के अनुसार गर्भ पात्र का मान बताया है। जितना चौड़ा या ऊँचा भवन होगा, गर्भपात्र भी उसी अनुसार में बड़ा होता है। इसे ही शिलान्यास भी कहते हैं। मानसार, मयमत आदि ग्रन्थों में मंदिर, नगर, जलाशय आदि के लिए गर्भविन्यास का वर्णन मिलता है। जैसा देवी-देवता होता है, उसके अनुसार ही गर्भविन्यास के चिह्न होते हैं। गर्भविन्यास में मिट्टी, धान्य, औषधि, खनिज, गन्ध आदि का प्रयोग किया जाता है, इससे सांकेतिक रूप से दिशा व पदार्थ के संबंध का भी ज्ञान होता है।

१३ द्वार

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में द्वार का स्थान, निर्धारण, मुहूर्त, द्वार का मान, काष्ठ, द्वार के दोष, द्वार-वेध आदि के संबंध में विस्तार से वर्णन मिलता है।

मुहूर्त-द्वार के निर्धारण के १५ प्रकार बताएँ हैं। निर्माण कार्य आरम्भ करते समय हेतु, निर्माण का उद्देश्य किस उपयोग हेतु निर्माण करना है यह निर्धारित कर मुहूर्त ज्ञात करने के विधान बताएँ हैं। देवालय, गृह, वापी व वेदी के अनुसार द्वार का निर्धारण किया जाता है। मुहूर्त का निर्धारण सूर्य राशि, चन्द्र मास, तिथि, वार, राहू की दिशा, नक्षत्र, सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा का नक्षत्र आदि के आधार पर किया जाता है।

स्थान-द्वार के स्थान के संदर्भ में बताया है कि पूरे भूखण्ड का पदविन्यास कर शुभ पद में द्वार बनवाना चाहिए।

दिशा	शुभ पद
पूर्व	जयन्त व महेन्द्र
दक्षिण	गृहक्षत
पश्चिम	पुष्पदन्त व वरुण
उत्तर	मुख्य, भल्लाट व सोम

मान

द्वार की ऊँचाई (अंगुल)

राजा	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
१८८	१६१	१३४	१०७	८०

द्वार की चौड़ाई- (१/५) गर्भगृह की चौड़ाई (६१/६)

द्वार की ऊँचाई - २ द्वार की चौड़ाई

द्वार शाखा- (१/४) द्वार की ऊँचाई

द्वार शाखा की मोटाई अ (१/४) द्वार की चौड़ाई

८० अंगुल से १८८ अंगुल तक द्वार की ऊँचाई का मान होता है।

शाखा-३, ५, ७, ९

द्वार-दोष

जिस द्वार के मुख पर अवरोध हो, कपाट में छिद्र हो, किसी यन्त्र से विद्ध हो, मान से कम या अधिक हो, त्रिकोणाकार, शकटाकार, सूपाकार, मुरजाकार, गोल, व्यजन के समान हो वह शुभ नहीं होता है। अन्दर या बाहर की ओर झुका द्वार भी शुभ नहीं होता है।

द्वार

काश्यप शिल्प

पूजा-द्वार देवता की पूजा करें (६/३)

अध्याय १४ में स्तम्भ के अनुपात में द्वार का मान बताया है स्तम्भ की ऊँचाई १० भाग होने पर शुद्धद्वार (खुली चौखट) ९ भाग होता है।

द्वार की चौड़ाई + $(\frac{1}{2})$ द्वार की ऊँचाई (श्लोक ४/५)

द्वारयोग की चौड़ाई + (१, १.२५, १.५) द्वारस्तम्भ की चौड़ाई

द्वार योग की मोटाई + $(\frac{1}{2})$ उसकी चौड़ाई

द्वारयोग- दरवाजे के पल्ले जहाँ आकर मिलते हैं, उसे द्वार योग कहते हैं।

इस अध्याय में द्वार तोरण के विधान का वर्णन भी किया है।

अध्याय १७ में द्वार की चौखट को रखने की विधि है।

अध्याय ४२ में बताया गया है कि नगर द्वार (गोपुर) पाँच से ९ हस्त का होना चाहिए।

अध्याय ४५ गोपुर लक्षण में बताया है कि किसी नगर, दुर्ग, मंदिर आदि में ५ परकोटे तक हो सकते हैं। इन परकोटों पर स्थित द्वार को गोपुर कहते हैं। निम्न सारणी से अन्दर से बाहर की ओर जाते हुए प्रवेश द्वार संज्ञा तथा मान स्पष्ट होता है:-

गोपुर	मंजिल की संख्या
द्वार शोभा	एक, दो या तीन
द्वारशाला	दो, तीन या चार
द्वारप्रासाद	चार या पांच
द्वारहर्म्य	चार, पांच या छः
द्वारगोपुर	पांच, छः, या सात

इनका विस्तार से वर्णन इस अध्याय में किया है।

मन्त्रः ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

१४ वृक्षछेदन विधि

वृक्षसंग्रहण (अध्याय ७९)

वृक्षलिंग भेद

वृक्ष संग्रहण की विधि का वर्णन किया है। स्त्रीलिंग, पुलिंग व नपुंसकलिंग ऐसे वृक्षों के तीन प्रकार होते हैं। (वजन से), हल्के, चिकनी मिट्टी में उगाए हुए, काम के लिए कठिन, जिसमें सुगन्ध कम हो, फल व फूल होते हैं, जो मजबूत व भरे होते हैं, समशोष्ण, ऐसे दोनों प्रकार के वृक्ष दिखने में सुन्दर होते हैं, ऐसे वृक्षों को पुलिंग कहते हैं। देव मूर्ति की (लकड़ी के ढाचे के लिए) ये शुभ होते हैं।

मृदु, चिकनी मिट्टी में उगाए हुए, काम करने में बहुत नाजुक, मूल से अग्र तक क्रम से पतले होते हुए, लम्बे फूल वाले, अत्यन्त नाजुक (मार्दव युक्त) व (स्पर्श) में बहुत ठण्ड वाले, तेलीय व रस युक्त ऐसे वृक्ष स्त्रीलिंग होते हैं। वह देवी के शूल के लिए (ढाचे के लिए) योग्य होते हैं।

जिनकी जड़, फल व फूल आकार में छोटे होकर अत्यन्त निर्बल होते हैं, ऐसे वृक्ष षण्ड (नपुंसकलिंग) बताए हैं।

उत्तम वृक्ष

चन्दन, चम्पक, रक्तचन्दन, खैर, सोमशीर्ष, तिन्दुक, अर्धनारीशिव, राजा, मयूरक, पद्मक, कुटज, सप्तपर्णी, सत्वक, यह अनुक्रम से शूल के लिए योग्य बतलाए हैं। उसके अन्दर का भाग (शूल के लिए) ले।

वृक्ष-दोष

जिसके पत्ते जीर्ण-शीर्ण हैं, जिसका (नैसर्गिक) वैभव छुटा हुआ है, जिसका शीर्ष नहीं है, या तीन शिखा है, स्वयं से ही मुड़ा हुआ, गिरा हुआ वृक्ष, उसके (अपने आप) सूखा हुआ, दुःस्थिति वाला, अत्यन्त कठिन, जिसके आश्रय में पशु-पक्षी हैं, राजवाड़े के पास, मजदूरों की बस्ती के पास, आग से जला हुआ, दूसरे काम के लिए प्रयोग में लिए ऐसे वृक्ष प्रयत्नपूर्वक त्याग दे। वह अगर प्रयोग करने पर कार्य का नाश होता है। तब सब प्रयत्न से दोष वाले वृक्ष पूर्णतः त्याग दे।

पूजा

शुभ पक्ष में, नक्षत्र में, व शुभ वार में योग्य वृक्षों का संग्रहण करें। आचार्य व शिल्पी, ये वृक्ष के स्थान पर जाए।

वृक्ष के नीचे की घास आदि निकाल कर, लेपन करें। यह मन्त्र कह कर आठ दिशाओं में बलि दे।

इस वृक्ष के आश्रय में रहने वाले देव-दानव व पिशाच, नाग, गरुड़, गन्धर्व (व जो कोई) सिद्ध, विद्याधर, होंगे उनकी मूर्ति के लिए लगाने वाले इस वृक्ष को स्वयं के... लाभ के लिए छोड़ दे। ऐसा कहकर, फूलों के साथ (वैसे ही) रक्त चन्दन, व गन्ध जल के साथ दही चावल की बलि दे।

वृक्ष के ईशान भाग में कर्ता होम करें। बालू रेत से एक हाथ मान का स्थण्डिल करें। अग्नि कार्य में बताए गए प्रमाण से अग्निधान आदि सब करें।

हे ब्राह्मण, समिधा घी, चरु, इन से पवित्र होम करें। हृदय मन्त्र से समिधा का व मूल मन्त्र से घी की हवि दे।

अघोर मन्त्र से चरु का हवन करें। प्रत्येक को एक सौ आठ आहूति दे। जय से शुरू करके अभ्यातान व राष्ट्रभृच तक होम करें।

उसके बाद अग्नि बुझाकर पवित्र पानी से वृक्ष का प्रोक्षण करें। शिवात्मक... मन्त्र का जप करके वृक्ष को स्पर्श करें।

वृक्ष की पूर्व दिशा की ओर उसके मुख व पश्चिम की ओर पीठ होती है। दाईं ओर दक्षिण दिशा होकर बाईं ओर उत्तर दिशा होती है। यह जानकर वह ध्यान में रखकर उस (वृक्ष को) काटे। अस्र मन्त्र का जाप करके, वृक्ष दो भाग व मूल एक भाग ऐसे तीन भाग करें।

वृक्ष के जो दूध व स्नुक, स्नुव को (जमा करें)। अस्रस्नुवः... इस मन्त्र से शक्ति होम करें। वृक्ष के मूल व शेष भाग इसका क्रम से स्थपति जाप करें। पूर्व या उत्तर की ओर वृक्ष गिरे तो शुभदायक होता है।

दूसरी दिशा में गिरने पर वृक्ष प्रयत्न से त्याग दे। उसके बाद डगाले तोड़े। तने के अन्दर का भाग कमल के प्रमाण से करें।

पंचगव्य, गन्ध जल इनसे स्नान कराके व गन्ध लगाकर अलंकृत करें। नवीन वस्त्र से उसको ढककर, दर्भ की बारीक डोरी से रथ में, शिबिकेत में रखें या बुद्धिमान, कन्धे पर पकड़कर ले जाए।

कर्ममण्डप में जल छिड़ककर, गाय के गोबर से लीपकर, निकाले। पंचगव्य, गन्धोदक, इनसे स्नान कराकर, गन्ध लगाकर, (जहाँ लकड़ी रखी जाएगी वह स्थान) अलंकृत करें। पिष्ठ व चूर्ण (रंगोली) से अलंकृत करके वहाँ बुद्धिमान मनुष्य लकड़ी रखें।

विद्वान शूल की लम्बाई के बराबर आयताकार स्थण्डिल करें। चौड़ाई (लम्बाई के) आधी व (ऊँचाई) उससे आधी या चार अंगुल ऊँचाई के ऐसे उत्तम (स्थण्डिल) करें। उसके ऊपर पूर्व की ओर अग्र आए व नीचे मुख आए इस प्रकार शूल के लिए लकड़ी रखें।

विद्वान (उस लकड़ी से) समपक्ष पन्द्रह दिन सूखने तक रक्षा करें। बताए गए अवधि तक उसे सूखने दे। इसमें शीघ्रता न करें। (अध्याय ७९-३३)

विश्वकर्मप्रकाश

श्लोक क्रमांक १ से ४ में वर्णानुसार शुभ या उपयुक्त वृक्ष बताएँ हैं:-

वर्ण	उपयुक्त वृक्ष
ब्राह्मण	देवदारु, चन्दन, शमी (छोकर), मधूक (महुआ)
क्षत्रिय	खदिर, बेल, अर्जुन, शीशम, शाल, तुनिका, सरल
वैश्य	खादिर, सिंधु, स्यंदन
शूद्र	तिंदुक, अर्जुन, शाश, वैसर, आम, काँटे-दूध वाले वृक्ष
सभी	देवदारु, चन्दन, शमी, शीशम, खदिर, शाल

श्लोक क्रमांक ५ से ७ मुहूर्त का वर्णन है:-

सूर्य राशि	परिणाम
३, ६, ९, १२	अशुभ
सूर्य से चन्द्रमा का नक्षत्र	
२, ४, ६, १०, १३, २०	शुभ

श्लोक क्रमांक ८-९ में यह बताया है कि घर में एक ही प्रकार की लकड़ी का प्रयोग करना श्रेष्ठ है, दो या तीन प्रकार की लकड़ी का प्रयोग भी कर सकते हैं, परन्तु तीन से अधिक प्रकार की लकड़ी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक १० से १३ तक निषिद्ध वृक्ष का वर्णन है:-

दूध वाले, फलवाले और काँटेवाले आदि वृक्ष, श्मशान, अग्नि, भूमि से दूषित और जिस वृक्ष पर बिजली गिरी हो, हवा से टूटा हुआ, मार्ग का वृक्ष, लताओं से

आच्छादित, चैत्य का वृक्ष, कुल का वृक्ष लगाया हुआ वृक्ष, देवता का वृक्ष, आधा टूटा हुआ, आधा जला हुआ, आधआ सूखा हुआ, व्यंग, कुब्ज, काणा, अत्यन्त पुराना, तीन शिर वाले, बहुत शिर वाले, अन्य वृक्ष से भेदित तथा जो वृक्ष स्त्री नाम वाले हैं ये सारे वृक्ष घर के काम में योग्य नहीं हैं, इन्हें छोड़ देना चाहिए।

श्लोक क्रमांक १४ से २१ तक निषिद्ध वृक्ष तथा उनके परिणाम को बताया है:-

श्लोक क्रमांक २७ से ३४ तक वृक्ष पूजन विधि का वर्णन है:-

समतल भूमि पर उगे हुए शुभ वृक्ष का पूजन कर हवन करें। वस्त्र से ढककर, सूत्र लपेटें। रात्रि विश्राम कर, वृक्ष पर निवास करने वाले जीवों से अन्यत्र जाने की प्रार्थना करें। उसके पश्चात् पुनः वृक्ष की पूजा करें। उसके पश्चात् वृक्ष को काटें।

श्लोक क्रमांक ३५ से वृक्ष काटने की विधि का वर्णन है:-

वृक्ष को जल से सींचकर कुल्हाड़ी से वृक्ष को ईशान दिशा से आरम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से काटें।

कटे हुए वृक्ष के गिरने की दिशा	परिणाम
पूर्व	धन-धान्य से युक्त
अग्नि	आग लगने का भय
दक्षिण	मृत्यु
नैऋत्य	कलह
पश्चिम	पशुओं की वृद्धि
वायव्य	चोर का भय
उत्तर दिशा	धनागम
ईशान	महाश्रेष्ठ

श्लोक क्रमांक ३९ से ४४ तक किस वृक्ष की लकड़ी का उपयोग करने पर क्या परिणाम होता है, यह बताया है:-

वृक्ष/लकड़ी	परिणाम
भग्न	अशुभ, नारी का मरण
अन्य वृक्ष के मध्य में जमे हुए वृक्ष	अशुभ
शस्त्र के छेदन लिए लकड़ी	स्वामी का नाश
अन्तस्थ काष्ठ	कर्म के कर्ता के धन का नाश
एक भाग का काष्ठ	महाश्रेष्ठ, धन धान्य, पुत्र वृद्धि,
दो भाग का वृक्ष	सफल
तीन भाग का	दुःख देने वाला
चार व छः भाग का काष्ठ	बन्धन
पाँच भाग का काष्ठ	मृत्यु
जर्जर (जीर्ण) वृक्ष के काष्ठ	धन का नाश
मध्य में छिद्र	रोगदायक
निष्फल वृक्ष का काष्ठ	निष्फल
सफल वृक्ष का काष्ठ	सफल
विरूप	धन का नाश
क्षत वृक्ष	रोग कारक
अंग हीन वृक्ष	दूध का नाश
विकट वृक्ष	कन्याओं का जन्म

काष्ठ के प्रवेश में (लाल वस्त्र धारण किये हुए) बालक और तरुण जिस वाणी को कहते हैं, वह उसी प्रकार सत्य होती है।

श्लोक क्रमांक ४५ में लकड़ी सुरक्षित रखने की विधि का वर्णन है:-

यदि काष्ठ को पक्ष भर जल में रखें तो उसे कीड़े नहीं खाते हैं। बुद्धिमान को लकड़ी कृष्ण पक्ष में काटना चाहिए, शुक्ल पक्ष में नहीं काटना चाहिए।

श्लोक क्रमांक ४६ से तक में वृक्ष काटकर लाते समय होने वाले शुभाशुभ शकुनों का वर्णन किया गया है:-

शकट की पकड़े टूट जाने पर स्वामी का नाश होता है और आरे के टूटने से बल का नाश कहा है। पहिए के टूटने, फटने या अलग हो जाने पर धन का नाश होता है।

काष्ठ रंग	परिणाम
श्वेतकाष्ठ	विजयकारी
पीला	रोग का दाता
अनेक रंग का काष्ठ	जयदाता
लाल काष्ठ	शस्त्र भय

विश्लेषण

वृक्ष की अनेकानेक जातियाँ होती हैं। उनकी लकड़ियों से अलग-अलग प्रकार के विकिरण निकलते हैं, जो मनुष्य पर अपना प्रभाव डालते हैं, इसके अतिरिक्त किसी वृक्ष की टेन्साईल स्ट्रेन्थ अधिक होती है, तो किसी वृक्ष की शियरींग स्ट्रेन्थ अधिक होती है, तो किसी वृक्ष की काम्प्रसिव स्ट्रेन्थ अधिक होती है। जिन वृक्ष की काम्प्रसिव स्ट्रेन्थ अधिक होती है, या भार वहन क्षमता अधिक होती है, उनका उपयोग कॉलम बनाने में किया जाता है। जिन वृक्षों की शियरींग स्ट्रेन्थ अधिक होती है, उनका उपयोग बीम बनाने में किया जाता है।

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति के लिए देवदारु, चन्दन, शमी एवं महुआ की लकड़ी शुभ बतलाई गई है, तो क्षत्रियों के लिए खैर, बेल, अर्जुन व शिरस शुभ बतलाई है। वैश्य के लिए खैर, सिन्धु, स्यन्दन शुभ तथा शूद्र के लिए तिन्दुक, अर्जुन, शाशा, बैसर, आम, कंटीले वृक्ष एवं दूध वाले वृक्ष की लकड़ी शुभ कही है।

अर्थात् जो व्यक्ति अध्ययन, मनन, चिन्तन, परोपकार आदि गुणों को धारण करता है, दूसरे शब्दों में कहे तो ब्राह्मण वर्ण का है उसके घर के लिए खिड़की, दरवाजे तथा फर्नीचर, कुर्सी, टेबल इत्यादि देवदारु, चंदन, शमी आदि वृक्ष की लकड़ी से बनवाना चाहिए। क्योंकि इन वृक्ष की लकड़ियों के निकलने वाला विकिरण उसकी

संरचना इस प्रकार की होती है कि वह व्यक्ति में ब्राह्मणोचित गुणों को विकसित करने में सहायक होती है। फिलहाल लकड़ी के बर्तनों का उपयोग लगभग समाप्त हो चुका है, अन्यथा इन्हीं लकड़ियों का भोजन पात्र के रूप में प्रयोग लाया जा सकता है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि अन्य वर्ण के लिए भी विशेष प्रकार की लकड़ियाँ बताई गई हैं।

आज हम बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि अर्जुन वृक्ष की छाल का प्रयोग हृदय रोग में वरदान साबित हो रहा है। वे उसकी छाल की चाय या काढ़ा बनाकर पीते हैं जिससे उन्हें बहुत राहत महसूस होती है।

जब आयुर्वेद की दृष्टि से हम एक-एक वृक्ष के गुण व प्रकृति का अध्ययन करेंगे तो हम पाएंगे कि ये वृक्ष वर्ण के अनुरूप गुणों को विकसित करने में सहायक होते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं, भूमि चयन के हम देख चुके हैं कि जो भूमि ब्राह्मण के लिए उपयुक्त है, वह सभी वर्ण के व्यक्तियों के लिए शुभ होती है। इसे अतिरिक्त हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि ब्राह्मण अपने आचार, विचार, संकल्प, दिनचर्या, कर्मकाण्ड आदि से किसी भी प्रकार की भूमि को सकारात्मक ऊर्जा वाले क्षेत्र में परिवर्तित करने में सक्षम है।

देवदारु, चन्दन, शमी, शीशम, खैर, शाल इन वृक्ष की लकड़ियाँ सभी जाति के व्यक्तियों के लिए शुभ बतलाई गई हैं अर्थात् इन वृक्षों की लकड़ियों जैसा जातक, यजमान, गृहस्वामी चाहता है उसी प्रकार के गुणों को विकसित करने में समर्थ है। जिस प्रकार डिस्टीलड वाटर का उपयोग हम निर्बाध रूप से सभी जगह कर सकते हैं, जबकि कुआँ, नदी, तालाब आदि के जल का विशिष्ट उपयोग होता है या यूँ कहे कि सफेद रंग का प्रयोग हम सभी व्यक्तियों के लिए कर सकते हैं जबकि लाल रंग क्षत्रिय व पीला रंग वैश्य के लिए उचित है। यह सफेद रंग हम प्रकार के गुणों को विकसित करने में समर्थ है, ठीक उसी प्रकार यह लकड़ियाँ सभी वर्ण या जाति के लिए शुभ है।

श्लोक क्रमांक ४९ से ५४ तक लकड़ी कर्म विधि का वर्णन है:-

विषम आय लेना चाहिए। अशन, स्पं(पं)दन, चन्दन, हरिद्रु, देवदारु, तिंदुकी,

१५ पीठलक्षण

काश्यप शिल्प अध्याय ५८-५९ में बताया गया है कि पीठ धातु, पत्थर, रत्न, लकड़ी आदि पदार्थ की हो सकती है। जैसा लिंग हो, उसी प्रकार की पीठ बनवाना चाहिए। नागर, द्राविड़ तथा वेसर ये तीन प्रकार के भेद से पाठ का मान होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक के नौ-नौ मान बताए हैं। वर्णानुसार भी पीठ का मान कहा गया है।

पीठ पर की गई नक्काशी के अनुसार चार प्रकार की पीठ बताई गई है-पद्मपीठ, भद्रपीठ, वेदीभद्र व पीठ।

पीठ के आकार के अनुसार भी आठ प्रकार की पीठ बताई गई है-वर्गाकार, योनि, वृत्त, अष्टकोण, पंचकोण, षट्कोण, धनुषाकार, त्रिकोणाकार (श्लोक ४४/५८)

विश्वकर्म प्रकाश

पीठ लक्षण

अध्याय ६ श्लोक क्रमांक १०७ से ११३ तक पीठ के लक्षण बताएँ हैं:-

लिंग की चौड़ाई से तीन गुना पीठ का विस्तार होता है। लिंग के विष्णु भाग में पीठ का भाग होता है। पीठ की ऊँचाई के सोलह भाग में से एक भाग भूमि में रहता है। पीठ में विभिन्न भाग का निर्माण कर जल निकलने के लिए प्रणाली बनवाएँ।

लिंग प्रवेश विधि

श्लोक क्रमांक ११३ से ११७ तक लिंग प्रवेश विधि का वर्णन है। पीठिका में अनुपात से लिंग का प्रवेश होता है। दो भाग हो तो एक भाग का लिंग में प्रवेश के लिए रखें।

इसी प्रकार बाण आदि लिंग का प्रवेश शिवजी ने कहा है। शिर स्थूल हो, मूल कृश हो।

ब्रह्म शिला व कूर्मशिला

श्लोक क्रमांक ११८ से १२२ तक ब्रह्मशिला व कूर्मशिला का वर्णन किया है:-ब्रह्म शिला तीन प्रकार की होती हैं-ज्येष्ठ, मध्य, कनिष्ठा। उसे तीन गुने विस्तार या अन्य प्रकार से बनवावें।

ब्रह्मसूत्र में कूर्मशिला की स्थापन करें। कूर्मशिला के गर्भ में बारह मुख वाला सोने के कूर्म (कछुआ) की स्थापन करें। वहाँ रत्न आदि सहित भूमि के हृदय के ऊपर स्थापन करें। उसके गर्भ को वज्र लेप से छिद्र रहित करें। लीपकर, शांति पाठ के जल से छिड़के और ऊँचे नीचे को एक रस (समान) कर दें।

काश्यप शिल्प

काश्यपशिल्प ग्रन्थ में बताया है कि लिंग को नाद तथा पीठ को बिन्दु जाने। लिंग से ही सब चराचर जगत की उत्पत्ति हुई है तथा उसमें सृष्टि लय हो जाती है। लिंग तीन प्रकार के होते हैं-चल, अचल तथा चलाचल। जैसा लिंग हो वैसी ही पीठ बनवाना चाहिए। लिंग के लिए शिला लाते समय शकुन का विचार करना चाहिए।

शिला सफेद, लाल, पीली या काले रंग की होती सकती है। ३२/४९

अशुभ शिला का त्याग करना चाहिए। बाला व वृद्धा शिला को छोड़कर युवती शिला का चयन करना चाहिए। लिंग के लिए पुलिंग शिला तथा पीठ के लिए स्त्रीलिंग शिला का चयन करना चाहिए। ५५/४९

शिला की परीक्षा कर, पूजन कर हवन करें। गर्भगृह की चौड़ाई, स्तम्भ की ऊँचाई, हस्तमान, अंगुलमान के अनुसार लिंग का मान निर्धारित किया जाता है। नागर, द्राविड़, वेसर तथा शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक के अनुसार लिंग की ऊँचाई व चौड़ाई के मान का निर्धारण करते हैं।

लिंग के आयादि के सूत्र का प्रयोग कर शुभ मान लेना चाहिए।

समलिंग, वर्धमान, शेवाधिक व स्वस्तिक, सर्वतोभद्र लिंग और सार्वदेशिक, धारालिंग व मुख लिंग ऐसे आठ प्रकार के लिंग होते हैं।

पूरे लिंग की लम्बाई को तीन भागों में विभाजित करने पर सबसे नीचे का भाग, ब्रह्म भाग मध्य का विष्णु तथा सबसे ऊपर का भाग वृत्ताकार होता है।

उसके पश्चात् बताया गया है कि शिरोवर्तन करके ग्राम की प्रदक्षिणा करना चाहिए।

अध्याय ५८ में नागर आदि लिंग की पीठ के लक्षण का वर्णन किया है। इसमें बताया है कि जिस पदार्थ का लिंग हो उसी पदार्थ की पीठ बनवाना चाहिए। पीठ की ऊँचाई लिंग की ऊँचाई के अनुपात में होती है।

इसमें नागर आदि प्रासाद के लिए उपयुक्त पीठ का वर्णन किया है। इसमें पीठ के चार प्रकार बताएँ हैं:- पद्मपीठ, भद्रपीठ, वेदिका (भद्र) और पीठ

इसके अतिरिक्त विभिन्न आकार की पीठ व उसके फल को कहा है:-

आकार	परिणाम
चौरस	पीठ जय देने वाला
योनि	पीठ प्रजा वृद्धि करने वाला
धनुषाकार	पीठ शान्तिकारक
त्रिकोणाकार	पीठ शत्रु का नाश करने वाला
वृत्ताकार	समृद्धिदायक
पंचकोण पीठ	पुष्टि-तुष्टि कारक
षट्कोण पीठ	रोगनाशक

पीठ के जीर्णोद्धार के बारे में बताया है कि पहले के समान ही पीठ बनवाना चाहिए।

अध्याय ५९ में नागर, द्राविड़, वेसर पद्धति के अनुसार शिला का मान बताया है। पिण्डिका को सावधानीपूर्वक स्थापित कर अष्टबन्ध लेप से दृढ़ करना चाहिए। इसके उपरान्त उसे बिल्कुल चिकना कर समतल करना चाहिए। उसके पश्चात् गाय के गोबर से लीपकर, कुंकुम व गुलाल आदि से अलंकृत करना चाहिए। उसके उपरान्त वेदी बनाकर, पूजन कर हवन करना चाहिए। इस अध्याय में ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए लिंग के प्रमाण बताएँ हैं। उसके उपरान्त लक्षणोद्धार करने की विधि बताई है।

शाल, काश्मरी, अर्जुन, पद्मक, शाक, आम्र, शीशम-इन वृक्षों की लकड़ी शय्या बनाने में शुभ होती हैं।

अशुभ वृक्ष:-अशनि (बिजली), जल, पवन, हाथी से गिराये हुए और जिस वृक्ष पर मधुमक्खी का छत्ता हो, पक्षी निवास हो और चैत्य, श्मशान, मार्ग में उत्पन्न हो, आधा सूखा हुआ हो, लताओं में बन्धा हुआ हो, काँटे वाला हो, जो महानदियों के संगम में उत्पन्न हों, जो देवता के मंदिर में हों, दक्षिण और पश्चिम दिशा में उत्पन्न हुए हों, जो निषिद्ध वृक्ष से उत्पन्न हुए हों। ऐसी लकड़ी का प्रयोग करने पर कुल का नाश, रोग और शत्रु से भय होता है।

श्लोक क्रमांक ५५ से „ÉÈÖòxÉ का विचार किया गया है:-

शुभ शकुन

सफेद फूल, दन्त (हाथी दांत), दही, अक्षत, फल, जल से पूर्ण घड़ा, रत्न तथा अन्य जो मंगल वस्तु

श्लोक क्रमांक ५८ से ६३ तक शय्या के मान का विचार किया गया है:-

व्यक्ति	लम्बाई (शय्या)	चौड़ाई	पाए - (अंगुल)
चक्रवर्ती राजा	१००	४४	३३
राजकुमार व मन्त्री	९०		
सेनापति	८२		
पुरोहित	८०		

सभी वर्ण के लिए ८१ अंगुल की लम्बाई शुभ कही गई है।

श्लोक क्रमांक ६४ से ७० तक शय्या की काष्ठ व अलंकरण का विचार किया है:-

काष्ठ	परिणाम
असन	रोगहर्ता
तिंदुकी	पित्तदायक, शुभ
चन्दन	शत्रुनाशक तथा धर्म, आयु व यशदाई
शीशम	महान् समृद्धि
पद्मक	दीर्घायु, लक्ष्मी, सुख, पुत्र तथा शत्रुओं का नाश
शाल	कल्याणकारक
शुभासन	शुभदाई
देवदारु	शुभदाई
श्रीपर्णी	शुभदाई
साक	शुभदाई

कदम्ब	शुभदाई
हलदु	श्रेष्ठ
आम	प्राण का हरण
असन	दोषदायक (अन्य लकड़ी के साथ)
स्यन्दन	शुभ
फलवाले वृक्ष	फल के दाता

शय्या का अलंकरण के बारे में कहा है कि हाथीदाँत, रत्नजड़ित, जिसके मध्य भाग में सोना लगा हो शुभ होता है।

श्लोक क्रमांक ७१ से ७६ तक शय्या चिह्न का विचार किया है:-

चिह्न	परिणाम
शस्त्र	जय
नन्द्यावर्त	पृथ्वी का लाभ
लोष्ठ	देश की प्राप्ति
श्रीवृश्च और वर्द्धमान	आरोग्य, विजय और धन की वृद्धि
स्त्री	धन का नाश
भांगरा	पुत्र का लाभ
कुंभ	निधि
दंड	यात्रा में विघ्न
कृकलास	दुर्भिक्ष
भुजंग	दुर्भिक्ष
वानर	दुर्भिक्ष
गिद्ध, उल्लू, बाज,	मृत्यु और विपत्ति
काक, वड़े मगर, पाश, कबन्ध	मृत्यु और विपत्ति
खून का बहना, काला शव (मुर्दा)	दुर्गन्धवान

श्लोक क्रमांक ७७-७८ में बताया है कि

शुक्ल, समान, सुगन्ध, चिकने छेद हो तो शुभ होता है। पाए में एक चिह्न हो तो शुभ, तीन या अधिक होने पर क्लेश व बन्धन होता है।

छिद्र/विवर्ण/ग्रन्थिस्थान	परिणाम
पैर या सिर	व्याधि
कुंभ या पाद	मुखरोग
कुंभ के प्रथम भाग या जंघा	जंघा का रोग
उसके नीचे या पाद के नीचे	धन का बहुत नाश
खुर	खुरों में पीडा

श्लोक क्रमांक ८३ से ९० तक में छिद्र के प्रकार व परिणाम एवं काष्ठ का विचार किया है:-

नाम	विवरण	परिणाम
संकट और निष्कट	घट के समान	द्रव्य का नाश
कोलाख्य	अपवित्र और नीले रंग	कुल का नाश
(धृ)ष्टि नेत्र	विषम	
शूकर		शस्त्र से भय
वत्सनाभ	विवर्ण	रोग
कोलक	काला	
बन्धुक	दो प्रकार का	कीटों की वृद्धि, शुभदाई

जो लकड़ी गांठों से भरी हो वह सब कामों में शुभ नहीं होती हैं।

घर में वृक्ष का काष्ठ	परिणाम
एक	धान्य
दो	धान्य
तीन	पुत्रों की वृद्धि
चार	धन और यश

पाँच

मरण

छः, सात

कुल का नाश होता है।

श्लोक क्रमांक ९१ से ९३ शय्या का अन्य विचार किया है:-

वृक्षों के शिर अग्रभाग और मूल पाद कहते हैं।

शय्या के अंग में दोष व परिणाम

शय्या का अंग (दोष)	परिणाम
पाद	मूल का नाश
अरणि	धन का नाश
शिर	मरण
पाद में छिद्र	महान् हानि

श्लोक क्रमांक ९४ में बताया है कि शय्या को शुभ मुहूर्त में बनवाकर दक्षिण दिशा के कमरे में रखकर, उस पर शयन करें तथा स्वप्न के आधार पर शुभाशुभ का ज्ञान करना चाहिए।

इस प्रकार से हमने देखा कि विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में कुल तेरह अध्याय तथा १३७४ श्लोक हैं तथा काश्यप शिल्प में कुल ८५ अध्याय तथा ३४३१ श्लोक हैं।

विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ की विषय वस्तु इस प्रकार है:-

अध्याय १

भूमि लक्षण

मंगलाचरण, गृह की उपयोगिता, वास्तुशास्त्र की परम्परा, ग्रन्थ का उद्देश्य, वास्तुपुरुष की उत्पत्ति, वास्तुपूजन कब करें, वास्तुदोष के लक्षण, वास्तुदोष दूर करने हेतु वास्तुशान्ति, भूमि चयन, वर्णानुसार भूमि चयन, भूमि के शुभाशुभ आकार व परिणाम, वनस्पति, परिवेश आदि के आधार पर भूमि चयन, भूमि परीक्षण, भूमि अधिग्रहण विधि, शुभाशुभ शकुन, भूमि पूजन, गृह, मंदिर, वापी तथा यज्ञवेदी हेतु मुहूर्त विचार-चन्द्रमास, सूर्य राशि, नक्षत्र, राहूविचार-मास व वारानुसार, लोहदण्डपूजन, खुदाई के समय होने वाले शुभाशुभ शकुन का वर्णन है।

अध्याय २

गृहादि विचार

भूमि परीक्षा-स्वप्नविधि, दिशा-ज्ञान, प्लव विचार, गृहारम्भ मुहूर्त-मासानुसार, सूर्यराशि-अनुसार, ग्रह विचार, दशा-अन्तर्दशा विचार, निर्माण हेतु इकाई-हस्त, अंगुल आदि का निर्धारण, आय विचार, स्तम्भ हेतु शुभ नक्षत्र, गृह-विन्यास, एक शाला, द्विशाला, त्रिशाला व चतुश्शाला गृह, राजा, सेनापति आदि के गृह के मान, शाला व अलिन्द का मान, द्वार, स्तम्भ, दीवार, वीथिका आदि का प्रमाण, स्तम्भ आदि के अंग का वर्णन है।

अध्याय ३

गृहारम्भ मुहूर्त

गृहारम्भ हेतु तिथि, वार, नक्षत्र आदि का विचार, वृष चक्र, शुभाशुभ योग, जलाशय आरम्भ विचार, गृहायु, गृह आरम्भ के समय विभिन्न भावों में विभिन्न ग्रहों के फलों का वर्णन है।

अध्याय ४

गृह व शयन विचार

शय्या, आसन, जूता व खड़ाऊँ आदि का मान, निर्मित पदार्थ के आधार पर गृहों का संज्ञा, विभिन्न इकाइयाँ व उपयोग, विभिन्न पदविन्यास व उपयोग, शिला के मान, लक्षण, पूजन व न्यास विधि का वर्णन है।

अध्याय ५

वास्तुपदविन्यास

वास्तुपुरुष, वास्तुपदविन्यास, खूँटी स्थापना, इक्यासी व चौंसठ पद वास्तु विन्यास, नाड़ी, पद, वंश, सिरा, मर्म, मर्मदोष व परिणाम, शल्य ज्ञात करने की विधि, शल्य होने पर दुष्परिणाम,

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

... ..
... ..
... ..
... ..
... ..

शिलान्यास, वास्तुमंडल देवता, रंग, मन्त्र, पूजन, सर्वौषधि, यज्ञकुण्ड व हवन, देवता व बलि, यजमान का अभिषेक, विसर्जन विधि का वर्णन है।

अध्याय ६ प्रासाद विधान

मन्दिर निर्माण महात्म्य, प्रासाद हेतु भूमि चयन, शिलान्यास, प्रासाद लक्षण, नागर जाति के शिखर, लिंग व पीठ लक्षण, हस्त प्रमाण, लिंग प्रवेश विधि, कूर्मशिला, ब्रह्मशिला तथा मंडप का वर्णन है।

अध्याय ७ द्वार निर्माण

द्वार निर्धारण के विभिन्न आधार-गृहद्वार-मासानुसार, देवालय द्वार, जलाशय व वेदी हेतु द्वार, तिथि अनुसार, वर्णानुसार, राशि अनुसार, नक्षत्रानुसार, वारानुसार, एकशाला आदि अनुसार द्वार निर्धारण। द्वार परिणाम पदानुसार, द्वार-वेध, द्वार-दोष का वर्णन है।

अध्याय ८ जलाशय

जलाशय आकार, आरम्भ हेतु मास, नक्षत्र, वार, तिथि, लग्न विचार, दिशा व परिणाम, आय विचार, शिलान्यास विधि का वर्णन है।

अध्याय ९ वृक्ष छेदन विधि

वर्णानुसार शुभ वृक्ष, वृक्ष चयन-शुभाशुभ वृक्ष, वृक्ष काटने हेतु मुहूर्त, वृक्ष पूजन तथा छेदन विधि, काष्ठ सुरक्षित रखने की विधि का वर्णन है।

अध्याय १० गृहप्रवेश

गृह-प्रवेश मुहूर्त विचार-मासानुसार, सूर्य राशि, नक्षत्र, तिथि, लग्न विचार, कुम्भ शय्या विचार-काष्ठ, शकुन, अंगुल मान का वर्णन है।

अध्याय ११ दुर्गलक्षण

दुर्ग के प्रकार, दुर्ग के आकार व परिणाम, परकोटे, कोटचक्र, दुर्गनिर्माण विधि, शान्तिकर्म का वर्णन है।

...
...
...

...
...
...

...
...
...

...
...
...

...
...
...

...
...
...

...
...
...

अध्याय १२

शल्योद्धार

शल्य ज्ञात करने की विभिन्न विधियाँ, दिशा ज्ञान, गृह में शल्य-लक्षण, शल्योद्धार विधि, कलश व शिलास्थापन विधि का वर्णन है।

अध्याय १३

गृहवेध विचार

गृह में अन्धक आदि सोलह वेध व परिणाम, लकड़ी के विभिन्न दोष व परिणाम, बाह्यदोष, वृक्ष-वेध व परिणाम, शुभ वृक्ष, दिशानुसार पताका, पताका के मान का वर्णन है।

विश्वकर्मप्रकाश की विशेषताएँ

इस प्रकार से हमने देखा कि विश्वकर्म-प्रकाश तथा काश्यप शिल्प दोनों ही ग्रन्थ अपनी-अपनी विशेषताएँ लिए हुए हैं।

विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि दोनों ही ग्रन्थों की परम्परा भगवान शिव से आरम्भ होती है। दोनों ही ग्रन्थ तन्त्र शास्त्र की श्रेणी में आते हैं। कर्मकाण्ड सम्बन्धी भाग में विशेष रूप से समानता पाई जाती है। दोनों ही ग्रन्थ की अपनी विशेषताएँ हैं।

आइए सर्वप्रथम विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ की विशेषताओं को देखने का प्रयास करते हैं। विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ के पहले ही अध्याय में यह बताया है कि किसी स्थान पर वास्तुदोष के क्या लक्षण होते हैं- जैसे मधुमक्खियों का छत्ता, स्त्रियों में कलह, पालतु पशुओं का रात्रि में असामान्य रूप से चिल्लाना, आदि। साथ ही साथ इन वास्तुदोषों को दूर करने के उपाय के रूप में हम वास्तुशान्ति पाते हैं। यह भी बताया गया है कि वर्ष में कम से कम एक बार वास्तुशान्ति अवश्य करवाना चाहिए।

उसके पश्चात् भूमि चयन विधि का वर्णन है। इसमें भी विश्वकर्म-प्रकाश अपनी विशेषताएँ लिए हुए है। विभिन्न शुभाशुभ आकार तथा उनके परिणाम का वर्णन जितने विस्तार से विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में है उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

उसके पश्चात् प्रथम अध्याय में ही हमें भूमि चयन हेतु शुभाशुभ शकुन का वर्णन मिलता है। पूरे विश्वकर्म प्रकाश में विभिन्न अवसर हेतु स्तम्भ स्थापन, गृहारम्भ, गृह-प्रवेश, वन से काष्ठ लाते समय, आदि अवसर पर प्रकृति के संकेत जानने हेतु शुभाशुभ शकुन का वर्णन मिलता है।

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के अध्याय २ गृहादि विचार में एक शाला से चार शाला वाले भवनो का वर्णन है। एक शाला वाले गृह के १६ भेद बताएँ हैं। राजा आदि व्यक्ति, सेनापति, राजकुमार, ब्राह्मण आदि चार वर्णों, राजपुरुषों के घरों के मान का वर्णन मिलता है। स्वप्न विधि द्वारा भूमि की परीक्षा, शाला व अलिन्द का मान एवं वीथिका का प्रमाण का वर्णन है।

अध्याय ४ गृह व शयन विचार में पलंग, उपानह (जूते) आदि के मान का वर्णन है। निर्मित पदार्थ के आधार पर १४ प्रकार के गृहों का वर्णन मिलता है।

अध्याय ५ वास्तुपदविन्यास तथा अध्याय १२ शल्योद्धार में शल्य ज्ञात करने की विभिन्न विधियों का वर्णन मिलता है। इनमें कुल ६ प्रकार से शल्य ज्ञात किया जाता है, यह अन्य ग्रन्थों में दुर्लभ है। इसके साथ ही अध्याय १२ में भूमि में शल्य रह जाने के लक्षणों का वर्णन है तथा साथ ही साथ शल्य के दोष को दूर करने हेतु शिलान्यास विधि का वर्णन है। ऐसा वर्णन सामान्य रूप से देखने को नहीं मिलता है।

अध्याय ७ द्वार निर्माण में वर्णित द्वार निर्धारण के विभिन्न आधार-गृहद्वार-मासानुसार, देवालय द्वार, जलाशय व वेदी हेतु द्वार, तिथि अनुसार, वर्णानुसार, राशि अनुसार, नक्षत्रानुसार, वारानुसार, एकशाला आदि अनुसार द्वार निर्धारण, द्वार परिणाम पदानुसार, द्वार-वेध, द्वार-दोष इस ग्रन्थ की विशेषता है।

अध्याय ८ जलाशय में जलाशय आकार, आरम्भ हेतु मास, नक्षत्र, वार, तिथि, लग्न विचार, दिशा व परिणाम, आय विचार, शिलान्यास विधि का वर्णन है।

अध्याय १० गृहप्रवेश में गृह-प्रवेश मुहूर्त विचार-मासानुसार, सूर्य राशि, नक्षत्र, तिथि, लग्न विचार, कुम्भ शय्या विचार-काष्ठ, शकुन, अंगुल मान का वर्णन किया है।

अध्याय ११ दुर्गलक्षण में दुर्ग के प्रकार, दुर्ग के आकार व परिणाम, परकोटे, कोटचक्र, दुर्गनिर्माण विधि, शान्तिकर्म का वर्णन किया है।

अध्याय १३ गृहवेध विचार में गृह में अन्धक आदि सोलह वेध व परिणाम, लकड़ी के विभिन्न दोष व परिणाम, बाह्यदोष, वृक्ष-वेध व परिणाम, शुभ वृक्ष, दिशानुसार पताका, पताका के मान का वर्णन किया है।

उपरोक्त सभी विषयों में विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। काश्यपशिल्प ग्रन्थ की तुलना में इन विषयों को विस्तार से बताया गया है।

काश्यप शिल्प की विशेषताएँ

काश्यप शिल्प ग्रन्थ में भवन के विभिन्न अंगों के मान को विस्तार से बताया गया है। भवन का आधार जो की भूमि के ऊपर स्थित होता है उसे आसन या पीठ कहते हैं, इस आसन को दो भागों में विभाजित करते हैं, नीचे का भाग उपपीठ तथा ऊपर का भाग अधिष्ठान कहलाता है। इस ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार की उपपीठ व अधिष्ठान के मान का वर्णन किया है। इन उपपीठ व अधिष्ठान की कुल ऊँचाई को विभिन्न भागों में विभाजित करते हैं। विभिन्न भागों में की गई नक्काशी के आधार पर इनका नाम होता है। इसी के आधार पर इनका उपयोग भी होता है। किस देवता के लिए किस प्रकार की उपपीठ होना चाहिए इसका वर्णन किया है।

उसके पश्चात् नाली का मान बताया है। स्तम्भ के विभिन्न अंग, मान व प्रकार का वर्णन मिलता है। विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में हम क्रास-सेक्शन के आधार पर पाँच प्रकार के स्तम्भ पाते हैं—रुचक, वज्र, द्विवज्र, प्रलीनक, वृत्त। यहाँ विष्णुकान्त आदि नाम से बताया गया है। उसके पश्चात् स्तम्भ के ऊपर के अंग बोधिका के मान, अंग व अलंकार का वर्णन है। फलिका घट, घट की ऊँचाई, घट की चौड़ाई, बोधिका की ऊँचाई, वेदिका लक्षण, वेदिका का मान का वर्णन है। उसके पश्चात् जालक के मान, प्रकार व स्थान का वर्णन मिलता है। विभिन्न प्रकार के तोरण व मान का वर्णन है। कम्प-द्वार (खिड़की), प्रस्तर, गल भूषण तथा नासिका के लक्षण का वर्णन मिलता है।

इसके पश्चात् आभास, जाति, छन्द, विकल्प आदि प्रकार के प्रासाद बताएँ हैं। शान्तिक, पौष्टिक, जयद, अद्भुत व सर्वकामिक प्रकार के चौड़ाई व ऊँचाई के अनुपात बताएँ हैं।

एक मंजिल से १६ मंजिल तक के भवनों की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई के मान का वर्णन है। इसमें कोष्ठ, पंजर, सौष्टिक आदि के मान को भी विस्तार से बताया है।

उसके पश्चात् प्राकार नामक अध्याय में नगर नियोजन का वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् गोपुर लक्षण तथा आठ, सोलह तथा बत्तीस परिवार का वर्णन है।

उसके पश्चात् नंदी, अनलेश्वर, सप्तमातृका, वीरभद्र व विनायक, ब्राह्मी, ईश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, विनायक, षण्मुख, ज्येष्ठा देवी, विष्णु, इन्द्र, अश्विनौ, पितर, वैवस्वत, रोहिणी, निर्ऋति, अप्सरा, वरुण, ऋषि, मरुत, रुद्र, चन्द्र, क्षेत्रपाल, ईश, सूर्य, अनन्त, गौरी, शर्व, ब्रह्मा, शिव, भृगु, सरस्वती, लक्ष्मी, कुबेर, कालाग्नि रुद्र, श्रीकण्ठ, नागदेव, भीमशिखण्ड, मरुदगणउग्र, शनैश्चर, मूर्तिपीठ के लक्षण का वर्णन किया है। ताल लक्षण, उत्तम दश ताल, मध्यम दसताल, अधम दसताल, उत्तम नवताल, मध्यम नवताल, अधम नवताल आठ ताल सकल स्थापना की विधिसुखासन मूर्ति,

सोमस्कन्देश्वर, स्कन्द, उमास्कन्द, चन्द्रशेखर मूर्ति, वृषावाहन मूर्ति, नृत्तमूर्ति, गंगाधर मूर्ति, त्रिपुरान्तक मूर्ति, कल्याण मूर्ति, अर्धनारीश्वर, गजहामूर्ति, पाशुपतमूर्ति, कंकाल मूर्ति, हरिहर मूर्ति, भिक्षाटन मूर्ति, चण्डेशानुग्रह, दक्षिणामूर्तिकालहा मूर्ति, लिंगोद्भवमूर्ति, शूललक्षण, शूल मान, हस्त, शूल, रज्जुबन्ध लक्षण, अष्टबन्ध, मिट्टी के स्थिरीकरण, मिट्टी के प्रकार, कल्क संस्कार लक्षण वर्णसंस्कार, सृष्टि क्रम, महाभूत, वर्ण का वर्णन है।

अध्याय ७
उपसंहार

अध्याय ७ उपसंहार

अध्याय ७

उपसंहार

विश्वकर्म-प्रकाश, उत्तर भारतीय वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रमुख स्थान रखता है। राजस्थान, गुजरात व उत्तर-पश्चिम मध्यप्रदेश में स्थित विश्वकर्मा परिवारों में यह ग्रन्थ विशेष रूप से पूजनीय माना गया है। मांगलिक अवसर उपस्थित होने पर इस ग्रन्थ को मुद्रित करवाकर वितरित करना पुण्य कार्य माना जाता है। विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ इन परिवारों में पाई जाती हैं। पाठ-भेद में देखने को मिलता है। इस शोध में हमने मुख्य रूप से पाँच प्रतियों का सहारा लिया है तथा इनमें मुख्य स्थान खेमराज प्रकाशन प्रति को दिया है।

ऐसा माना जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना विश्वकर्माजी ने की है। कई विद्वानों का मानना है कि यह तन्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ रहा है तथा इसका नाम विश्वकर्म-प्रकाश तन्त्र रहा है।

उत्तर भारतीय ग्रन्थ अग्निपुराण, मत्स्य पुराण, भविष्य पुराण में इस ग्रन्थ की समानता पाई जाती है। दसवीं शताब्दी में राजा भोज द्वारा रचित ग्रन्थ समरांगण-सूत्रधार के कई श्लोक विश्वकर्म-प्रकाश से समानता रखते हैं। राजा टोडरमल के समय में लिखा गया ग्रन्थ वास्तु-सौख्य भी विश्वकर्म-प्रकाश से समानता रखता है। वास्तव में तो विश्वकर्म-प्रकाश को भली प्रकार से समझने के लिए यह ग्रन्थ (वास्तु-सौख्यम्) बहुत सहायक है। अपराजित-पृच्छा आदि ग्रन्थ तथा सोमपुरा द्वारा रचित शिल्परत्न-प्रकाश भी विश्वकर्म-प्रकाश के विस्तार के रूप में देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थ के काल का निर्धारण करना विद्वानों व इतिहासकारों का विषय रहा है। इस संबंध में शास्त्रीय परम्परा में यह ग्रन्थ वैदिक माना गया है तथा इसकी रचना विश्वकर्माजी ने की, यह माना गया है। आधुनिक विद्वान इसे छठवीं शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं।

इस ग्रन्थ का उपयोग दुर्ग-निर्माण, नगर व ग्राम विन्यास, गृहविन्यास, मंदिर-निर्माण, वेदी, कूप, तालाब आदि के निर्माण में समान रूप से किया जाता सकता है। विभिन्न आयामों को अपने

... ..

...

... ..

... ..

... ..

में समाहित किए हुए यह ग्रन्थ अपनी एक अलग ही पहचान (विशिष्टता) रखता है। आकार तथा उसके गुणों का जितना विश्लेषण, विवेचन व प्रभाव का अध्ययन इस ग्रन्थ में वैसा विवरण मानसार, मयमत आदि ग्रन्थों में भी दुर्लभ है। आकार चाहे नगर का हो या ग्राम या गृह का, उससे उत्पन्न होने वाले प्रभाव को विशेष रूप से बताया है।

आकार के अतिरिक्त रंग, गन्ध, स्वाद के गुण हमें इस ग्रन्थ में देखने को मिलते हैं। इस वर्ण को व्यक्ति को किस प्रकार की गन्ध, स्वाद व रंग का प्रयोग करना चाहिए, यह वर्णन भी मिलता है।

निर्माण कार्य में प्रयुक्त होने वाले १४ प्रकार के पदार्थ-ईंट, पत्थर, लकड़ी आदि से निर्मित भवन का वर्णन मिलता है।

पदार्थ के गुण के अध्ययन के संदर्भ में हम पाते हैं कि ईंट, पत्थर या लकड़ी आदि पदार्थ को उसके आकार, बजाने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि, उस पर स्थित चिह्न के आधार पर पुर्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसलिंग को किस प्रकार निर्धारित किया जाता है, बताया गया है। देव-प्रतिमा व प्रासाद के लिए पुर्लिंग, स्त्री (देवी) प्रतिमा के लिए स्त्रीलिंग पदार्थ का उपयोग किया जाता है।

सिविल इंजीनियरींग तथा आधुनिक अर्किटेक्चर में भी ऐसा विस्तृत वर्णन देखने को नहीं मिलता है।

विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में सेल्फ-सपोर्टेड कॉलम में जिस अनुपात का वर्णन मिलता है, आधुनिक सिविल इंजीनियरींग में भी उसी अनुपात में स्तम्भ बनाए जाते हैं।

ग्रन्थ में भवनों के विभिन्न मंजिलों की ऊँचाई जिस अनुपात में कम होती बताई गई है, आधुनिक समय में भी वही अनुपात सर्वाधिक उपयुक्त है।

नगर, भवन, उपकरण (फर्नीचर) आदि के बारे में आधुनिक समय से अत्यधिक आगे जाकर, इनके शुभ मान के संदर्भ में विचार किया गया है। आय आदि सूत्रों के माध्यम से किसी व्यक्ति विशेष के लिए लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, क्षेत्रफल आदि का कौन सा मान सर्वाधिक उपयुक्त होगा यह बताया गया है। किसी आकार का, उसके मान का व्यक्ति व स्थान या कार्य पर अत्यधिक प्रभाव होता है या पड़ता है, इसे ध्यान में रखकर आकार व मान का निर्धारण करना चाहिए। आधुनिक समय में इस पर ध्यान ही नहीं दिया जाता है, इसके कारण व्यक्ति को कार्य करने में बाधा

उत्पन्न होती है, प्रकृति का सहयोग प्राप्त नहीं होता है। धन प्राप्ति कर लेने के उपरान्त भी सन्तोष, मानसिक सुख आदि का अभाव बना रहता है।

आधुनिक जीवन में जब हम असन्तोष, असफलता, अशान्ति आदि के मूल कारण पर जब विचार करते हैं तो पाते हैं वास्तु के अनुरूप नगर, ग्राम, कॉलोनी, गृह आदि का नियोजन न होने के कारण, परिणाम के रूप में हम इस प्रकार के दोष पाते हैं।

इसी प्रकार जब हम विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में भूमि के अन्दर नकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ (शल्य) को ज्ञात करने की छह से अधिक विधियों का वर्णन किया है। निर्माण से पूर्व ही शल्य को ज्ञात करना, उसके निकालना, उसके पश्चात उस भूमि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करना, चार्ज करना, इसके विधान बताएँ हैं। गौवंश को लाकर, भूमि पर रत्न, औषधि, खनिज आदि के जल का छिड़काव कर, ब्राह्मणों को आदर पूर्वक भूखण्ड पर लाकर, स्वस्तिवाचन करवाने से भूमि सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होती है।

आधुनिक समय में हम देखते हैं तो पाते हैं कि आजकल सिविल इंजीनियरस् तथा अर्किटेक्ट रखते भी हैं तो उसे महत्व नहीं देते हैं या दे पाते हैं। इसके कारण भूमि के अन्दर नकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ रह जाते हैं तथा सतत् नकारात्मक ऊर्जा का उत्सर्जन करते रहते हैं, जिससे ऐसे स्थान पर बने भवनों में रहने वाले सदैव नकारात्मक सोच, विचार आदि से आवेशित रहते हैं, अस्वस्थ रहते हैं, कार्य में असफलता, बाधा आदि का अनुभव करते रहते हैं।

व्यक्ति, परिवार, समाज के इस प्रकार बाधित होने से अपराध, हीनभावना आदि बुराइयाँ फैलने लगती हैं, अतः आवश्यकता है कि वास्तु के अनुरूप नगरों व भवनों का निर्माण होना चाहिए।

नगर, मंदिर, गृह आदि के लिए वास्तुपदविन्यास का अत्यधिक महत्व है, इसी के आधार पर सारा नियोजन किया जाता है। इसी से मर्म स्थान ज्ञात किए जाते हैं तथा उन स्थानों पर स्तम्भ आदि का नियोजन न हो यह ध्यान रखा जाता है। शास्त्र में इस दोष के उत्पन्न होने पर मृत्यु तुल्य कष्ट की आशंका रहती है। आधुनिक समय में पदविन्यास, मर्म-दोष आदि का विचार न करने के कारण, ऐसे गृहों में दोष रह जाते हैं, जिसके कारण उस स्थान पर रहने वाले निवासी दुखी रहते हैं। सिविल इंजीनियरिंग तथा अर्किटेक्चर कॉलेजेस् में इस विषय को पढ़ाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इसी प्रकार विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि गृह-निर्माण में द्वार का अत्यधिक महत्व दिया गया है। वास्तुपदविन्यास में शिखी (ईश) आदि ३२ पदों में कौन-कौन से पद किस-किस दिशा के द्वार के लिए शुभ हैं यह बताया है। पूर्व दिशा में जयन्त व महेन्द्र, दक्षिण में गृहक्षत, पश्चिम में पुष्पदन्त व वरुण तथा उत्तर दिशा में मुख्य, भल्लाट व सोम पद में द्वार शुभ बताया है। अन्य स्थान पर द्वार होने से अग्नि भय आदि दोष बताए गए हैं। आधुनिक समय में इस विषय पर भी गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

नगर, भवन आदि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करने के लिए शिलान्यास एक सशक्त विधि है। शुभ चिह्न को शिला, पत्थर या ताम्बे, चाँदी आदि धातु पर उकेर कर रत्न, सर्वोषधि, स्वर्ण, पारा आदि के साथ भूमि के अन्दर स्थापित किया जाता है। जिस प्रकार शल्य आदि नकारात्मक पदार्थ भूमि के अन्दर होने पर नकारात्मक ऊर्जा का उत्सर्जन होता है, ठीक उसी प्रकार सकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ भूमि के अन्दर शुभ मुहूर्त में स्थापित करने से सदैव सकारात्मक ऊर्जा का विकिरण प्राप्त होता रहता है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के आधार पर भूमि चयन, परीक्षण, शल्य ज्ञान, भूमि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित कर वर्ण के अनुरूप या कार्य के अनुरूप शुभ मुहूर्त में निर्माण कार्य का आरम्भ करना चाहिए।

निर्माण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए वास्तु के अनुरूप पद विन्यास किया गया है, मर्म स्थान का निर्धारण कर यह देख लिया गया है कि उस स्थान पर स्तम्भ आदि नहीं हो।

द्वार का निर्धारण भी शास्त्र के अनुसार बताए गए पद में हो। शिलान्यास भली प्रकार विधि अनुसार किया हो। जिन पदार्थों या द्रव्यों का उपयोग निर्माण में किया जा रहा है, वे निर्दोष हों। उचित प्रकार से चयन कर उनका उपयोग किया हो।

निर्माण कार्य पूर्ण होने पर विधि-विधान से आनन्दपूर्वक गृह आदि में प्रवेश करना चाहिए।

इसी प्रकार नगर, मंदिर आदि के निर्माण में प्राण-प्रतिष्ठा या नगरोत्सव उल्लास के साथ करना चाहिए।

काश्यप शिल्प ग्रन्थ आगम के रूप में प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह अंशुमतभेद आगम या

अंशुमत्काश्यपागम के नाम से जाना जाता है। इसी नाम से कई पाण्डुलिपि या हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। मंदिर या प्रतिमा निर्माण व प्राण-प्रतिष्ठा हेतु यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है।

इसके काल के बारे में इतिहासकार साधारण रूप से इसे छठवीं शताब्दी का ग्रन्थ मानते हैं।

इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, उसके विषय वस्तु की सारणी इस शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट में संलग्न है।

काश्यप शिल्प विशेष रूप से मंदिर निर्माण से संबंधित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भूमि चयन आदि के अतिरिक्त निर्माण की विधि, उसके अंग आदि पर विशेष प्रकाश डाला है। यह बताया गया है कि मंदिर आदि में पीठ, अधिष्ठान, स्तम्भ, प्रस्तर व शिखर आदि अंग का मान, उनका आकार, उन पर की जाने वाली नक्काशी देवता तथा उपयोग पर आधारित होती है।

अलग-अलग देवता आदि ब्राह्मण आदि के लिए अलग-अलग प्रकार की पीठ (पेडेस्टल, उपपीठ) बताई गई है। इसमें प्रतिभद्र, भद्र आदि प्रमुख हैं। इन पर की जाने वाली नक्काशी के अनुसार इनके भेदों का वर्णन भी किया गया है।

इसी प्रकार अधिष्ठान (बेस) के संदर्भ में भी बताया गया है कि वेदी भद्र, अम्बुज, केसर आदि अनेक प्रकार के होते हैं। इन पर की जाने वाली नक्काशी के अनुसार इनके भी अनेक उपभेद या भेद होते हैं।

स्तम्भ के संबंध में बताया है कि उनके क्राससेक्शनल एरिया के अनुसार उनके भेद होते हैं तथा किस देवता के लिए कौन सा स्तम्भ उपयुक्त है यह बताया है। इसी प्रकार प्रस्तर व शिखर के भेद हैं।

इसके अतिरिक्त देवता की मूर्तियों के संबंध में शिव आदि देवता के विभिन्न रूपों का वर्णन है। देवता के अस्त्र, शस्त्र, वाहन, भोजन आदि के माध्यम से देवताओं के गुणों के बारे में बताया है। किस देवता का पूजन-अर्चन करने से किस प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है या किस कार्य के लिए कौन से देवता की पूजा-अर्चना कर ऊर्जा प्राप्त करना चाहिए यह बताया है।

इसी प्रकार १ मंजिल से १६ मंजिला भवनों का निर्माण किस प्रकार करना चाहिए। उनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई के मान के बारे में बताया है। उनके विभिन्न भेदों को कहा है।

CC0. Maharishi Mahesh Yogi Vedic Vishwavidyalaya (MMYVV), Karoundi, Jabalpur,MP Collection.

इस प्रकार से हम देखते हैं कि विश्वकर्म-प्रकाश व काश्यप शिल्प अपने-अपने विषयों में अद्भुत ग्रन्थ है। विश्वकर्म-प्रकाश में गृह, मंदिर आदि के निर्माण पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है तथा काश्यप शिल्प ग्रन्थ में विशेष रूप मंदिर व प्रतिमा निर्माण को बल दिया गया है।

दोनों ही ग्रन्थ तन्त्र व आगम के रूप में मान्य रहे हैं। दोनों ही ग्रन्थ शिव या शैव परम्परा के हैं। इस प्रकार से निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि दोनों ग्रन्थों का पूर्ण रूप से अध्ययन करने पर वास्तु से संबंधित सभी पक्षों को गहराई से जाना जा सकता है। अस्तु॥

संदर्भसूची

संदर्भसूची

संदर्भ सूची

- १ काश्यपशिल्प- काश्यप मुनि, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना १९२६
- २ विश्वकर्म प्रकाश-मिहिरचन्द्र, खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, संस्करण १९९८
- ३ कचोरीगली
- ४ शिवप्रसाद वर्मा स्थापत्यवेद शिक्षण एवं शोध संस्थान, इन्दौर २००६
- ५ मानसार पी के आचार्य डी. के. पब्लिशर देहली २०००
- ६ मयमत ब्रूनो ड्रेगनस् मोतीलाल बनारसीदास १९९३
- ७ बृहत्संहिता अच्युतानन्द झा चौखम्बा प्रकाशन, बनारस, संस्करण १९९७
- ८ मनुष्यालय चन्द्रिका ए के अच्युथान वास्तुविद्या प्रतिष्ठानम् कालीकट २०००
- ९ समरांगण सूत्रधार डॉ. द्विजनाथ शुक्ल मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली १९९६
- १० मत्स्यपुराण गीताप्रेस गोरखपुर
- ११ अग्निपुराण गीताप्रेस गोरखपुर
- १२ भविष्यपुराण गीताप्रेस गोरखपुर
- १३ राजवल्लभ
- १४ शिल्परत्नाकर

